# 'हो' लोक साहित्य

डॉ० लक्ष्मी पिंगुवा







के. के. पब्लिकेशन्स

# 'हो' लोक साहित्य

*लेखिका*

डॉ० लक्ष्मी पिंगुवा

सहायक प्रोफेसर, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग

राँची वीमेन्स कालेज, राँची ( झारखण्ड )

के० के० पब्लिकेशन्स

इलाहाबाद - 211002

प्रथम संस्करण : 2018

मूल्य : रु० 160.00

ISBN : 978-81-87568-26-1

प्रकाशक : **के० के० पब्लिकेशन्स**

618, कटरा, इलाहाबाद - 211002, ( उ० प्र० ), भारत

मोबाइल : 9389485578

फारमेटिंग : शान्ती कम्प्यूटर, इलाहाबाद

मुद्रक : रिपब्लिकन प्रेस, इलाहाबाद

# समर्पित

परमपूज्य पिता एवं माता
पिता : स्व० माधो पाठ पिंगुवा
एवं
माता : बुधनी पाठ पिंगुवा
को
अपनी पहली पुस्तक चरणार्पित

# प्राक्कथन

मैं भी "हो" जाति की हूँ, इसलिए मैं जानती हूँ कि "हो" जीवन सम्पूर्ण रूप से लोक जीवन के अतिशय निकट है साथ ही लोक कथाओं एवं सांस्कृतिक जीवन को बहुत नजदीक से समझा एवं परखने के बाद सोचा कि "हो" लोक साहित्य को सबके सामने रखूँ इसलिए इसे पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया है।

मैं "हो" भाषा के जानकार विद्वानों, साहित्यकारों एवं उन सभी महानुभावों को जिनसे मुझे प्रेरणा और ज्ञान मिला उनको नमन् करती हूँ। मुझे विश्वास है कि 'हो' भाषा प्रेमी, विभिन्न प्रशासनिक सेवाओं की प्रतियोगी परीक्षा में शामिल होने वाले विद्यार्थियों, भविष्य के शोधार्थियों के लिए पुस्तक बहुमूल्य सिद्ध होगी।

अंत में अपने परम पूज्य पिता स्व० माधो पाठ पिंगुवा एवं माता श्री बुधनी पाठ पिंगुवा के प्रति श्रद्धानत हूँ, जिन्होंने मुझे पुस्तक लिखने लायक बनाया।

पुस्तकें पाठकों के लिए आखिरी नहीं होतीं, और किताबों से कुछ जानकारी अवश्य मिलती है। इस पुस्तक से भी कुछ नई जानकारी अवश्य प्राप्त होगी। भविष्य के लिए रचनात्मक सुझाव भेजने के आग्रह के साथ।

**डॉ० लक्ष्मी पिंगुवा**

# विषय–सूची

# प्रथम अध्याय

# हो जनजाति एवं भाषा का परिचय

## (क). क्षेत्र :

हो भाषी क्षेत्र के सम्बन्ध में अब तक लोगों की धारणा यही है कि यह भाषा झारखण्ड राज्य के पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर, मेदनीपुर, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। ''हो'' भाषा मुण्डारी की ही एक शाखा है। ''हो'' अलग कोई भाषा नहीं है। मुण्डा भाषा से निकली खेरवारी, संताली, हो, भूमिज, कोरवा, कुर्कू, खड़िया, जुआङ, सबर और गढ़वा भाषाओं में ही ''हो'' का स्थान है।

''हो'' भाषा आस्ट्रिक भाषा परिवार की है। भारत में बोली जाने वाली आस्ट्रिक भाषाएँ आस्ट्रोएशियाटिक और भारत से परे पायी जाने वाली आस्ट्रिक भाषाएँ आस्ट्रोनेशियन भाषा परिवार के अन्तर्गत आती हैं। आस्ट्रोएशियाटिक को दो शाखाओं में बाँटा गया है–मुण्डा और मोनखमेर। मुण्डा के भी दो विभाग हुए–खेरवारी और अन्य। खेरवारी के अन्तर्गत मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया, असुरी, बिरहोरी, थारू आदि बोलियाँ आती हैं।

मुण्डा भाषाएँ योगात्मक परिवार की हैं और इस परिवार की विशेषताएँ ''हो'' में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इन भाषाओं की तुलना ''तुर्की'' से की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषाशास्त्रियों ने इस प्रश्न पर कभी ध्यान दिया ही नहीं है, जिसके फलस्वरूप हो भाषी क्षेत्र का वास्तविक चित्र अभी तक सामने नहीं आ सका है। डॉ० ग्रियर्सन ने हो क्षेत्र के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट किया है–''हो'' भाषा में बोली जाने वाली बोली खेरवार आस्ट्रोएशियाटिक के नाम से जानी जाती है। चूँकि यह पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर, मेदिनीपुर, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि में सबसे अधिक प्रचलित है।

डॉ० उदय नारायण तिवारी ने अपनी पुस्तक ''भोजपुरी भाषा और साहित्य'' में हो भाषी क्षेत्र के सम्बन्ध में लिखा है–''पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्र के अन्तर्गत, जो हो भाषा का एक रूप है।''[1]

डॉ० ग्रियर्सन एवं डॉ० तिवारी के उपर्युक्त मतों से इस भाषा को लेकर एक भ्रम उत्पन्न होता है, क्योंकि ग्रियर्सन ने इसे ''हो'' का एक रूप कहा है तथा डॉ० तिवारी ने इसे हो भाषा का रूप बताया है।

डॉ० श्रवण कुमार गोस्वामी ने अपनी पुस्तक "हो भाषा" में हो की चर्चा करते हुए कहा है कि–"हो भाषा उस बोली का नाम है, जो झारखण्ड के पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर जिले में बोली जाती है, किन्तु जनगणना में ये सब जिले की अलग गणना से यह भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि हो भाषा की एक अलग बोली है, जो अन्य भाषा से भिन्न है। वास्तविकता यह है कि हो भाषा को ही लोग कभी–कभी मुण्डा बोल जाते हैं। अतः "हो" शब्द के अलग प्रयोग की कोई उपयुक्तता नहीं।"[2] डॉ० गोस्वामी हो भाषी क्षेत्र का निर्धारण करते हुए कहते हैं कि सम्पूर्ण सिंहभूम जिले में हो भाषा का प्रयोग होता है। हो भाषा जिसमें पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर, पश्चिम बंगाल, मेदिनीपुर, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं। हो भाषा बोली जाने वाली एक स्वतंत्र भाषा है।

"यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जनगणना में हो भाषा के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग करना उचित नहीं है और अब इसके सर्वप्रचलित नाम हो का ही सर्वत्र प्रयोग होना चाहिए।" अधिक से अधिक हो भाषियों की संख्या अलग से संकलित की जा सकती है। ऐसा करने से जनगणना की वैज्ञानिकता तथा प्रामाणिकता के प्रति सन्देह प्रकट करने का कोई आधार नहीं रह पाएगा। डॉ० गोस्वामी का यह मानना है कि पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर, मेदिनीपुर, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि जिलों में बोली जाने वाली हो भाषियों की संख्या अलग से संकलित करने की बात निश्चित ही हो भाषा की महत्ता एवं इसके क्षेत्र को रेखांकित करती है।

डॉ० विसेश्वर प्रसाद केशरी के विचार डॉ० गोस्वामी के विचार से भिन्न नहीं हैं। अतः डॉ० केशरी ने भी अपनी पुस्तक "नागपुरी भाषा और साहित्य" में लिखा है – "मानभूम, सिंहभूम के पूर्वी और पश्चिमी भागों में उड़िया और बंगला प्रभाव पर हो भाषा बोली जाती है, इसे ही हो भाषा कही जाती है। यह बोली पश्चिमी सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, क्योंझर, मानभूम, मेदिनीपुर, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि जिलों से ही आरम्भ हो जाती है। इसका विस्तार वर्तमान उड़ीसा के क्योंझर, ठाकुरमुण्डा, मेदिनीपुर, मानभूम तक दृष्टिगत होता है।"[3] डॉ० विसेश्वर प्रसाद केशरी ने यह भी लिखा है कि इसका विस्तार उत्तर पूर्व में देवघर तक है।

हो भाषा प्रेमी श्री ज्योति लाल महादानी ने आदिवासी साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख "पंचपरगनिया लोक साहित्य और उसका विस्तार" में लिखा है–"हो भाषा राजनीतिक दृष्टि से सिंहभूम जिला में अवस्थित है। इसके पूरब में मानभूम, मेदिनीपुर और उड़ीसा जिले आते हैं। इससे साफ जाहिर होता है उड़ीसा, मेदिनीपुर, मानभूम तथा सिंहभूम की बोली को हो भाषा कहते हैं, जो सिंहभूम की ही एक बोली है।"[4] इसी लेख में महादानी ने यह भी लिखा है – "मैंने धनबाद एवं पुरूलिया के कई गाँवों का भ्रमण किया है। ग्रामीणों से बातचीत की, लोकगीतों की चर्चा की। इनकी बोली में बंगला के प्रभाव की अधिकता थी। यहीं हो भाषा बोलने वालों की संख्या लाखों में हैं।"[5]

श्री करमचन्द अहीर ने भी हो भाषा समिति, पश्चिमी सिंहभूम को हो भाषा से संबंधित सर्वेक्षण के आधार पर एक रिपोर्ट दी है जिसमें उन्होंने लिखा है–"मैंने उड़ीसा क्योंझर जिले के कुछ गाँवों का भ्रमण किया। यहाँ की बोली न तो बंगला है, न ही उड़िया। यहाँ के लोकगीतों के ताल और लय बिल्कुल वही हैं जो पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, मानभूम, मेदिनीपुर में प्रचलित हैं। यहाँ के रीति–रिवाज भी वही हैं। यहाँ की बोली उड़िया मिश्रित हो है। हो भाषा के क्षेत्र विस्तार के संबंध में जानकारी हेतु मैंने पश्चिम सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, उड़ीसा, मानभूम, मेदिनीपुर आदि जिले के कई गाँवों का भ्रमण किया। भ्रमण के दौरान गाँव वालों से बातचीत, लोकगीत आदि की चर्चा करने पर पता चला कि वहाँ के लोकगीत उसी प्रकार के हैं, जो मंझारी, भरभरिया, कुमारडुँगी, अन्धारी, चमपीला, प्रहमसदा, देवधर, धोबा धोबिन, मझगाँव में गाए जाते हैं। सीमावर्ती जिलों की भाषा का प्रभाव भी हो भाषा में दिखाई पड़ा। चाईबासा, झींकपानी, हाटगमारिया, नोवामुण्डी, गुवा, जागदा, सियालजोड़ा, किरीबुरू, जमशेदपुर, धनबाद, बोकारो के अनेक कोयला खदानों एवं कारखानों में "हो" भाषा बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक है। हो भाषी निवासी पश्चिम सिंहभूम से ही जाकर कई वर्षों से वहाँ छोटे–बड़े कार्यों से जुड़ गये हैं।

अधिकांशतः वे वहाँ के स्थायी निवासी बन चुके हैं। उनकी पहचान वहाँ "हो" के रूप में ही है एवं इनकी भाषा भी हो ही है। मानभूम और सिंहभूम जिलों का सर्वेक्षण करने पर यह ज्ञात हुआ कि यहाँ के लोकगीतों में वही लय और ताल है, जो चाईबासा, झींकपानी, हाटगमारिया, बालान्डिया, धनसारी, मझगाँव आदि क्षेत्रों के लोकगीतों में मिलते हैं। वहाँ जो भाषायी अंतर दिखा वह यह है कि मानभूम की भाषा पर बंगला का प्रभाव ज्यादा है एवं सिंहभूम की बोल–चाल की भाषा में उड़िया का प्रभाव मिलता है। वहाँ के लोगों का रहन–सहन सामाजिक–व्यवस्था, रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार आदि "हो" भाषा से भिन्न नहीं है।

सर्वेक्षण के दौरान उड़ीसा के सुन्दरगढ़ जिले के दो अनुमण्डल बोनाईगढ़ और पानपोस के कई गाँवों में भी मैं गई। वहाँ की भाषा से अवगत होने पर यह स्पष्ट हुआ कि थोड़े बहुत स्थायी प्रभाव के साथ वहाँ भी हो भाषा प्रचलित है। ऐसी जानकारी मिली कि यहाँ के निवासियों के पूर्वज आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व इन गाँवों में पश्चिम सिंहभूम क्षेत्र से आकर बस गये थे। वे लोग अभी तक हो भाषा को भूले नहीं हैं। वे अपने सगे–सम्बन्धियों से हो भाषा में ही अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। यद्यपि इतने दिनों के बाद भी यहाँ की भाषा तथा संस्कृति दोनों हो भाषा ही है।

उपर्युक्त क्षेत्रों के अलावा "हो" से हजारों की संख्या में गैर आदिवासी एवं आदिवासी अपनी आजीविका की खोज में असम तथा बंगाल के चाय बागानों के साथ ही कई अन्य राज्यों में सपरिवार चले जाते हैं। वहाँ भी उनके द्वारा हो भाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हो भाषा सिंहभूग तक ही सीमित नहीं है, इसका क्षेत्र विस्तृत है। अब तक लोगों की जो धारणा रही

है कि हो भाषा सिंहभूम तक ही सीमित है, वह भ्रामक है। साथ ही इन क्षेत्रों की भाषागत एकता असंदिग्ध है और यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि हो भाषा का प्रयोग इन क्षेत्रों में भी एक लम्बे अरसे से होता चला आ रहा है।

## (ख). हो भाषी समुदाय

''हो'' का अर्थ ''मनुष्य'' या ''आदमी'' होता है। मुण्डारी भाषा में इसका पर्यायवाची शब्द ''होर'' और संताली में ''होड़'' है। ''हो'' जनजाति समाज में यह लोक विश्वास प्रचलित है कि वे ''सिङबोंगा'' (परमेश्वर) द्वारा जल प्रलय के बाद सृजित प्रथम मानव युगल लुकु हड़म और लुकु या लुकुमी बुढ़ि की प्रथम सन्तान हैं। मनु और सतरूपा अथवा जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित कामायनी की पौराणिक कथा या मिथक से इसका काफी साम्य है। मुण्डा और हो जनजाति की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह भी लोक कथा या मिथक प्रचलित है कि उत्पत्ति ''हुर'' (हंस) पक्षी के अण्डे से हुई, इसलिए वे ''होर'' या ''हो'' कहलाये।

''हो'' जनजाति को रिजले, डाल्टन, एस०सी० राय, डी०एन० मजुमदार आदि विद्वानों ने ''मुण्डा'' जनजाति की एक शाखा माना है। इन्साइक्लोपेडिया मुण्डारिका (जॉन हॉफमैन) के अनुसार छोटानागपुर में मुण्डा जनजाति की तीन शाखाएँ बनी–1. कम्पाट मुण्डा, 2. महली मुण्डा और 3. हो मुण्डा।

हो मुण्डा अपने को केवल ''हो'' कहने लगे और उनका समूह सिंहभूम (कोल्हान) में जाकर बस गया। अपने जुझारू स्वभाव और युद्ध–प्रियता के कारण अँग्रेज शासकों ने उन्हें ''लरका हो'' (लड़ाकू हो) के रूप में संबोधित किया। हो जनजाति को पूर्व के विद्वानों और शासकों ने ''कोल'' के रूप में भी प्रस्तुत किया है, जो उनके ''कोलारियन'' समूह की एक जनजाति होने का प्रमाण माना जा सकता है।

''मुण्डा'' जनजाति से अलग होकर जब वे सिंहभूम में आये, उस समय वह क्षेत्र घने जंगलों, दुर्गम घाटियों और पहाड़ी श्रृंखलाओं का प्रदेश था। ''हो'' मुख्यतः सारण्डा के वनक्षेत्र में आये और फिर सिंहभूम के दक्षिणी–पूर्वी भाग में फैल गये। उन्होंने इस वनक्षेत्र के जंगल–झाड़ को साफ कर अपने हातु (गाँव) बसाये और धीरे–धीरे कृषि कार्य से जुड़ गए। वे कोल्हान को अपनी मातृभूमि के रूप में अंगीकार कर अपने को गौरवान्वित महसूस किये, जो उनके इस गीत की पंक्तियों से सिद्ध होता है:–

''सिंहभूमि हासारेबु जोनोम लेना, सिंहलेकन पाइटिबु रिका गेया।
जोनोम नेनगा, दिशुम नेलगा, किलिमिलिबु सेबा सिंगारेया।''

अर्थात् ''हम लोगों का जन्म सिंहों की भूमि (या सिंहबोंगा प्रदेश) में हुआ है। हमलोगों को शक्तिशाली सिंहों की तरह कार्य एवं व्यवहार करना चाहिए। हम अपनी मातृभूमि ''सिंहभूम'' के लिए अच्छे काम करें और अच्छाई से इसको सजायें, इसका श्रृंगार करें।''

"हो" चिन्तारहित उन्मुक्त जीवन जीने के आदी या अभ्यस्त हैं। सीमित संसाधन के साथ सुखमय जीवन की कला में वे पारंगत हैं। मान्दर की ताल पर गीत और नृत्य के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति हो जाती है:–

"रसिकनाबु–सोमदि,
नेन जिबोन मेना रेबु रासिकाना किंङ,
नेन जिबोन मेना रेबु रासिकाना किंङ।
काबू नामेया सोमदि,
नेलेकान रासिका दो काबु नामेया किंङ,
नेलेकान रासिका दो काबु नामेया किंङ।
काबू तरिना सोमदि,
नोले रासा लेका दो काबुलरिना किंङ,
बुरूदारू लेका दो काबु बागेन किंङ्।।"

अर्थात् "हे प्रिय दोस्त खुश हो, जब तक यह जिन्दगी है। हम लोग इसके बाद कोई खुशी नहीं पा सकेंगे। क्योंकि हम लोग अनन्तकाल तक नहीं रहेंगे और हमारा जीवन वृक्षों से फूटने वाले कपोलों की तरह हमेशा पंखुड़ित नहीं होता रहेगा अथवा हम मरणशील हैं।" इस प्रकार जीवन्त गीतों के बोल उनके "अखड़ा" में गूँजते रहते हैं। चिन्तामुक्त होकर जीना "हो" जनजाति की विशिष्टता है।

यह उल्लेखनीय है कि सरकार के तत्कालीन सहायक पॉलिटिकल एजेंट कर्नल टिकेल ने 1840 में जब सर्वप्रथम कोल्हान क्षेत्र में "हो" युवक–युवतियों को देखा तो वे उनके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुए। उनके अनुसार "हो काफी स्वस्थ्य और सबल शरीर तथा विस्तृत वक्ष स्थल वाले पहलवान जैसे लगते थे। उनके सुपुष्ट भुजाओं युक्त हाथों में सुशोभित धनुष–बाण किसी को भी प्रभावित कर सकता था।" वे उनके सौम्य सरल व्यवहार से भी काफी प्रभावित थे। "हो" जनजाति में प्रचलित अनेक लोक कथाओं में उनकी वीरता की गाथा देखने–सुनने को मिलती है। सिंहभूम में आने के बाद अँग्रेजी या ब्रिटिश काल में उन्हें अपनी आजादी के लिए काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा। पर वे कभी भी पराजित नहीं हुए।

सिंहभूम (कोल्हान) क्षेत्र में उन्होंने अपने तरीके से स्वायत्तशासन की नींव डाली और "पीड़" पंचायतों की स्थापना की। इसकी व्यवस्था के लिए "मुण्डा" तथा "मानकी" के पदों का सृजन किया। आदिकाल से चला आ रहा यह उनका सामुदायिक और सामूहिक जीवन के अनुरूप व्यवस्था थी। इनके अनुसार गाँव की सम्पूर्ण कृषि भूमि, वन एवं जल संसाधन पर पूरे गाँव का या एक किलि (गोत्र) विशेष का सामूहिक अधिकार था। जिस वन क्षेत्र को साफ कर उन्होंने कृषिभूमि बनायी थी, उस पर उनका "खूँटकट्टी" अधिकार माना गया।

"हो" समाज "पितृकुल" प्रधान होता है और सम्पत्ति का अधिकार पुत्र या पुत्रों को ही मिलता है। लड़की या पुत्री को चल–अचल सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता है। विवाह के पूर्व वह भरण–पोषण की अधिकारिणी होती है। "गोनोङ" अथवा "वधूमूल्य" के रूप में नकद राशि और पशुधन लेने का अधिकार कन्यापक्ष को होता है। अनेक पुत्र विहीन परिवार में लड़की कुँवारी रह जाती है, ताकि उस परिवार की सम्पत्ति "गोत्रजों" (गोतिया) द्वारा न हड़प ली जाय। अधिक गोनोङ के चलते भी कुछ लड़कियाँ कुँवारी रह जाती हैं।

"हो" समाज में विवाह या बापला (आँदि) की कई परम्पराएँ प्रचलित रही हैं। इनमें आँदी (माता–पिता द्वारा तय किया गया विवाह), दीकू आँदी (गैर हो परम्परा से ब्राह्मण द्वारा कराई गयी शादी), ओपोरतिपिः (भगाकर शादी या प्रेम–विवाह), राजी–खुशी (बिना गोनोङ की शादी) और अनादेर अथवा कन्या द्वारा अपने प्रेमी के घर में जबरदस्ती प्रवेश कर शादी रचाना प्रमुख है। उच्च शिक्षा प्राप्त और उच्च पदों पर कार्यरत युवक–युवतियों की शादी में परम्परा से हटकर कतिपय आधुनिक परम्परा का विवाह प्रचलन देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी परम्परागत शादियाँ ही सम्पन्न होती हैं। विवाह में "डियंग" की व्यवस्था का सामाजिक एवं धार्मिक महत्व माना जाता है। "सगोत्री" विवाह पूर्णतः वर्जित है। गैर हो से शादी (काः जोम इसीन) को "हो" समाज कभी भी स्वीकार नहीं करता और सामाजिक बहिष्कार का दुःख झेलना पड़ता है। शादी "दिउरी" (हो पुजारी) द्वारा सम्पन्न कराई जाती है। ससुराल के लिए विदा होते समय विवाहिता को "उलिसाखी" (हिन्दी में आम विवाह) की रस्म अदा करनी पड़ती है।

"हो" जनजाति में लगभग 127 किलि (गोत्र और उपगोत्र) हैं। इनके कतिपय मुख्य गोत्र – अल्डा, बालमुचु, बांकिरा, बानरा, बारी, बारला, भेंगरा, बिरूवा, बोदरा, चम्पिया, चोड़ा, देवगम, दोराई, गगराई, गिलुआ, हांसदा, हेम्ब्रोम, जामुदा, जारिका, कलुन्डिया, कांडेयांग, कुंकल, मेलगांडी, सोय, पाठ पिंगुवा, हेस्सा पिंगुवा, पुरती, सिंकू, समद, सुन्डी, तियु, तुबिद आदि हैं।

विवाह के बाद गर्भधारण करना उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। शादी के बाद काफी समय तक जब कोई वधू गर्भवती नहीं होती है या मरे हुए शिशु को जन्म देती है तो उसे किसी "प्रेत" या "अपकर्म" का प्रभाव माना जाता है। इसके निदान के लिए मुर्गा या बकरा–बकरी की बलि संबंधित प्रेत या पितृ प्रेत को संतुष्ट करने के लिए दी जाती है और "अदिंग" (घर का पूजा स्थल) में पूजा की जाती है। गर्भवती के लिए अनेकों विधि–निषेध प्रचलित हैं; ताकि गर्भस्थ शिशु का जन्म बिना किसी बाधा के हो जाए। सौर–गृह की सुरक्षा और साफ–सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शिशु के जन्म होने के बाद बुटिलाइः (नाल काटना) तुकातोपा (नाल–पुरइन गाड़ना), नियर एड़ः (नौ दिन का छूत) आदि

मुख्य संस्कार हैं। इसके अतिरिक्त नामकरण संस्कार छठी का भोज, मुँहजुठी, कर्णभेदन (लड़की का) आदि भी मुख्य संस्कार हैं। हो लड़के–लड़कियाँ जब बड़े हो जाते हैं तो मनोरंजन और अपने को स्वस्थ्य रखने के लिए अनेक प्रकार के ग्रामीण खेल खेलते हैं, जिनमें छूर, कांजू, कासा, होतादंडा, फुलाओचल, लन्दापाती, माली–इनू, बागा आदि प्रमुख हैं। ''मुर्गा लड़ाई'' भी हो क्षेत्र का एक प्रमुख खेल है। परन्तु अब इसको ''जुआ'' की तरह खेला जाने लगा है।

मृत्यु को ''हो'' समाज में एक ईश्वरीय व्यवस्था या प्राकृतिक घटना मानी जाती है। मृत्यु या मृतक के सन्दर्भ में वे किसी भय या अनिष्ट का अनुभव नहीं करते। उनमें ''पुनर्जन्म'' का लोक विश्वास काफी हद तक रूढ़ है। ये केवल ''अकाल मृत्यु'' या असामयिक मृत्यु को अशुभ और ''प्रेत'' या ''डायन'' (डइया) का प्रकोप मानते हैं। मृतक को वे ''हसा दुबङ'' या कब्र में गाड़ते हैं, जिसे ''तोपा'' कहा जाता है। कहीं–कहीं मृतक को जलाया भी जाता है, जिसके बाद अस्थि अवशेष को गाड़ देते हैं। इस क्रिया को वे ''जङ तोपा'' कहते हैं। मृतक के कब्र पर स्मृति चिन्ह के रूप में एक पत्थर गाड़ दिया जाता है, जिसे ''दिरि तेनतोपा'' कहा जाता है। मृतक के लिए श्राद्ध का भोज भी आयोजित किया जाता है।

''हो'' समाज में प्रचलित धार्मिक लोक विश्वास के आधार पर अनेकों देवी–देवता–प्रेतों की परिकल्पना की गई है। उनके बोंगा (देवता), एरा (देवी) और रोआ (छाया) को विभिन्न पर्व–त्योहार, शादी–विवाह, श्राद्ध आदि के अवसर पर उन्हें पूजा तथा बलि प्रदान कर सन्तुष्ट करने का विधान है। ''सिङबोंगा'' (पहाड़ के देवता), बीरबोंगा (वन देवता), गोएटे या गोवाबोंगा (गोहाल देवता), कोलोम बोंगा (खलिहान के देवता) आदि मुख्य हैं। देवियों में जहेर एरा (पूजा स्थल की देवी), नगे एरा (जल देवी), बगेया एरा (वृक्ष की देवी), कुदरा एरा (वन देवी) आदि प्रमुख हैं। धन कुदरा और बुनुम कुदरा कष्ट देने वाली देवी हैं।

''हो'' जनजाति का आर्थिक आधार मुख्य रूप से कृषि है और उनका पर्व–त्योहार, मेला आदि कृषि चक्र से जुड़ा रहता है। पूरे वर्ष को वे ''हो कृषि कलेन्डर'' के रूप में बाँट कर उसके अनुरूप अपने जीवन और समाज को विनियमित और नियंत्रित करते हैं। इसे टेबुल द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस प्रकार ''हो'' का वार्षिक कलेन्डर काफी वैज्ञानिक और व्यवहारिक होता है। उपर्युक्त कार्यावली के अनुरूप ही ''हो'' समाज का पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन चक्र ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित रहता है। कृषि कार्य के अतिरिक्त महुआ फूल, महुआ बीज, करंज और नीम का बीज, साल बीज आदि का संग्रह विभिन्न ऋतुओं में किया जाता है। ईमली और आम भी हो क्षेत्र में काफी मात्रा में मिलते हैं। ये सभी आर्थिक जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। कोल्हान से बाहर जाकर नौकरी करने वाले लोग भी पर्व–त्योहार तथा मुख्य कृषि कार्य के समय अपने गाँव आ जाते हैं।

| "हो" चन्डु (महीना) | अँग्रेजी महीना | कृषि से संबंधित कार्य एवं कृत्य | पर्व त्योहार आदि |
|---|---|---|---|
| माघे चन्डु | जनवरी–फरवरी | धान, दलहन आदि की कटनी | माघे पर्व शादी का आयोजन |
| मटकम चन्डु | फरवरी–मार्च | खेतों की जोताई महुआ चुनना | विवाह–शादी, माघे पर्व |
| बाहा चन्डु | मार्च–अप्रैल | बेड़ा जमीन में कृषि कार्य (धान छींटना) | बाहा पर्व |
| बाबा हेर चन्डु | अप्रैल–मई | गोड़ा तथा निचले बेड़ा जमीन में धान बुनना/रोपनी | धान बुनना हेर मुट पर्व |
| हेरो चन्डु | मई–जून | गोड़ा धान की निकौनी और आड़ बनाना | हेरो पर्व देशाउली पर्व |
| गोमा (गामा) चन्डु | जून–जुलाई | धान रोपनी, सोहनी आड़ की मरम्मती | बहातुली/बताउली पर्व |
| इंदि चन्डु | जुलाई–अगस्त | कुरथी, उड़द, सुरगुजिया आदि बुनना, गोड़ा की जोताई/कटाई | जोमनामा पर्व |
| जोमनामा चन्डु | अगस्त–सितम्बर | गोड़ा और गोंदली की कटनी | जोमनामा पर्व |
| बाबा इर चन्डु | सितम्बर–अक्टूबर | ऊपर बेड़ा धान की कटनी, मसूर बुनना | कोलोम/खलिहानी पर्व |
| सर्दी चन्डु | अक्टूबर–नवम्बर | बेड़ा धान की कटनी, दौनी, दलहन बुनना | कोलोम पूजा, देशाउली बोंगा, मारंग बोंगा, सिंङ बोंगा पूजा |
| मकर चन्डु | दिसम्बर–जनवरी | खेत की जोताई | मकर पर्व, गोहाल पर्व |

## (ग) जनसंख्या–

जनसंख्या की दृष्टि से झारखण्ड की जनजातियों में संताल, उराँव एवं मुण्डा के बाद हो का चौथा स्थान है। 1991 की जनगणना के अनुसार इनकी कुल जनसंख्या 6,30,378 है, जिसका 99.47 प्रतिशत सिंहभूम (पूर्वी–पश्चिमी सिंहभूम एवं सरायकेला जिले) में निवास करते हैं, तथा शेष झारखण्ड में जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है :–

**झारखण्ड में हो का वितरण (1991)**

| जिला | जनसंख्या |
|---|---|
| राँची | 555 |
| साहेबगंज | 57 |
| लोहरदगा | 65 |
| हजारीबाग, चतरा, कोडरमा | 710 |
| प०सिंहभूम + सरायकेला | 589109 |
| देवघर | 13 |
| गुमला + सिमडेगा | 283 |
| धनबाद + बोकारो | 1316 |
| प० सिंहभूम | 37947 |
| गिरिडीह + बोकारो | 106 |
| गोड्डा | 0 |
| **कुल जनसंख्या हो की** | **6,30,061** |

जनसंख्या में वृद्धि दर भले ही धीमी रही हो किन्तु कुल आबादी में निरन्तर वृद्धि होती रही है, जो विभिन्न जनगणना दशकों के आँकड़ों से प्रतीत होता है:-

**झारखण्ड में हो जनसंख्या में वृद्धि :**

| जनगणना वर्ष– | 1941 | 1961 | 1971 | 1981 | 1991 | 2001 | 2011 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जनसंख्या– | 383737 | 454756 | 505172 | 536523 | 630378 | 806472 | 1011296 |

जनसंख्या की दृष्टि से एक बात उभर कर सामने आती है कि हो समाज में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या अधिक रही है। 1961 ई० में पुरूषों की संख्या 219367 और महिलाओं की संख्या 235379 तथा 1971 ई० की जनगणना में इनकी संख्या क्रमशः 247554 एवं 257618 रही है। इसके विश्लेषण से इन दो दशकों में लिंगानुपात क्रमशः 1073 एवं 1043 है, जो महिलाओं की संख्या में लुढ़कने का भी संकेत है। हो का वास स्थान मुख्यतः कोल्हान क्षेत्र है, जो निम्न छोटानागपुर पठार का भाग है।

## (घ) सांस्कृतिक विशेषताएँ:-

झारखण्ड में कई प्रकार के समाज हैं। यहाँ अलग–अलग रीति–रिवाज, संस्कृति, धर्म एवं विश्वास के मनाने वाले लोग हैं। जनजातीय समाज भी सदान समाज से प्रभावित हुआ है। जनजातीय समाज की कुछ रीतियों, रिवाजों एवं संस्कृति को पिछड़ेपन का कारण समझकर उपेक्षा करते हैं। जनजातीय समाज के रीति–रिवाज, संस्कृति एवं अस्मिता की पहचान विलुप्त होने जा रही है। जनजातीय समाज दो विचार धाराओं में बाँटा हुआ है–पुरानी और आधुनिक विचार धारा। आज के समय में दोनों विचार धारा महत्वपूर्ण हैं। पुराने विचार अस्मिता की रक्षा करते

हैं। आधुनिक विचार धारा समय और विकास के साथ चलने को प्रेरित करता है। जनजातीय ''हो'' समाज में रीति–रिवाज विशेष कर तीन प्रकार हैं –

(1) जन्म संस्कार,, (2) शादी–विवाह संस्कार, (3) मृत्यु संस्कार

**1. जन्म संस्कार :–** जन्म संस्कार घर में नया सदस्य आने से उसका स्वागत विधि–विधान से करते हैं। समाज में बच्चे के नये जन्म को हो समाज भी अछूत मानता है। इसलिए माँ तथा नवजात शिशु को अलग घर में रखा जाता है। गर्भावस्था से लेकर छठीयारी तक प्रकृति एवं संस्कृति के नियमों का पालन करना पड़ता है। बच्चे जन्म के बाद माँ–बाप को किसी पूजा स्थल या देव स्थान नहीं जा सकते हैं। जाने से बच्चे पर बुरा असर पड़ता है। बच्चे के नौ दिन होने के बाद जल देवता (नगे एरा) को हल्दी अर्पित करते हैं। हल्दी बहुत ही पवित्र वस्तु मानी जाती है। इक्कीस दिनों में छठी मनायी जाती है। इस दिन बच्चे का बाल कटवाते हैं। इसी दिन से घर का छूत समाप्त हो जाता है। बच्चे का नामकरण इसी दिन होता है। नामकरण किसी घर वालों के नाम यानि पूर्वजों के नाम से चावल, उरद और दूब घास थाली में रखे पानी में डालते हैं। तीनों एक साथ पानी के ऊपर में सट जाते हैं तो उसी पर शिशु का नाम रखते हैं। इस प्रकार जन्म संस्कार एवं नामकरण मनाते हैं।

**2. विवाह संस्कार :–** शादी एक पवित्र रिश्ता है। यह लड़के–लड़की के रिश्तों को मजबूत बनाता है। समाज में शादी कई प्रकार से सम्पन्न की जाती है। आर्थिक दृष्टि से मजबूत परिवार पण्डित के द्वारा (दिकु आँदी) हिन्दू–विवाह से सम्पन्न किया जाता है। कमजोर परिवार राजी–खुशी या अपहरण कर शादी करते हैं। समाज में लड़की की बहुत इज्जत होती है, इसलिए लड़का वालों को वधू मूल्य देकर लड़की को अपना घर लाते हैं। वधू मूल्य वधू पक्ष तय करता है। वधू मूल्य में लड़की को सिंगार के लिए रकम वर पक्ष ही देता है। एक जोड़ा बैल और दण्ड स्वरूप दीदी के नाम से एक खस्सी और मुर्गा देना पड़ता है। जरूरत के सभी सामानों के साथ विदा किया जाता है।

समाज में वर्जित हैं–एक ही गोत्र में शादी नहीं होती है। एक विवाह प्रथा है। अन्तर जातीय विवाह वर्जित है। जीजा–साली, देवर–भाभी और विधवा का विशेष परिस्थिति में पुनर्विवाह परम्परा से चला आ रहा है। शादी–विवाह में पारम्परिक नाच–गान चलते हैं।

**3. मृत्यु संस्कार :–** समाज में मृत्यु संस्कार को दो प्रकार से सम्पन्न किया जाता है–जलाकर एवं दफनाकर।

1. उत्तर–दक्षिण की ओर शव का सिर–पैर कर बक्सा बनाकर जलाते हैं।

2. दक्षिण की ओर सिर और उत्तर की ओर पैर रखकर गढ़ा खोद कर (ससन दिरी) पत्थर में ही दफनाते हैं। उनकी छाया को घर में बुलाते हैं। घर देवता के रूप में उसकी छाया को पूजा की जाती है। ये आत्मा परिवारों की रक्षा करती हैं। मृत व्यक्ति का अंतिम संस्कार इस प्रकार किया जाता है।[6]

## (ङ). हो भाषा का सामान्य परिचय :

"हो" भाषा मुण्डा भाषा की ही एक शाखा है। "हो" अलग कोई भाषा नहीं है। मुण्डा से निकली खेरवारी, संताली, हो, भूमिज, कोरवा, कुर्कू, खड़िया, जुआङ, सवर और गढवा भाषाओं में ही "हो" का स्थान है।

"हो" भाषा आस्ट्रिक भाषा परिवार की है। भारत में बोली जाने वाली आस्ट्रिक भाषाएँ आस्ट्रोएशियाटिक और भारत से परे पायी जाने वाली आस्ट्रिक भाषाएँ आस्ट्रोनेशियन भाषा परिवार के अन्तर्गत आती हैं। आस्ट्रोएशियाटिक को दो शाखाओं में बाँटा गया है – मुण्डा और मोनखमेर। मुण्डा के भी दो विभाग हुए– खेरवारी और अन्य। खेरवारी के अन्तर्गत मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया, असुरी, बिरहोरी, थारू आदि बोलियाँ आती हैं।

आस्ट्रोनेशियन को तीन भागों में बाँटा गया है–इण्डोनेशियन, पोलिनेशियन तथा मेडागास्कर। मुण्डा भाषाएँ योगात्मक परिवार की हैं और इस परिवार की विशेषताएँ "हो" में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इन भाषाओं की तुलना "तुर्की" से की जा सकती है। "मुण्डा में शब्द निर्माण के लिए प्रत्यय संयुक्त होते चले जाते हैं। इस प्रकार से निर्मित शब्द अपने में पूर्ण होते हैं और इस शब्द का प्रत्येक अक्षर पूर्ण अर्थ को घोषित करने में सहायक होता है।"[7] "दूसरे शब्दों में, योगात्मक भाषाएँ उन्हें कहते हैं, जिनमें सम्बन्ध तत्व, अर्थ–तत्व के साथ जोड़ दिया जाता है। इसके तीन वर्ग होते हैं – अश्लिष्ट, श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट। अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में अर्थ–तत्व के साथ संबंधित तत्व जुड़ता जरूर है, पर दोनों की सता स्पष्ट झलकती है। यह योग पूर्व, मध्य और अन्त तीनों में होता है। आग्नेय भाषाएँ एक साथ मध्य योगात्मक, अन्य योगात्मक और पूर्वान्त योगात्मक है।"[8] आग्नेय भाषाओं में धातुएँ द्वियाक्षर होती हैं। बलाघात इनमें से प्रायः प्रथम अक्षर पर होता है। भाषा शास्त्रियों का अनुमान है कि द्वियाक्षर धातु पहले एकाक्षर रही होगी। क्रिया में उपसर्ग और प्रत्यय मिलते हैं। ये सभी विशेषताएँ "मुण्डा" शाखा की "हो" भाषा में भी विद्यमान हैं।

जिस प्रकार हिन्द–चीनी भाषाओं में अंतिम व्यंजन के अवसर को रोककर अथवा निम्नस्तर करके उच्चरित किया जाता है, उसी प्रकार मुण्डा में भी व्यंजन का उच्चारण होता है। मुण्डा भाषाओं में ("हो" सहित) यद्यपि पुलिंग तथा स्त्रीलिंग संज्ञाओं का भेद वर्तमान है, तथापि वास्तव में वहाँ दो ही लिंग है। इनमें से एक का संबंध प्राणिवाचक वस्तुओं से तथा दूसरे का संबंध अप्राणिवाचक से है।

"संस्कृत की तरह "हो" भाषा में एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन–तीन वचन पाये जाते हैं। संज्ञा में अन्य पुरूष सर्वनाम के द्विवचन तथा बहुवचन के रूप जोड़ने से ही दोनों वचन सम्पन्न होते हैं। व्यक्तिवाचक सर्वनामों के सभी लघु रूप क्रियाओं के प्रत्यय रूप में स्वतंत्रतापूर्वक व्यवहारित होते हैं। उत्तम पुरूष सर्वनाम के द्विवचन तथा बहुवचन के दो–दो रूप होते हैं, जिनमें प्रथम सम्बोधित पुरूष मुक्त तथा द्वितीय उससे रहित होता है। इसमें संबंधवाचक सर्वनाम के स्थान पर क्रिया के कृदन्तीय रूपों का व्यवहार होता है। आर्य भाषा की तरह इसमें भी क्रियापद होते

हैं। किन्तु वह एक विचार को ही घोषित करता है। परन्तु इससे किसी कार्य के होने या करने का अधिकार पूर्ण भावना स्पष्ट नहीं होती।"[9]

मुण्डा भाषा के ध्वनि समूह में स्वर तथा सघोष अघोष एवं अल्पप्राण व्यंजन ही पाये जाते हैं। "मुण्डा" में घर के लिए "ओड़ा" का प्रयोग करते हैं, जबकि "हो" में "ओवा" का व्यवहार होता है। "हो" में "खाना" को "काना" और घर को "गर" उच्चारित करते हैं। हिन्दी के सभी स्वर, स्पर्श वर्ण – य, र, ल, व, स, ह (ड़ छोड़कर) "हो" में पाये जाते हैं। पर इनके अलावा अर्द्ध व्यंजन क, च, त, प हैं, जिनका उच्चारण भिन्न है। इनके उच्चारण में पहले वायु अन्दर की ओर खींची जाती है, तब स्पर्श होता है, फिर स्फुट।

"हो" में अ, आ, ए, ई, ओ, उ स्वर वर्ण हैं जो लम्बे, छोटे अल्पप्राण, महाप्राण आनुनासिक आदि ध्वनि रूप में प्रयुक्त होते हैं। मूलतः "अ" अल्पं (धीमा) केन्द्रीय स्वर, "ए" मध्य अग्रस्वर "ई" (आई) उच्च अग्रस्वर, "ओ" मध्य पार्श्व (पज्व) स्वर तथा उ (यु) उच्च पश्च स्वर हैं। उदाहरणतः "ए" जब लम्बा स्वर के रूप में व्यवहारित होकर "में", "ड" के रूप में आता है तो उसका अर्थ 'लोहा" होता है और लघु स्वर में व्यवहारित होने पर "मेन्ड" का अर्थ आँख होता है। इस प्रकार स्वर की ध्वनि के विस्तार एवं संकोच से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार "सेता" (अल्प स्वर) का अर्थ कुत्ता होता है और सेताः (लम्बा स्वर) बोलते हैं तो उसका अर्थ "सुबह" हो जाता है।

जो शब्द हिन्दी से "हो" भाषा में आये हैं, उनमें प्रयुक्त व्यंजन अथवा **स्वर में** उच्चारण भेद के कारण परिवर्तन हो जाते हैं, परन्तु अर्थ नहीं बदलता।

| **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|
| वकील | उकिल |
| वजन | ओजोन |
| वंश | वोंस |

इसी प्रकार हिन्दी में प्रयुक्त "य" हो में "ज" हो जाता है।

| **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|
| योगी | जोगी |
| युग | जुग |
| यात्रा | जतारा |

हिन्दी की बोली रूप एवं झारखण्ड की नागपुरी में भी य का ज हो जाता है, जैसे – यमराज – जमराज, यमुना – जमुना, यज्ञ – जग आदि। उच्चारण में कुछ व्यंजन का लोप भी हो जाता है। यथा –

| **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|
| महाजन | माजोन |
| काजल | काजोल |

हिन्दी में उच्चारित महाप्राण व्यंजन ध्वनियाँ ''हो'' में प्रयुक्त होने पर अघोष बन जाती है।

| **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|
| ठीक | टिकि |
| सुख | सुकु |
| घर | गर |
| खाना | काना |
| प्रधान | परदान |

उपर्युक्त उदाहरण में हिन्दी का ठ – ट, ख – क, घ – ग, ख – क, ध – द हो उच्चारण में हो गया है।

''न'' का प्रयोग ''हो'' में ''ङ'' के रूप में होता हे, जो उच्चारण भेद से जाना जाता है।

| **व्यंजन** | **प्रयोग** | **शब्द** |
|---|---|---|
| न | ङ | अपुङ (पिता) |
| न | | अपुञ (मेरे पिता) |

जैसा कि पूर्व में प्रस्तुत किया गया है, ''हो'' में संज्ञा के भेद हिन्दी व्याकरण से भिन्न है। इनमें जीवधारी एवं निर्जीव के लिए दो संज्ञा भेद है। उसी प्रकार सर्वनाम में भी जीवधारी तथा निर्जीव पदार्थों के अनुसार भेद पाये जाते हैं। ''हो'' भाषा में व्यक्तिवाचक सर्वनाम के 11 भेद हैं।[9]

| **एकवचन** | **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|---|
| 1. उत्तम पुरूष | मैं | अम् |
| 2. मध्यम पुरूष | तुम | अम |
| 3. अन्य पुरूष | वह | अए |
| **द्विवचन** | **हिन्दी** | **हो** |
| 1. उत्तम पुरूष (जोड़कर) | तुम और मैं | अलिङ |
| 2. मध्यम पुरूष (छोड़कर) | वह और मैं | अलिङ |
| 3. मध्यम पुरूष | तुम दोनों | अबेन |
| 4. अन्य पुरूष | उनमें से दो | अकिङ |
| **बहुवचन** | **हिन्दी** | **हो** |
| 1. उत्तम पुरूष (जोड़कर) | हमलोग तीनों (तुमको लेकर) | अबु |
| 2. उत्तम पुरूष (छोड़कर) | हमलोग तीनों (तुमको छोड़कर) | अले |
| 3. मध्यम पुरूष | तुम लोग (तीन या अधिक) | अपे |
| 4. अन्य पुरूष | वे लोग (तीन से अधिक) | अको |

''हो'' भाषा में ''यही'' और ''वही'' के लिए कोई अनुरूप शब्द नहीं है। अतः ''यही'' के लिए ''नेया'' तथा ''वही'' के लिए ''एना'' शब्द का प्रयोग होता है।

संज्ञा (प्राणीवाचक) के द्विवचन में मूल संज्ञा के अन्त में "किङ" या "किं" तथा बहुवचन में "को" लगा दिया जाता है।

| | हिन्दी | हो |
|---|---|---|
| एकवचन | लड़का | सिटिया |
| द्विवचन | दो लड़का | सिटिया किङ |
| बहुवचन | लड़के (लोग) | सिटिया को |

अप्राणीवाचक (निर्जीव) वस्तुओं के लिए ये चिन्ह नहीं जोड़े जाते हैं।

"हो" में कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रयोग संज्ञा, क्रिया तथा विशेषण के रूप में किया जाता है।

यथा –

| हो | भेद | अर्थ |
|---|---|---|
| चकड् | क्रिया | धोखा देना |
| चकड् | संज्ञा | धोखा |
| चकड् | विशेषण | धोखेबाज |

हो भाषा में आदर दर्शाने के लिए कभी–कभी एकवचन के लिए द्विवचन का प्रयोग होता है, यथा –

| हिन्दी | हो |
|---|---|
| तुम बैठो | आम दुब में |
| आप बैठिये | आबेन दुब वेन |

हो भाषा में मूल क्रिया शब्द में न (नो, ने, नाम) लगाकर भाववाचक संज्ञा बनाया जाता है। यथा –

| मूल शब्द क्रिया | अर्थ | भाववाचक संज्ञा | अर्थ |
|---|---|---|---|
| 1. गोएः | मारना (जान से) | गोनोयः | मृत्यु |
| 2. असि | निवेदन करना | अनासि | निवेदन |
| 3. रकब | चढ़ना | रनाकब | चढ़ाई |
| 4. एटेः | शुरू करना | एनेटेः | प्रारम्भिक |
| 5. तोउङः | फैलाना | तनाउङः | प्रसार, फैलाव |

"हो" भाषा में मे, पर, तक आदि निम्न प्रकार लगाये जाते हैं।

| हिन्दी चिन्ह | हो | प्रयोग | हिन्दी अर्थ |
|---|---|---|---|
| पर | रे | करकोमरे | बिस्तर पर |
| में | र | ओवः रे | घर में |
| से | एते | ओवःएते | घर से |

उपर्युक्त प्रत्ययों में "एते" का स्वर व्यंजन वर्ण के बाद (अन्त में) दीर्घ एवं स्वर के बाद ह्रस्व (छोटा) उच्चरित होता है। कुछ शब्दों में जैसे – "तो" के साथ एते नहीं जोड़कर "से" जोड़ा जाता है। यथा – ती ते (हाथ से) इसी प्रकार विशेषणों के साथ जुड़ने वाले प्रत्ययों का प्रयोग हो भाषा में निम्न प्रकार होता है।

| **हिन्दी प्रत्यय** | **हो रूप** | **उदाहरण** | **अर्थ** |
|---|---|---|---|
| में/पर | रे | नेनरे / नेरे | यहाँ |
| में/पर | रे | एन रे | वहाँ |
| में/पर | रे | ओकोनरे | कहाँ |
| तक | ते | मेनते/नेते | यहाँ |
| तक | ते | नेन एते | यहाँ से |
| से | एते | एन एते | वहाँ से |
| से | एते | ओकोनएते | कहाँ से |

उपर्युक्त प्रत्ययों के पश्चात् "ताः" एवं "पा" जोड़कर किसी निश्चित स्थान या लगभग स्थान का बोध कराया जाता है। यथा –

| | |
|---|---|
| नेनताः ते | ठीक इस स्थान तक |
| नेनपाते | लभगभग इस स्थान तक |

"ता" एवं "पा" को अन्य संज्ञा एवं सर्वनाम के साथ जोड़कर भी सामान्य अर्थ निकाला जाता है। यथा –

| | |
|---|---|
| अञताःते | मुझ तक |
| हातुपाते | ग्राम के निकट तक (आस–पास तक) |

इसी प्रकार "हो" भाषा में अन्य विशेषण हैं, यथा–एदोर, हान, तोर, तेर जिनके साथ ते, रे एते को जोड़कर स्थान की दूरी आदि का सम्बन्ध जाना जाता है।

"हो" भाषा में भी सकर्मक एवं अकर्मक क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं के अन्त में कारक का चिन्ह लगाकर वाक्य पूरा किया जाता है। यथा –

| **हिन्दी चिन्ह** | **क्रिया** | **प्रयोग** | **अर्थ** |
|---|---|---|---|
| में | दुब | दुब में | तुम बैठो |
| बेन | दुब | दुब बेन | तुम दोनों बैठो |
| पे | दुब | दुब पे | तुम सभी बैठो |

कुछ क्रियाओं में "में" न लगाकर "म" ही जोड़ना उच्चारण की दृष्टि से ठीक होता है।

**यथा**–"हुजु" (आना) के साथ "में" के स्थान पर "म" "हुजुःम" (आओ) बोला जाता है।

क्रिया को कर्तृवाच्य के रूप में प्रयुक्त करने के लिए "हो" में यदि शब्द का अन्त "स्वर" से होता है तो "न" एवं व्यंजन से होता है, तो "एन" जोड़ दिया जाता है। **यथा** –

| **मूल शब्द** | **अर्थ** | **चिन्ह** | **प्रयुक्त शब्द** | **हिन्दी अर्थ** |
|---|---|---|---|---|
| तम | मारना | एन | तमेन में | अपने को पीटो |
| ओड़ा | नहाना | न | ओड़ान में | अपने नहाओ |
| हपा | चुप रहना | न | हपन में | चुप रहो |
| उठा | उठाना | न | उठान में | उठ जाओ |

''हो'' भाषा में कर्मवाच्य में क्रिया को बदलने के लिए ''वोः'' लगाया जाता है। ''हो'' में प्रायः किसी कार्य के होने का अर्थ या भाव ही कर्म–वाच्य में दर्शाया जाता है।

**उदाहरण :**

| **हो** | **हिन्दी** | **कर्मवाच्य** | **हिन्दी** |
|---|---|---|---|
| बुगि, बुगिन | अच्छा होना | बुगियोः, बुगिनीः | अच्छा होना |
| हरा | बढ़ना | हरावोः | बार्धक्य |
| मरङ | बड़ा होना | मरङो | बड़ा होना |
| बी | पेट भरना | वियोः | भरपेट |

सकर्मक क्रिया के साथ निर्जीव एवं सजीव वस्तु को दर्शाने के लिए विशेष सूचक चिन्ह लगाकर उसका अर्थ ध्वनित किया जाता है। सजीव सूचक चिन्ह ''में'' या ''म'', ''बेन'', ''पे'' के बीच में ''ए'' लगाया जाता है।[1]

यथा –

1. फल खाओ – जो जोमे मे खा जोमेम
2. तुम दोनों इसे खाओ – जोमे बेन
3. तुम लोग इन फूलों को पकड़ो – बा को सबे पे
4. इस चीज को पकड़ो – नेना सबे पे

इसी प्रकार क्रिया एवं पुरूष के विभिन्न रूपों में भिन्न--भिन्न सूचक चिन्हों को लगाकर अर्थ परिवर्तन किया जाता है। यह ''हो'' भाषा की विशेषता है। लिंग भेद ''हो'' भाषा में भी होता है। परन्तु लिंग भेद बताने के लिए स्त्री एवं पुरूषवाची शब्दों को जोड़ना पड़ता है। इसके लिए ''कोवा–कुई'', ''एँगा–सान्डी'' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। यथा –

| **लिंग** | **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|---|
| पुलिंग | लड़का | कोवा होन |
| स्त्रीलिंग | लड़की | कुई होन |
| पुलिंग | मुर्गा | सान्डी सिम |
| स्त्रीलिंग | मुर्गी | एँगा सिम |

इस प्रकार कोवा–कुई मनुष्य के लिए तथा एँगा–सान्डी पशु–पक्षी के लिए प्रयुक्त होते हैं। नागपुरी भाषा में भी ऐसा ही प्रयोग होता है। नर–मादा के लिए साँढा–ढाइढ अथवा मेदा–मेदी जोड़ते हैं। साँढा पेरवाँ – नर कबूतर, मेदी चरइ – मादा चिड़िया।

''हो'' में नपुंसक लिंग भी होते हैं, जिसका व्यवहार निर्जीव वस्तुओं के लिए किया जाता है। यथा –

| **हो** | **हिन्दी** |
|---|---|
| जाटी | चटाई |
| करकोम | चारपाई |

"हो" में उभयलिंग भी होते हैं, जिससे दोनों लिंगों (स्त्रीलिंग एवं पुलिंग) का बोध होता है। यथा –

| हो | हिन्दी |
|---|---|
| जुड़ी | साथी, मित्र |
| मेरोम | बकरा या बकरी |
| होन | लड़का या लड़की |
| उरि | गाय या बैल |

नागपुरी में भी यही विशेषता मिलती है, जैसे – गोई (भाभी की बहन या जीजा की बहन), सहिया (मित्र – स्त्री या पुरूष), पिया (प्रिय–प्रिया), गरू (गाय–बैल), कौआ (कौआ–कौवी), चरइ (चिड़िया नर या मादा) आदि।

कारक के चिन्ह भी "हो" भाषा के अपने कर्ता का "ने" तथा कर्म का "को" चिन्ह का "हो" भाषा में लोप हो जाता है। शेष चिन्ह निम्न प्रकार प्रयुक्त होते हैं।

| कारक | हिन्दी चिन्ह | हो चिन्ह |
|---|---|---|
| करण | से | ते |
| सम्प्रदान | को, के लिए | लगिड् |
| अपादान | से | एते |
| सम्बन्ध | का, के, की | रेआ |
| अधिकरण | में, पर | रे |
| सम्बोधन | हे, अरे | अया, अलई, आलेया, अरे |

सम्बोधन को छोड़कर अन्य सभी चिन्ह हिन्दी की अपेक्षा "हो" में अधिक सरल एवं सक्षिप्त है। हो भाषा में क्रिया का लिंग भेद नहीं होता है। परन्तु क्रिया का वचन, पुरूष और काल से सम्बन्ध होता है। प्राणीवाचक और अप्राणीवाचक की एक विभक्ति होती है। यथा –

आता है – हुजुः तनाए
आती है – हुजुः तनाए

नागपुरी में भी स्त्रीलिंग–पुलिंग संज्ञा के लिए समान क्रिया होती है।

सकर्मक क्रिया जब कर्ता के साथ मिली हुई आती है और विशेष करके उसका व्यवहार कर्ता ही में पड़ता हो तो अपने आगे "न" या "एन" प्रत्यय लाती है।

यथा –

ओड़ा से ओड़न – नहाना
ओजो से ओजोन – .............

कर्म प्रधान क्रिया कर्म को प्रथम स्थान और कर्ता को इसके पीछे लाकर क्रिया के आगे "ओ" प्रत्यय जोड़ने से बनता है। भूतकाल में "ओ" का "ए" करना पड़ता है। यथा –

खायी गयी – जोमेयाना    खाया गया – जोमेयना
चला गया – सेनोः याना    चली गयी – सेनोः याना
आया था – हुजुः लेनाए    आयी थी – हुजुः लेनाए

विधि क्रिया (आज्ञा) में यदि कर्म अप्राणीवाचक हो तो क्रिया के अन्त में "ए" और प्राणी वाचक कर्म हो तो क्रिया में दीर्घ हो जाता है। यथा –

| | हिन्दी | हो |
|---|---|---|
| अप्राणीवाचक | – पकड़ो | – सबे में |
| | – खाओ | – जोमे में |
| प्राणीवाचक | – पकड़ा | – सबे में |
| | – खाओ | – जोमे में |

हो भाषा में वर्तमान कालिक क्रिया सदा "तना" या "एतना" के साथ होती है। भूतकालिक क्रिया याना, केडा, लेडा, केदा, केड, लेद, लेना आदि के साथ अन्त होती है।

यथा – मैंने देखा – अञ नेल केडा।

आसन्न भूत कालिक क्रिया सदा अकेमा, अकडा और अकदा या अकैअ, अकद और अकड के साथ समाप्त होती है।

यथा –

मैंने देखा है – आञ नेला कडाञ
तुमने देखा है – आपे नेला कडापे
उसने देखा है – इनिः नेला कडाए

पूर्ण भूतकाल में किसी क्रिया की पूर्णता और भूतकाल की दूरी का बोध होता है। "हो" भाषा में पूर्ण भूत कालिक क्रिया प्रायः केड टाई केना, लेद आई केना, केड टाई केना या लेद टाई केना और कीः अटाई केना के साथ अन्त होती है।

यथा –

मैंने देखा था – अञ नेल केड टाई केना।
उसने देखा था – इनिः नेल केड टाई केनाए।
तुमने देखा था – आपे नेल केड टाई केनापे।

संदिग्ध भूतकाल में इदु तोरांग या चि तोरांग जोड़कर इस क्रिया का बोध कराया जाता है।

यथा –

मैने देखा होगा – इदुञ नेल केडा।
उसने देखा होगा – इदुए नेला कडा।
तुमने देखा होगा – इदुपे नेला कडा।

अपूर्ण भूतकाल में क्रिया के अन्त में "कन टाइकेना" जोड़ दिया जाता है।

यथा – मैं देखता था – अञ नेले तन टाई केना।
वह देखता था – इनिः नेलेतन टाई केनाए।
तुम देखते थे – आपे नेलेतन टाई केनापे।

हेतु–हेतुमद् भूतकाल दर्शाने के लिए धातु के अन्त में "केडते आ" या "कीतेआ" जोड़ना पड़ता है। परन्तु बोलचाल की भाषा में "होनांञ" जोड़ा जाता है।

सामान्य वर्तमान काल में धातु के अन्त में "तन", और "एमन" या "इतन" जोड़ दिया जाता है।

यथा –

मैं खाता हूँ – अञ जोमे तना।
वह खाता है – इनिः जोमे तनाए।
तुम खाते हो – आपे जोम तनापे।

संदिग्ध वर्तमान काल में "इदु" शब्द जोड़कर इस काल की क्रिया को पूर्ण किया जाता है। यथा –

मैं खाता होऊँगा – इदुञ (इदुइंञ) जोमेतना।
वह खाता होगा – इदुए जोमेतना।
तुम खाते होगे – इदुपे जोमेतना।

तात्कालिक वर्तमान काल में "तना" लगाया जाता है। यथा –

मैं देख रहा हूँ – अञ नेले तना।
वह देख रहा है – इनिः नेले तनाए।
तुम देख रहे हो – अम नेले तनाम।

सामान्य भविष्यकाल में "एया" या "ईआ" लगाकर क्रिया बनती है।

यथा – मैं जाऊँगा – अञ सेनोःआ।
तुम जाओगे – अम सेनोआम।
वह जायेगा – इनिः सेनाआ।

सम्भाव्य भविष्यत्काल की क्रिया में "ए" या "एक" लगाया जाता है।

यथा – मैं खाऊँ – अञ जोमेयाञ।
तुम खाओ – अम जोमेम।
वह खाये – इनिः जोमेकाए।

पूर्वकालिक क्रिया बनाते समय "केते" केडते, लेडते, केनते आदि जोड़ा जाता है। यथा –

खाकर – जोमकेते
आकर – हुजुः लेनते
उठकर – उटा केनते
देखकर – नेला केडते

"हो" भाषा में गुणवाचक विशेषण या अतिशय विशेषण का अर्थ बोध कराने के लिए "एसु" या "पूरा" शब्द जोड़ दिया जाता है। यथा –

| **हिन्दी** | **हो** | **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|---|---|
| अच्छा | बुगिन | बहुत अच्छा | एसु बुगिन |
| खराब | एडका | बहुत खराब | एसु एडका |

हो भाषा की यह भी विशेषता है कि इसमें क्रियाओं के अनुरूप अलग–अलग शब्द होते हैं।

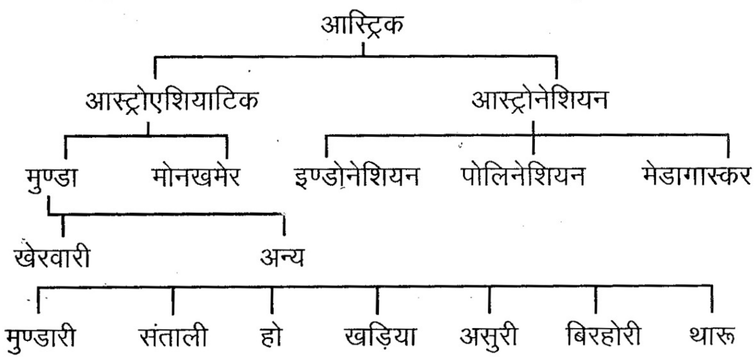
यथा –

| हो | हिन्दी |
|---|---|
| मः | कुल्हाड़ी से काटना |
| हड् | छूरी/चाकू से काटना |
| इर | हँसुआ से काटना |
| लटब् | कैंची से काटना |
| हेसे | वृक्ष की शाखा काटना |
| चलुः | हल, कुदाल या फाल से मिट्टी काटना |

हिन्दी एवं अन्य भाषाओं (लोक भाषाओं) के शब्दों के आ जाने से हो के शब्द कोश में भी यथेष्ट वृद्धि हुई है।

**हो जनजाति एवं हो भाषा का सामान्य परिचय :**

"हो" भाषा मुण्डा भाषा की ही एक शाखा है। भाषा विज्ञानी मुण्डा या मुण्डारी भाषा का उद्भव "खेरवारी" से मानते हैं। खेरवारी ऑस्ट्रिक भाषा परिवार की एक मुख्य या मूल भाषा है, जिसमें अन्य कई भाषाएँ आती हैं। इस भाषा समूह को ऑस्ट्रिक या ऑस्ट्रो–एशियाटिक भी कहा जाता है। मुण्डारी भाषा समूह के सन्दर्भ में भाषा वैज्ञानिक डॉ० दिनेश्वर प्रसाद के विचार से–"इस भाषा की पहचान सर्वप्रथम पेंटस्मिड्ट ने की थी। उन्होंने 1906 में "ऑस्ट्रिक भाषा परिवार" शब्द का पहली बार प्रयोग किया और यह बताया कि इस परिवार की भाषाएँ मैडागास्कर से लेकर न्यूजीलैंड तथा दक्षिण अमेरिका के तट से प्रायः 10 कि०मी० की दूरी पर अवस्थित ईस्टर द्वीप समूह तक फैली हुई है। उन्होंने इस भाषा परिवार की कल्पना – ध्वनि, वाक्य रचना, वैयाकरणिक विशेषताओं तथा किसी सीमा तक एक जैसे शब्दों की समानताओं के आधार पर की।" (मुण्डा शब्दावली : अखिल भारतीय सन्दर्भ में) निम्नांकित टेबल से इस भाषा परिवार के विषय में भी पूरी जानकारी मिल जाती है।




डॉ० सुनिल कुमार ने "आदिवासी संस्कृति का अध्ययन" शीर्षक निबन्ध (आदिवासी, अक्टूबर 1978) में लिखा है कि "मोनखमेर तथा मुण्डारी भाषा की दृष्टि से आग्नेय परिवार की सबसे प्रधान भाषा है। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है

कि प्रस्तर युगीन प्राचीन संस्कृति का निर्माण मुण्डा भाषा–भाषी लोगों द्वारा हुआ था।" 1866 में जॉर्ज कैम्पवेल ने इस भाषा परिवार को कोलारियन नाम दिया।

डॉ० राम विलास शर्मा "मुण्डारी" एवं इस समूह में आनेवाली सभी भाषाओं को "कोल" भाषा की संज्ञा दी है, जो "कोलारियन" समूह की जनजातियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया प्रतीत होता है। उन्होंने अपनी पुस्तक में "भारत के प्राचीन भाषा परिवार" पर विस्तृत रूप से विचार किया है। डॉ० चाटुर्ज्या (सुनीति कुमार) ने "बंगला भाषा के उद्भव और विकास" पुस्तक में लिखा है कि "मुण्डा" शब्द की अपेक्षा "कोल" शब्द का व्यवहार अधिक समीचीन है।

कोल परिवार में मुण्डा एक समुदाय है। परन्तु सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने कोलारियन शब्द का खण्डन करते हुए मुण्डा नामकरण पर बल दिया, जो आज भी मान्य है। आगे चलकर विद्वानों ने "आस्ट्रोएशियाटिक" भाषा परिवार को मुण्डा परिवार, आस्ट्रोनेशियन परिवार, मोनखमेर परिवार आदि में विभक्त किया है। इन विभिन्न भाषा परिवारों में कुछ भाषा तत्व सामान्य नहीं है। इन भाषा समुदायों के क्षेत्र में परिनिष्ठित भाषाओं का विकास कम हुआ है। भारत में "कोल भाषाएँ" या "खेरवारी" समूह की भाषाएँ आर्य–द्रविड़ भाषा परिवार से काफी प्रभावित हुई है। इसका प्रभाव "हो" भाषा में भी देखने को मिलता है।

भारत की प्रजातीय संरचना और इतिहास का अध्ययन करने वाले विद्वानों का निष्कर्ष यह है कि यहाँ सबसे पहले "निग्रो" जातियाँ आई और उनके बाद द्रविड़ एवं ऑस्ट्रिक जातियों का आगमन हुआ। विद्वानों का एक समुदाय यह मानता है कि द्रविड़ों के बाद ऑस्ट्रिक यहाँ आये, जो पहले भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में निवास करते थे। मुण्डा, हो आदि जनजातियाँ उन्हीं की संतान हैं।

भारत–तिब्बती भाषा के प्रथम अध्येता बी०एच० हॉज्सन ने यह उल्लेख किया था कि भारत और तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्र में प्रचलित तिब्बती–वर्मा भाषाओं के व्याकरण, वाक्य संरचना और शब्दावली पर मुण्डा भाषाओं का गहरा प्रभाव मिलता है। इन भाषाओं में किन्नौरी, कनाशी, मनचाली, रंगलोई, बुनन, खम्बु, लिम्बु आदि भाषाएँ आती हैं। तिब्बती भाषाओं के विशेषज्ञ "स्टेनकोनो" ने भी इस तथ्य को सम्पुष्ट किया है। इससे मुण्डारी भाषा (हो सहित) के प्रभाव क्षेत्र के विस्तार के साथ–साथ उस क्षेत्र में उनके प्रवास करने का भी संकेत मिलता है। हॉज्सन के बाद भारत–तिब्बती भाषाओं के विशेषज्ञ "स्टेनकोनो" ने इसके अन्तर्गत परिगणित सार्वजनिक हिमालयी भाषाओं की इन विशेषताओं का उल्लेख किया है और यह कहा है कि इनका सादृश्य मुण्डा भाषाओं से है, यथा –

(क) गणना करने की विंभति पद्धति (दोंसी–बीस)
(ख) एक वचन और बहुवचन के साथ द्विवचन का प्रयोग
(आञ, आलिंञ, आले–मैं, हम दोनों और हमलोग)
(ग) क्रियापदों में सार्वजनिक प्रत्ययों का योग (सेनो तनाञ)
(घ) क्रिया में कर्म का प्रवेश।

इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि कभी मुण्डा सें सम्बन्ध रखने वाले कबीले हिमालय के उस क्षेत्र में रहा करते थे, जहाँ आज तिब्बती–बर्मी परिवार की किन्नौरी आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। हाल में आर०सी०निगम (लैंग्वेज हैंडबुक ऑफ मदरटंग्स इन सेन्सस, पृष्ठ 33, 1992) ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऑस्ट्रिक भाषा परिवार का विकास दक्षिण चीन तक हुआ, जहाँ से इसे बोलने वाले समुदाय के लोग एक ओर कम्बोडिया, वर्मा, हिन्दचीन, प्रशान्त महासागर के द्वीपों की दिशा में फैल गये और दूसरी ओर तिब्बत की दिशा से हिमालय प्रदेश और नेपाल की ओर चले गये, जहाँ से उन्होंने भारत के समतल क्षेत्र में प्रवेश किया।

कई विद्वानों ने मुण्डा भाषा समूह का सम्बन्ध "वेद्दा" जनजाति के साथ भी स्थापित करने का प्रयास किया है। वेद्दा के काफी शब्द मुण्डारी और हो भाषा से मिलते हैं। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:–

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | **चीनी** | **हो** | **हिन्दी** |
| | फा | बा | फूल |
| | यम | जोम | खाना |
| 2. | **वेद्दा** | **हो** | **हिन्दी** |
| | हुर | हो | मनुष्य |
| | कुल | कुला | बाघ |
| | दिये | दा | पानी |

इससे हो भाषा के क्षेत्रीय विस्तार का पता चलता है। हो भाषा की कुछ विशिष्टताएँ निम्नप्रकार हैं:–

(क) यह अश्लिष्ट योगात्मक भाषा है।

(ख) इसमें द्विअक्षर (डिस्सलेबिक) पद मिलते हैं, जिनमें उपसर्ग, अन्तः प्रत्यय और प्रत्यय के योग से विभिन्न अभिप्रायों का द्योतन करने वाले पदों की रचना होती है।

(ग) इसमें बल देने के लिए पद या पदांश की आवृति की जाती है।

(घ) इसमें स्त्रीलिंग और पुलिंग दो लिंग होते हें, जिनका द्योतन "सान्डि" और "एंगा" लगाकर किया जाता है। (सान्डी सिम – मुर्गा, एंगा सिम – मुर्गी)

(ङ) अधिकांशतः केवल पारिवारिक सम्बन्ध सूचक संज्ञा पदों में ही यौन लिंग भेद के द्योतन की प्रवृति मिलती है। यथा – अपुम–पिता, एंगाम–माता, हेरेल–पति, एरा–पत्नी।

(च) हो में संस्कृत की तरह तीन वचन और आठ कारक मिलते हैं। परन्तु कर्ता का "ने" चिन्ह और कर्म के "को", "के" चिन्ह का लोप हो जाता है।

(छ) वचन सूचक शब्दों का प्रयोग संज्ञा के प्रसंग में होता है। (सिटिया किंञ–दो लड़के)

(ज) सर्वनाम के प्रसंग में वचन भेद की सूचना स्वतंत्र शब्दों द्वारा मिलती है। (आञ, आलिंग, आले – मैं, हमदोनों और हमलोग)।

(झ) संस्कृत की तुलना में "हो" में क्ष, त्र, ज्ञ, ऋ, य, व, श, ष–ध्वनियाँ नहीं है।

(ञ) हो में अनुनासिक व्यंजनों के अतिरिक्त बहुत कम संयुक्त ध्वनियाँ है।

(ट) ह्रस्व और दीर्घ स्वर का व्यावहारिक मूल्य समतुल्य है।

(ठ) इसमें ए, ऐ, और औ के संयुक्त स्वर मिलते हैं किन्तु उच्चारण में "ऐ" की श्रुति "अए" तथा "औ" श्रुति "अओ" हो जाती है।

(ड) इसमें दो व्यंजनों के बीच उच्चारण में एक स्वर आता है, किन्तु वह क्षिप्त और हल्का होता है और प्रायः अश्रुत (सुनाई नहीं पड़ना) रह जाता है।

(ढ) इसकी ध्वनिगत विशेषता रूद्ध (चेक्ड) स्वरों का प्रयोग है। इन रूद्ध स्वरों का उच्चारण सामान्य स्वरों की तरह आरम्भ होता है। किन्तु वाक् यंत्रों के हठात् संकुचन द्वारा रूद्ध होकर ये फिर स्वाभाविक या अवरूद्ध रूप में उच्चारित हो जाते हैं। देवनागरी में इन स्वरों का द्योतन प्रायः विसर्ग लगाकर किया जाता है।

**ध्वनितंत्र :**

मुण्डा भाषा समूह में ध्वनि तंत्र की अपनी कुछ विशिष्टताएँ हैं, जो हो भाषा में भी विद्यमान है। इसमें एक काकल्यस्पर्श ध्वनि (ग्लोटलस्टॉप) का व्यवहार होता है। संस्कृत में "अ" के लोप होने पर "S" चिन्ह का प्रयोग होता है। परन्तु हो में इसके लिए ( I ) चिन्ह लगता है। भारतीय विद्वान विलगिरि और अमरीकी विद्वान एवं भाषाशास्त्री गम्पर्ज ने "मुण्डा" भाषा समूह के ध्वनितंत्र पर विचार करते हुए कहा है कि यह "काकल्य स्पर्श ध्वनि" एक विशेष ध्वनि है (इन्डियन लिंगिवस्टिक्स, 1975)। हो भाषा में "क्, त्, प्" आदि व्यंजनों का एक अवरूद्ध रूप भी प्रस्तुत होता है। अंग्रेजह में इसे "चेक्ड कॉन्सोनेट" कहा जाता है। हो भाषा में सघोष महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। यही कारण है कि हो के विभिन्न व्यंजन वर्णों में सघोष महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण न होने के कारण उनका लोप हो जाता है।

यथा –

| प्रचलित अघोष व्यंजन | अप्रचलित सघोष व्यंजन |
|---|---|
| क वर्ग – क, ग, ङ | ख, घ |
| च वर्ग – च, ज, ञ | छ, झ |
| ट वर्ग – ट, ड, ण | ठ, ढ |
| त वर्ग – त, द, न | थ, ध |
| प वर्ग – प, ब, म | फ, भ |
| य वर्ग – र, ल, स, ह | य, व, श, ष |

पूर्व में इसका उल्लेख किया गया है। ङ, ञ, न, म् – नाशिक्य ध्वनियाँ हैं। "ण" और "ङ" मध्यवर्ती में बदल जाते हैं और उनका नाशिक्य भाव पूर्ववर्ती स्वर में गृहित है। यथा– काणा – काना।

हो भाषा की यह भी विशेषण है कि शब्द के आरम्भ में ङ, ञ जैसी नासिक्य ध्वनियों का भी प्रयोग हो सकता है, जो आर्य भाषाओं में नहीं है। "ङ" और "ञ" का प्रयोग शब्द के मध्य और अन्त में भी होता है। यथा – सिंङ बोंगा, आञ (मैं) आदि।

कायपर ने ''लिंगुआ'' नामक पत्रिका (खण्ड 14, 1965) में कोलभाषा (मुण्डा, हो आदि) के सन्दर्भ में व्यंजन परिवर्तन (कॉन्सोनेन्ट वैरियेशन) लेख में यह प्रस्तुत किया है कि कहीं–कहीं क, ख, ग, घ ध्वनियाँ ''ह'' में बदल जाती हैं। इनमें हो भाषा में ''ख'' और ''घ'' मूल ध्वनियाँ नहीं हैं, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। ''हो'' भाषा में स्पर्श ध्वनि के उच्चारण में वायु के अवरोध की क्रिया पूर्ण नहीं होती, इस कारण स्पर्श ध्वनि के स्थान पर ''संघर्षी'' ध्वनि का उच्चारण होता है। यह संघर्षी ध्वनि महाप्राण ''ह'' रूप में व्यक्त होती है। यथा – होन, होए, होलोङ, होनोर आदि।

**रूप तंत्र :**

हो भाषा में संस्कृत के भी कई शब्द और ध्वनियाँ मिलती हैं, जो आर्य भाषा–भाषियों के सम्पर्क में आने का परिणाम लगता है। संस्कृत का ''दारू'' हो में ''दारू'' (वृक्ष) के रूप में प्रयुक्त होता है। संस्कृत का ''द्रुम'' हो में ''दुम्बु'' (पेड़ या पौधा) के रूप में प्रयुक्त होता है। उसी प्रकार ''सीता'' का प्रयोग खेत में हल चलाने से उभरी रेखा से है, जबकि हो भाषा में ''सी'' शब्द का प्रयोग खेत जोतने के लिए होता है, जिसे ''सी–तनी'' के रूप में बोला जाता है। संस्कृत में ''सदाम'' हो में ''सादोम'' (घोड़ा) के रूप में बोला जाता है। हो भाषा में ''ज्येष्ठ'' से ''जेटे सिंगी'' (जेठ मास–ग्रीष्म ऋतु) कर्कट (केंकड़ा) के लिए काटकोम या काडकोम (केंकड़ा), खलम के लिए कोलोम (खलियान), उष्म के लिए सुसुम (थोड़ा गर्म) आदि शब्दों का प्रयोग संस्कृत और हो के रूपतंत्र में साम्य का द्योतक है। हो शब्दावली पर आगे के अध्याय में विशेष रूप से चर्चा की गई है। कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि ग्रीम, मुण्डारी आदि भाषाओं का कोई एक ही आदि स्त्रोत रहा है। ओड़ा या ओवा (घर) का ग्रीक शब्द ''ओर्निस'' है। ''हृदय'' के लिए प्रयुक्त शब्द ''सुर्द'' और ''सुरूद'' का सम्बन्ध ''ऋद'' से है। जॉन हॉफमैन ने जर्मन और लैटिन शब्द रूपों की तुलना में ''मुण्डारी'' रूप को उसने प्राचीन माना है। उनके अनुसार ''मुण्डारी का आदि स्थानीय ''स'' लैटिन और जर्मन में ''क'' और ''ह्'' हो जाता है।

पिन्नो मुण्डा भाषा के जाने–माने विशेषज्ञ हैं। उनका एक लेख ''एकम्पेयरिटव स्टडी ऑफ द वर्ष इन द मुण्डा लैंग्वेज'' (नॉर्मन जाइड द्वारा सम्पादित पुस्तक ''स्टडीज इन कम्पैरेटिव आस्ट्रो एशियाटिक लिंग्विस्टिक्स, 1966) में यह विचार व्यक्त किया है कि ''मुण्डा भाषाओं में कर्म सूचक सर्वनाम चिन्ह क्रिया के बाद आता है।'' यह ''हो'' भाषा में भी पाया जाता है। यथा–''जोमतानाञ (मैं खाता हूँ)। इसमें आञ प्रारम्भ में नहीं लगकर अन्त में लगाया गया है। ''हो'' भाषा का साम्य रूपतंत्र एवं वैयाकरणिक दृष्टि से संस्कृत से भी मिलता है, जो आर्य भाषा के सम्पर्क में रहने का एक प्रमाण है। यथा –

| | **एकवचन** | **द्विवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|---|
| संस्कृत | अहम् | आवाम् | वयम् |
| हो | आञ | आलिंग | आले |
| देवनागरी (हिन्दी) | मैं | हमदोनों | हमलोग |

परन्तु हिन्दी में द्विवचन का लोप हो गया। ''हो'' भाषा की एक विशेषता यह भी है कि वह क्रिया पदों के एक या अधिक वर्णों की अथवा अक्षर–ध्वनियों की आवृति करती है। यह प्रयोग अर्थ को सघन करने के लिए किया जाता है।

यथा – तम (मारना) से तपाम (ज्यादा मारना)।

''हो'' भाषा की सामान्य विशेषताओं के सन्दर्भ में ''हो लोक कथा : एक अनुशीलन'' पुस्तक (पृष्ठ 05 से 08) भी उल्लेखनीय है। इस भाग में यह दर्शाया गया है कि मुण्डा भाषा की तरह हो भाषा भी योगात्मक परिवार की है। इसमें शब्द निर्माण के लिए प्रत्यय संयुक्त होते चले जाते हैं और इस प्रकार से निर्मित शब्द अपने में पूर्ण होते हैं। ''हो'' भाषा योगात्मक भाषा में आती है। योगात्मक भाषा की यह विशेषता है कि उसमें सम्बन्ध तत्व को भी अर्थ–तत्व के साथ जोड़ दिया जाता है। इसके तीन वर्ग होते हैं – अश्लिष्ट, श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट। आग्नेय भाषाएँ (हो सहित) मध्य योगात्मक, अन्य योगात्मक और पूर्वान्त योगान्तक होती है। ''हो'' भाषा में धातुएँ द्विअक्षर होती हैं। इनमें से प्रायः प्रथम अक्षर पर बलाघात होता है। भाषाशास्त्रियों का अनुमान है कि द्विअक्षर धातु पहले एकाक्षर रही होगी। इनमें क्रिया में उपसर्ग और प्रत्यय भी मिलते हैं।

जिस प्रकार हिन्द–चीनी भाषाओं में अन्तिम व्यंजन रोककर अथवा निम्न स्तर करके उच्चारित किया जाता है उसी प्रकार हो में भी व्यंजन का उच्चारण होता है। यह विचारणीय है कि ''हो'' में अ, आ, ए, ई, उ, ओ स्वर वर्ण हैं, जो लम्बे, छोटे, अल्पप्राण, महाप्राण, अनुनासिक आदि ध्वनि रूप में प्रयुक्त होते हैं। मूलतः ''अ'' अल्प (धीमा) केन्द्रीय स्वर, ''ए'' मध्य अग्रस्वर, ''ई'' (आई) उच्च अग्रस्वर, ''ओ'' मध्य पार्श्व (पश्च) स्वर तथा ''उ'' (यु) उच्च पश्च स्वर हैं। उदाहरण के लिए ''ए'' को लम्बा स्वर से निर्मित ''मे'द'' का अर्थ लोहा होता है। वहाँ ''ए'' के लघुस्वर से निर्मित ''मेड'' का अर्थ आँख होता है। इस प्रकार उच्चारण ध्वनियों में परिवर्तन होने से अर्थ परिवर्तन होना हो भाषा की विशेषता है। इसी प्रकार लघुस्वर में ''सेता'' का अर्थ कुत्ता होता है, जबकि दीर्घस्वर ''सेताः'' का अर्थ सुबह होता है।

जो शब्द हिन्दी या देवनागरी लिपि से ''हो'' भाषा में आये हैं, उनमें प्रयुक्त व्यंजन और स्वर में उच्चारण भेद (ध्वनितंत्र) के कारण परिवर्तन हो जाता है। परन्तु अर्थतंत्र या अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

यथा –

| **हिन्दी** | **हो** | **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|---|---|
| वकील | उकिल | वजन | ओजोन |
| वंश | बोंस | योगी | जुगि |
| यात्रा | जतारा | युग | जुग |

कहीं–कहीं उच्चारण में कुछ व्यंजन का लोप भी हो जाता है –

| **हिन्दी** | **हो** |
|---|---|
| महाजन | माजोन |

हिन्दी में उच्चरित घोष ध्वनियाँ हो में आने पर अघोष हो जाती हैं–

| हिन्दी | हो | हिन्दी | हो |
|---|---|---|---|
| ठीक | टिकि | सुख | सुकु |
| घर | गर | खाना | काना |

हिन्दी के "म" का प्रयोग "हो" में "ङ" तथा ञ के रूप में होता है, जिसका कारण आनुनासिक ध्वनि का प्रयोग है–

| व्यंजन | प्रयोग | शब्द |
|---|---|---|
| न | ङ् | अपुङ (पिता) |
| ।। | ञ | अपुञ (मेरे पिता) |

"हो" भाषा की यह भी विशेषता है कि इसमें क्रियाओं (कार्यों) के अनुरूप अलग–अलग अर्थतंत्र वाले शब्द का प्रयोग किया जाता है–

| हो | हिन्दी | हो | हिन्दी |
|---|---|---|---|
| मः | कुल्हाड़ी से काटना | हड् | छुरी से काटना |
| इर | हँसुआ से काटना | लटब् | कैंची से काटना |
| गुंडुई | कुल्हाड़ी से टुकड़ा/टुकड़ा काटना | | |
| हेसे | वृक्ष की डाल काटना | | |

इस प्रकार "हो" भाषा "खेरवारी" (आग्नेय) मूलभाषा की एक महत्वपूर्ण शाखा है। "हो" भाषा के अध्ययन और विकास में इसकी विशेषताएँ काफी महत्वपूर्ण हैं, जिनकी जानकारी के बाद इस भाषा का अध्ययन सरल हो जाता है।

## (ख) हो शब्दावली एवं शब्दकोश

किसी भी भाषा और साहित्य के निर्माण एवं विकास में उसके शब्द संग्रह शब्दावली एवं शब्दकोश के निर्माण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी भाषा में भावाभिव्यक्ति एवं उसके अभिलेखीकरण में शब्दों की आवश्यकता होती है। जनजातीय भाषाएँ आरम्भिक काल से ही मौखिक परम्परा से चली आ रही हैं, जिसमें बोल–चाल एवं लोक भाषा के प्रचलित शब्द ही मिलते हैं। जब कोई लोक भाषा परिलक्षित भाषा का रूप लेती है, तो उसे व्याकरण के नियमों में आबद्ध होना पड़ता है। शब्दों का शुद्धिकरण या परिमार्जन उससे ध्वनित या व्यक्त होने वाले अर्थ से जुड़ा रहता है। जनजातीय भाषाओं के विकास में शब्दों की बहुलता या अल्पता उसके प्रयोग वालों के भौगोलिक एवं सामाजिक परिवेश पर निर्भर करता है। अति पिछड़ी आदिम जनजातियों (बिरहोर आदि) के पास शब्द के भण्डार बहुत कम होते हैं।

इस संबंध में लियोनेल बरो ने अपनी पुस्तक "हो ग्रामर" (विथ वोकाबुलरी), पुस्तक (1915) के प्राक्कथन में मैक्समूलर के ये विचार व्यक्त किये हैं – जिन आदिम जनजातियों में भाषा के लिए अक्षरों का अभाव रहता है, उनकी भाषा (लोक भाषा) का विकास सभ्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक होता है।" उसके अनुसार –"किसी पुजारी या वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा गलत उच्चारण से बोले गए शब्द भी आदर पूर्वक लोगों द्वारा अपनाये जाते हैं। श्री बरो के अनुसार किसी भाषा

(जनजातीय भाषा हो आदि) में व्यापार और औद्योगिक विकास और विस्तार से भी अनेकों नये शब्द प्रयोग में आते हैं और जनजातीय समुदाय उन्हें अपने ढंग से उच्चरित करने लगता है। दूसरी जातियों या प्रजातियों के सम्पर्क में आने पर उनके बीच में प्रचलित शब्द भी दूसरे भाषा–भाषियों के बीच प्रयुक्त होने लगते हैं। ''हो'' भाषा के साथ भी यह तथ्य लागू होता है। हर भाषा में शब्दावली की दृष्टि से चार प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। यथा – (1). तत्सम या मूल शब्द, (2). तद्भव – थोड़ा परिवर्तन के साथ आये शब्द, (3). देशज – देशी या लोक भाषा के प्रचलित शब्द, (4), विदेशज – विदेशी भाषाओं से आये शब्द।

''हो'' भाषा में भी चारों प्रकार के शब्द मिलते हैं। ''हो'' जैसे आग्नेय भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द मिलते हैं। डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची द्वारा सम्पादित 'प्रि–एर्यन एण्ड प्रि–द्रविड़ियन'' नामक ग्रंथ में प्रकाशित एक लेख में भाषा वैज्ञानिक प्रो० सिलवांलेवी ने यह लिखा है कि ''संस्कृत में उपलब्ध बहुत से स्थान नाम इसी भाषा (आग्नेय भाषा) से आगत हैं, जैसे–कोसल–तोसल, अंग–बंग, कलिंग–निलिंग आदि। वस्तुतः केवल संस्कृत में ही नहीं वरन् मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में जो प्रतिध्वनि–युग्म मिलते हैं, वे आग्नेय भाषाओं (मुण्डा, हो आदि) के स्थायी अवदान हैं।

''हो'' में संस्कृत के शब्द कई रूपों में मिलते हैं। कुछ शब्द अविकल रूपों में मिलते हैं और कुछ ''हो'' की ध्वनि प्रणाली के अनुसार परिवर्तित रूप में। ये शब्द प्राचीन, मध्य और आधुनिक आर्यभाषा काल में मिश्रित हुए होंगे। ''हो'' में संस्कृत शब्दों का अर्थ संकोच अर्थादेश या अर्थ विस्तार भी हुआ है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं –

| **संस्कृत** | **हो** | **हिन्दी** |
|---|---|---|
| पर्यकम | पारकोम | खाट या खटिया |
| शकम् | सकम् | पत्ता (साग) |
| तात् | ततांग | दादाजी |
| मानव | मनोवा | मनुष्य |
| दास | दसि | नौकर |
| मूल | मुनु | मुख्य, प्राचीन |
| पंचायत | पोंचइति | पंचायत |
| शूकर | सुकुरी | सूअर |
| दारू | दरू | पेड़ |
| छत्रप | चातोम | छाता |
| शमशान | ससन | कब्रगाह |
| प्रधान | परदान | प्रमुख व्यक्ति |
| पर्व | पोरोब | त्योहार (पर्व) |
| कुल | किलि | गोत्र, वंश |

| संस्कृत | हो | हिन्दी |
|---|---|---|
| सूत्रम | सुतम | सूत |
| देशम् | दिसुम | देश |
| अकृण | अकिरिंग | बेचना |
| समय | सोमाय | समय |
| वक | बका | बगुला |
| दण्डम | डंडोम | डंडा |
| परम | परोम/पोरोम | बड़ा |
| गुपि | गोप (गुपितन हो) | चरवाहा |
| रस | रसि | चावल की शराब या रस |

"हो" में अनेक शब्द विदेशी भाषाओं से भी आये हैं। यथा – फारसी के शब्द

| फारसी | हो | हिन्दी |
|---|---|---|
| जर (सेजर) | जरविङ | विषधर साँप |
| दस्तुर | दोस्तुर | प्रचलन, प्रथा |
| तहसील | तसिल | लगान |
| हाजरी | हजिरि | उपस्थिति |
| अरक | अरकी | रस – चावल का शराब |
| पुस्त | पुति | पुस्तक |
| तारीख | तरिक | तिथि |
| फौजदारी | पउदरि | फौजदारी मुकदमा |
| खस्सी | कसी | बकरा |
| अमीन | उमीन | जमीन पैमाइस करने वाला |

योरोपीय शब्द (अँग्रेजी आदि के शब्द) –

| अँग्रेजी (योरोपीय) | हो | हिन्दी |
|---|---|---|
| डॉक्टर | डकडर | चिकित्सक |
| बटम | बोटोम | बटम |
| मैशीन | मिसिन | मशीन |
| बॉटल | बोतोल | बोतल |
| मास्टर | मस्टोर | शिक्षक |
| प्लाटून | पालटोन | सैनिक समूह |
| कॉपी | कुपि | बही |

डॉ० देवेन्द्र नाथ सिंकू ने अपनी रचना–"बिहार के आदिवासियों द्वारा स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष : ऐतिहासिक एवं आर्थिक परिवेश में" (आदिवासी–अगस्त, 1982, पृष्ठ 21–22) में अनेक संस्कृत के शब्द विषयानुसार प्रस्तुत किये हैं, जो "हो" भाषा में प्रयुक्त होते हैं –

**क. वृक्ष सम्बन्धी शब्द :**

| संस्कृत | हो | हिन्दी |
|---|---|---|
| शाकम् | सकम् | पत्ता (साग) |
| पत्रम् | पाताःअ | पत्ता |
| तरू, दारू | दारू | वृक्ष |
| कदली | कादाल | केला |
| मधुकम | मडकम | महुआ |
| बल्कल | बकला | छाल |
| वन | बीर | जंगल |
| शिरीष तरू | सिरिस दारू | सिरिस का पेड़ |

**ख. मौसम सम्बन्धी शब्दावली :**

| | | |
|---|---|---|
| शिशिर | सिसिर | ओसकण |
| ज्येष्ठ मास | जेटेसिंगी | जेठ का महीना |

**ग. पशु–पक्षी सम्बन्धी :**

| | | |
|---|---|---|
| शूकरी | सुकुरी | सुअर |
| मयूर | माराःअ | मोर |
| सदोम | सादोम | घोड़ा |

**घ. देश–काल वाची :**

| | | |
|---|---|---|
| देश | दिशुम | देश |
| चन्द्रमा | चाण्डुअ | चाँद |

**ङ. विविध शब्दावली :**

| | | |
|---|---|---|
| प्रजा | पोरजा | जनता |
| तुला | तुला | तराजू |
| भारम | भारोम | बोझा |
| मसूर | मसुरी | मसूर |
| ऋण | रि | कर्ज |
| विष | विस | जहर |
| दुतम | दूतम | दूत या अगुआ |
| सिन्दूर | सिन्दूरी | सिन्दूर |
| शंख | साकोम | चूड़ी (शंख की) |
| पर्व | पोरोब | पर्व त्योहार |
| जीवन | जीबोन | जीवन या जिन्दगी |
| अर्थ | ओरतो | अर्थ |
| सुख–दुःख | सुकु–दुकु | सुख–दुःख |
| क्रीत | किरिङ् | खरीदना |
| अर्जन | अरजाओ | पैदा करना |

**अन्य भाषा के शब्द :**

| **उर्दू** | **हो** | **हिन्दी** |
|---|---|---|
| दरिया | दो:रिया | नदी |
| भोजपुरी | हो | हिन्दी |
| दहाड़ | दा:अहोड़ | भयंकर बाढ़ (आदमी को बहा देने वाला) |

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अधिकाधिक संस्कृत के तत्सम शब्द एवं अन्य भाषा के शब्द ध्वनि परिवर्तन के साथ (उच्चारण की सुविधानुसार) ''हो'' भाषा में आ गए हैं।

किसी भी भाषा के विकास के लिए उसके पास शब्दों का यथेष्ट भण्डार की आवश्यकता होती है। विभिन्न विषयों, विधाओं, भौगोलिक स्थितियों, सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों, शारीरिक अंगों आदि से सम्बन्धित अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों का चयन एवं उनका अभिलेखीकरण आवश्यक होता है। इसके लिए विद्वानों द्वारा ''शब्द–कोश'' तैयार किये जाते हैं, जो वर्णों के आधार पर वर्गीकृत होते हैं। जनजातीय भाषाओं में ''शब्दकोश'' का निर्माण आर्यभाषाओं की तुलना में कुछ बाद में हुआ है। ''हो'' भाषा के लिए शब्दकोश के प्रथम निर्माण का कार्य संभवतः रेव०ए० नोट्रोट द्वारा ''ग्रामर ऑफ द कोल'' की रचना से हुआ। इस पुस्तक का प्रकाशन 1905 ई० में जी०ई०एल० मिशन प्रेस, राँची द्वारा किया गया था। उक्त पुस्तक में ''हो'' शब्दावलियों पर भी कुछ हद तक प्रकाश डाला गया था, ऐसी जानकारी मिली है। परन्तु अब वह पुस्तक उपलब्ध नहीं है।

''हो'' भाषा के शब्दकोश की पुस्तक ''हो ग्रामर'' (विथ वोकाबुलरी) लियोनेल बरो (Lionol Burrow/B.A) द्वारा लिखी गई है। श्री बरो तत्कालीन बंगाल राज्य सिविल सेवा के अधिकारी पद पर नियुक्त थे। उनकी उक्त पुस्त्क 1915 ई० में कैथोलिक ऑर्फन प्रेस, 3 एवं 4, पोर्तुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता में छपी थी। यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी गई है, जिनमें ''हो'' शब्दावलियों को रोमन में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में कुल 24 अध्याय एवं 194 पृष्ठ हैं। इसमें 106 पृष्ठ (23 अध्याय तक) में ''हो'' व्याकरण को प्रस्तुत किया गया है। 107 से 113 पृष्ठ तक विभिन्न सम्बन्धों के ''हो'' सम्बोधन और विभिन्न जाति–जनजाति के ''हो'' भाषा में नामकरण को प्रस्तुत किया गया है। 114 से 116 पृष्ठ तक ''हो'' अभ्यास के लिए प्रस्तुत किये गये हैं। 118 से 148 पृष्ठ तक हो–अँग्रेजी शब्दकोश में लगभग 2000 शब्द संकलित किये गये हैं। इस प्रकार ''हो'' भाषा का यह पहला उपलब्ध शब्दकोश माना जा सकता है। ''हो'' भाषा का दूसरा संक्षिप्त जे० डिन्नी, एस०जे० द्वारा लिखित ''हो ग्रामर एण्ड वोकाबुलारी'' शीर्षक पुस्तक के रूप में 1975 ई० में जेवियर हो पब्लिकेशन, संत जेवियर्स हाई स्कूल, चाईबासा (प०सिंहभूम) द्वारा प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक में कुल 216 पृष्ठ हैं। 119 पृष्ठों में ''हो'' व्याकरण आदि पर चर्चा की गई है। पृष्ठ 120 से 184 में हो–अँग्रेजी शब्दावली के रूप में शब्दकोश प्रस्तुत किया गया है, जिसमें हो शब्दों को अंग्रेजी (रोमन) और देवनागरी लिपि (हिन्दी) में प्रस्तुत किया गया है। इस अंश में लगभग 4000 हो शब्द

संकलित किये गये हैं। पृष्ठ 185 से 216 तक अँग्रेजी–हो शब्दकोश प्रस्तुत किये गये हैं, जिसमें लगभग 2500 शब्द हैं। प्रो०बी०बी० कुमार द्वारा भी हिन्दी हो कोश की रचना 1982 ई० में की गई है।

इस प्रकार "हो" शब्दकोश के लेखन और प्रकाशन की दिशा में यह महत्वपूर्ण कार्य है। इस शब्दकोश का लेखन अँग्रेजी वर्णों के क्रमानुसार किया गया है। "हो" भाषा में प्रचलित प्रायः अधिकांश शब्दों का संकलन इस पुस्तक में हो पाया है।

जे०डिन्नी, एस०जे० द्वारा लिखित "हो" भाषा का एक वृहत् शब्दकोश "हो इंग्लिश डिक्शनरी" शीर्षक से 1978 ई० में जेवियर हो पब्लिकेशन, संत जेवियर्स हाई स्कूल, चाईबासा (प०सिंहभूम) द्वारा प्रकाशित किया गया है। इस शब्दकोश में 12000 "हो भाषा" के शब्दों का संकलन कर उनका अर्थ अँग्रेजी में प्रस्तुत किया गया है। "हो" शब्दों के लिए रोमन और देवनागरी दोनों लिपियों का प्रयोग किया गया है। इसमें शब्दों को अँग्रेजी वर्णों के क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार "हो" भाषा की शब्दावली के संकलन और उसे शब्दकोश के रूप में प्रस्तुत करने का एक वृहत कार्य श्री डिन्नी द्वारा किया गया है, जो हो भाषा और साहित्य के विकास की दिशा में एक सराहनीय कार्य माना जायेगा।

श्री डिन्नी ने इस शब्दकोश के "परिचय" या "विषय प्रवेश" में इस पुस्तक के लेखन की परिकल्पना, उसकी प्रेरणा एवं लेखन कार्य में सहायक विभिन्न स्त्रोतों, लेखकों और ग्रन्थों की चर्चा की है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि "हो" समुदाय में प्रचलित अनेक हो शब्द इस शब्दकोश में नहीं लिये जा सके हैं, जिन्हें बाद में सम्मिलित किये जाने की सम्भावना है। यह सत्य है कि किसी भी लोकभाषा में या परिनिष्ठित भाषा में कालक्रमानुसार एवं आवश्यकतानुसार नये–नये शब्दों के संकलन का कार्य भी अपेक्षित होता है।

"हो" शब्दावलियों के संकलन और प्रस्तुतिकरण का कार्य जॉन हॉफमैन द्वारा "इन्साइक्लोपेडिया मुण्डारिका" में प्रसंग के रूप में कहीं–कहीं किया गया है। जे० डिन्नी ने भी इसका प्रसंग प्रस्तुत किया है। परन्तु "इन्साइक्लोपेडिया मुण्डारिका" मूलतः मुण्डा भाषा (मुण्डारी) पर ही आधारित है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि "हो" भाषा के शब्द–विधान एवं शब्दावलियों पर भी निरन्तर कार्य हो रहे हैं। आशा है कि हो भाषा के विद्वान एवं शोधकर्त्ता इस दिशा में और अधिक कार्य कर हो शब्दकोश को नये–नये शब्दों के भण्डार से सुसम्पन्न करेंगे।

## (ग) व्याकरणिक संरचना :

व्याकरण के संदर्भ में काफी पुरानी अवधारणा है कि किसी भाषा का व्याकरण उस भाषा को शुद्ध रूप से जानने, उसे पढ़ने और लिखने में सहायक सिद्ध होता है। व्याकरण शब्द का निर्माण "वि + आकरण" से हुआ है, जिसका अर्थ होता है – विशिष्ट रूप या आकार। जब तक बोल–चाल की लोकभाषा लोगों के बीच केवल बोलने के लिए प्रयुक्त होती है, तब तक शब्दानुसार अथवा वाक्यानुसार जैसे

नियमों पर ध्यान नहीं दिया जाता। लोकभाषा जनसमूह की मौखिक भावाभिव्यक्ति के लिए वनों में प्रवाहित निर्झरणी की तरह उन्मुक्त रूप से गतिमान रहती है। परन्तु जब वही भाषा व्याकरण के नियमों से बँध जाती है, तब उसका स्वरूप बदल जाता है। वह ''लोकभाषा'' से ''परिनिष्ठित भाषा'' के रूप में अपनी पहचान बना लेती है। अब वह केवल मौखिक अभिव्यक्ति का माध्यम न होकर लिखित अभिव्यक्ति अथवा लेखन कार्य का माध्यम बन जाती है। उसके वर्ण, अक्षर, शब्द, वाक्य आदि व्याकरण के जटिल नियमों में आबद्ध हो जाते हैं। विश्व की प्रत्येक विकसित भाषाओं का अपना समृद्ध व्याकरण रहा है। किसी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन और उसके क्रमिक विकास की जानकारी के लिए उसके व्याकरण का यथेष्ट ज्ञान आवश्यक होता है। ऑस्ट्रिक या आग्नेय भाषाओं के अपने अलग–अलग व्याकरण का निर्माण विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया है। इस दृष्टि से मुण्डा, हो, संताल एवं खड़िया साहित्य का अपना–अपना व्याकरण है। इन भाषाओं का लिखित साहित्य उनके व्याकरणिक नियमों से अनुशासित होता है। ''हो'' भाषा काफी समय तक मौखिक भाषा के रूप में प्रचलन में रही है। कालान्तर में कतिपय विद्वानों ने ''हो'' भाषा को लोक भाषा से परिनिष्ठित भाषा की श्रेणी में लाने हेतु उसके व्याकरण की रचना का महतिकार्य शुरू किया। संभवतः बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में ''हो'' व्याकरण लेखन का कार्य विदेशी विद्वानों द्वारा प्रारम्भ किया गया। प्राप्त जानकारी के अनुसार सर्वप्रथम रेव०ए० नोट्रोट द्वारा 1905 में ''ग्रामर ऑफ द कोल लैंग्वेज'' नामक पुस्तक अँग्रेजी में लिखी गई थी, जिसे जी०ई०एल० मिशन प्रेस, राँची द्वारा प्रकाशित किया गया था। परन्तु इस पुस्तक का केवल प्रसंग मिलता है और अब यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त ले० कर्नल एस०आर० टिकेल द्वारा ''ग्रामेटिकल कन्स्ट्रक्शन ऑफ द हो लैंग्वेज'' शीर्षक से जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के भाग 9 खण्ड 2 में 1840 ई० में एक लेख अँग्रेजी में प्रकाशित हुआ था। 1915 ई० के पूर्व भीम राम सोलंकी, चाईबासा (प०सिंहभूम) द्वारा अँग्रेजी में ''हो'' ग्रामर की रचना की गई थी। जिसका उल्लेख लियोनेल बरोज द्वारा उनकी पुस्तक ''हो ग्रामर के प्राक्कथन में किया गया है। परन्तु यह पुस्तक भी अब उपलब्ध नहीं है। हो व्याकरण पर उपलब्ध पुस्तक ''हो ग्रामर (विथ वोकाबुलरी)'' लियोनेल बरोज द्वारा 1915 ई० में प्रकाशित कराई गई थी। इस पुस्तक का लेखन अँग्रेजी भाषा में किया गया है। श्री बरोज बंगाल सिविल सेवा के पदाधिकारी थे और तीन वर्षों तक कोल्हान के प्रभारी पदाधिकारी भी थे। इसी क्रम में उन्होंने हो भाषा से संबंधित व्याकरण लेखन का कार्य किया। उन्होंने प्राक्कथन में इस बात का उल्लेख किया है कि ''हो'' भाषा के लिए यह उनका प्रथम परिचयात्मक प्रयास है, जो हो भाषा के अध्ययनकर्त्ताओं के लिए सहायक सिद्ध होगा।

उनकी इस पुस्तक (हो ग्रामर) के दो भाग हैं। प्रथम भाग में पृष्ठ 01 से 106 तक उन्होंने हो व्याकरण के विभिन्न विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया है। पृष्ठ 133 से 183 तक विविध विषयों के साथ–साथ अँग्रेजी–हो शब्दकोश

प्रस्तुत किया है। उन्होंने व्याकरण के विभिन्न विषयों की व्याख्या अँग्रेजी में प्रस्तुत की है, जबकि ''हो'' शब्दावलियों को रोमन में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के अध्याय 01 से 23 में हो व्याकरण के विविध विषयों–स्वर वर्ण, व्यंजन वर्ण, लिंग, वचन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, काल, वाच्य, क्रियाविशेषण आदि पर प्रकाश डालते हुए ''हो'' भाषा के ध्वनि, स्वर एवं रूप तंत्र की विशिष्टता को भी प्रस्तुत किया है। अँग्रेजी भाषा में लिखित इस पुस्तक का प्रकाशन संभवतः एक ही बार (1915 ई०) हुआ था। अतः यह अब दुर्लभ पुस्तक की श्रेणी में आ गई है। हो व्याकरण पर यह एक अधिकारिक पुस्तक मानी जा सकती है। परन्तु अँग्रेजी भाषा में रचित यह पुस्तक निश्चय ही ''हो'' भाषा–भाषी आम लोगों के बीच लोकप्रिय नहीं हो सकी। फिर भी इसका महत्व ''हो'' भाषाशास्त्रियों, शोधकर्त्ताओं और विद्यार्थियों के लिए काफी है।

''हो'' भाषा कैसे सीखें'', शीर्षक पुस्तक का लेखन कार्य, मोतीलाल बिरूवा (लगड़ा, प०सिंहभूम) द्वारा 1969 ई० में किया गया, जिसका प्रकाशन अंकुरपाल तथा नागेश्वर पाल द्वारा चाईबासा से किया गया। इसका संशोधित संस्करण 1977 ई० में प्रकाशित हुआ। देवनागरी लिपि में हिन्दी, हो और अँग्रेजी के मिश्रित लेखन द्वारा इस पुस्तक को प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि गैर हो भाषा–भाषी सरकारी सेवकों को हो भाषा सीखने और हो भाषा में विभागीय परीक्षा देने की योग्यता प्राप्त करने हेतु इस पुस्तक का लेखन और प्रकाशन किया गया है। इसमें अन्य विषयों के साथ–साथ हो व्याकरण के विभिन्न भागों पर भी सोदाहरण प्रकाश डाला गया है। प्रथम संस्करण 58 पृष्ठों और द्वितीय संस्करण 72 पृष्ठों का है। इस पुस्तक में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण, अव्यय, वाच्य के विभिन्न भेद, लिंग, वचन, कारक, पुरूष, काल आदि की परिभाषा के साथ–साथ कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। ''हो'' भाषा सीखने और उसके व्याकरण को समझने–सीखने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। हिन्दी में संभवतः व्याकरण विषय पर यह पहली संक्षिप्त पुस्तक है, जो गैर हो भाषा–भाषी के लिए यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत करती है।

''हो व्याकरण'' पर जे०डिन्नी, एस०जे० द्वारा लिखित पुस्तक ''हो ग्रामर एण्ड बोकाबुलरी'' एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी पुस्तक है, जिसका प्रकाशन जेवियर हो पब्लिकेशन, संत जेवियर उच्च विद्यालय, चाईबासा (प०सिंहभूम) द्वारा 1974 ई० में किया गया था। इस पुस्तक की रचना अँग्रेजी (रोमन) और देवनागरी लिपियों के मिश्रित रूप में की गई है। हिन्दी भाषा में किसी भी अंश का रूपान्तर या अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस कारण गैर हो भाषा–भाषी के लिए यह एक दुरूह भाषा पुस्तक प्रतीत होती है। इस पुस्तक की भूमिका (इन्ट्रोडक्शन) में लेखक ने हो भाषा समूह एवं उसकी उत्पत्ति, क्षेत्र विस्तार, उसकी विशेषता, हो लिपि, वर्ण, उच्चारण, ध्वनियों आदि पर प्रकाश डाला है। उन्होंने रेव० वाल्टर ए०कुक, एस०जे०, जॉर्ज टाउन विश्वविद्यालय, वाशिंगटन के प्राध्यापक का भी प्रसंगवश

उल्लेख किया है, जिन्होंने संभवतः मुण्डा भाषा के साथ–साथ हो भाषा पर भी कार्य किया था, जिसमें ''हो व्याकरण'' का भी कुछ अंश सम्मिलित रहा होगा। परन्तु उक्त प्रासंगिक शोध पुस्तक का विवरण नहीं प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में पृष्ठ 07 से 119 में हो व्याकरण के विभिन्न अंगों का विश्लेषण, उदाहरण एवं उसकी विशिष्टता पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में सर्वनाम, संज्ञा, क्रिया, वाच्य, विधेय, काल, विशेषण, क्रिया विशेषण, वचन आदि पर विशेष रूप से चर्चा की गई है और ''हो'' भाषा के संदर्भ में उनके विशिष्ट प्रयोगों पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने उपसर्ग और प्रत्यय के विभिन्न रूपों एवं उनके प्रयोग पर भी यत्र–तत्र प्रकाश डाला है। इस कार्य में उन्होंने मुण्डा भाषा और व्याकरण के विद्वान–लेखक एच०एल० सोटो, एन०एच० जाइड और डी०एल० स्टाम्प, एच०जे० पिन्नोव, ए० कुक आदि का प्रसंग भी प्रस्तुत किया है। उनके व्याकरण की इस पुस्तक पर लियोनेल बरोज के ''हो व्याकरण'' का बहुत अधिक प्रभाव दिखता है। विभिन्न उच्चारण ध्वनियों, उनसे संबंधित स्वर एवं व्यंजन वर्णों, उनके संयोग और विलुप्त होने की स्थिति, उच्चारण अंग (स्थान) ओष्ठय, दंत्य, अनुनासिक, तालव्य आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। हो में ङ और ञ के प्रयोग का भी विश्लेषण किया गया है।

''हो'' व्याकरण के संदर्भ में लेखक (डॉ० आदित्य प्रसाद सिन्हा) द्वारा पूर्व में लिखित एवं प्रकाशित पुस्तक ''हो लोक कथा : एक अनुशीलन'' (किशोर विद्या निकेतन, भदैनी, वाराणसी द्वारा 1997 में प्रकाशित) के प्रथम अध्याय में हो व्याकरण की सामान्य विशेषताओं पर कुछ चर्चा की गई है। उक्त पुस्तक ''हो'' भाषा की देवनागरी लिपि में संभवतः पहली आलोचनात्मक पुस्तक है।

''हो'' व्याकरण के संदर्भ में उसकी कतिपय विशेषताओं का विश्लेषण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है:–

''हो'' में संज्ञा के भेद हिन्दी व्याकरण से भिन्न है। इनमें जीवधारी एवं निर्जीव के लिए दो भेद हैं। उसी प्रकार सर्वनाम में भी जीवधारी तथा निर्जीव पदार्थों के अनुसार भेद पाये जाते हैं। ''हो'' भाषा में व्यक्तिवाचक सर्वनाम के 11 भेद हैं।

| **एकवचन** | **हो** | **हिन्दी** |
|---|---|---|
| 1. उत्तम पुरूष | अञ | मैं |
| 2. मध्यम पुरूष | अम | तुम |
| 3. अन्य पुरूष | इनिः | वह |
| **द्विवचन** | **हो** | **हिन्दी** |
| 1. उत्तम पुरूष (जोड़कर) | आलंङ | तुम और मैं |
| 2. उत्तम पुरूष (छोड़कर) | अलिङ | वह और मैं |
| 3. मध्यम पुरूष | आबेन | तुम दोनों |
| 4. अन्य पुरूष | अकिञ | उनमें से दो |

| बहुवचन | हो | हिन्दी |
|---|---|---|
| 1. उत्तम पुरूष (जोड़कर मनु) | अबु | हमलोग तीनों (तुमको लेकर) |
| 2. उत्तम पुरूष (छोड़कर) | अले | हमलोग तीनों (तुमको छोड़कर) |
| 3. मध्यम पुरूष | अपे | तुम लोग (तीन या अधिक) |
| 4. अन्य पुरूष | अको | वे लोग (तीन या अधिक) |

## सन्दर्भ ग्रंथ


1. डॉ० उदय नारायण तिवारी, भोजपुरी भाषा और साहित्य, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1954, पृष्ठ संख्या 204।
2. डॉ० श्रवण कुमार गोस्वामी, नागपुरी भाषा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद प्रकाशन, पटना, 1976, पृष्ठ संख्या 16–17।
3. डॉ० विसेश्वर प्रसाद केशरी, नागपुरी भाषा और साहित्य, प्रकाशन कमल, राँची, 1971, पृष्ठ संख्या 7।
4. श्री ज्योति लाल महादानी, पंचपरगनिया लोक साहित्य और उनका विस्तार, साप्ताहिक पत्रिका, "राँची"।
5. श्री ज्योति लाल महादानी, पंचपरगनिया लोक साहित्य और उनका विस्तार, साप्ताहिक पत्रिका, "राँची"।
6. श्री मोटाय पिंगुवा, ग्राम–देवधर, पो०–धोबाधोबिन, जिला–प० सिंहभूम के साक्षात्कार।
7. सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन हिन्दी अनुवाद, भारत का भाषा सर्वेक्षण, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, डॉ० उदय नारायण तिवारी, पृष्ठ संख्या–64, 71, 72, 73।
8. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, अधीक्षक, सचिवालय शाखा, मुद्रणालय, राँची, बिहार, पृष्ठ संख्या–56।
9. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, अधीक्षक, सचिवालय शाखा, मुद्रणालय, राँची, बिहार, पृष्ठ संख्या–56।

# द्वितीय अध्याय

# लोक–साहित्य के विविध रूप

लोक सुभाषित के अन्तर्गत लोकोक्तियाँ, सुभाषित इत्यादि आते हैं, जिनका व्यवहार गाँव के लोग अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया जाता है।

लोक गीत लोक मानस की प्रसंगवश अभिव्यक्ति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक गीत लोक वेद हैं। ये हृदय के सहज उद्‌गार हैं। सुख–दुख की रागात्मक अभिव्यक्ति ही लोकगीत है।

**लोक–साहित्य के विविध रूप :**

हो लोक साहित्य को हो जनजाति के जन–जीवन का दर्पण कहा जा सकता है। लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है। सर्वसाधारण लोग जो सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं, उसी का प्रकाशन उसके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों एवं ऋतुओं में गीत गा–गाकर अपना मनोरंजन करती है। कहानियों को सुनना उनके मन बहलाव का मुख्य साधन है। समय–समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों और भाव–भरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जन अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में – जिनका निर्माण जनता के अनुभव पर आश्रित है – ऐसी अनुभूतियाँ पायी जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती है। इस प्रकार हम लोक साहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं:–

(क) लोक गीत (Folk Lyrics), (ख) लोक गाथा (Folk Ballads)

(ग) लोक कथा (Folk Tales), (घ) लोक नाट्‌य (Folk Drama)

(ङ) लोक सुभाषित (Folk Sayings)

**लोक गीतों का वर्गीकरण :**

**(क) लोक गीत** :– लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गीतों का प्रमुख स्थान है। जन–जीवन में अपनी प्रचुरता एवं व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोक–साहित्य में ये लोक गीत विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुओं में गाये जाते हैं। इनका विभाजन प्रधानतया निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है।

(क) संस्कारों की दृष्टि से लोक गीत। (ख) रसानुभूति कराने वाले लोक गीत।

(ग) ऋतुओं और व्रतों के लोक गीत। (घ) देवता सम्बन्धी लोक गीत।

(ङ) विभिन्न जातियों के लोक गीत। (च) श्रम लोक गीत।

**(I) संस्कारों की दृष्टि से लोकगीत :** भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय लोगों का धर्म ही प्राण है तो इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। हमारे जीवन में धर्म का स्थान कितना महत्वपूर्ण है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। जन्म के पहले से लेकर मृत्यु के बाद तक इस देश के लोगों का जीवन संस्कारों से सम्बद्ध है। धर्मशास्त्रियों ने 16 संस्कारों का विधान किया है, जिनमें गर्भाधान, पुंसवन, पुत्र–जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवित, गवना, विवाह, और मृत्यु प्रधान है। इनमें भी प्रथम दो संस्कारों की प्रथा अब नहीं है। शेष छः संस्कार ही आज कल प्रधान रूप से किये जाते हैं। इन विभिन्न संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कष्ट से गीत गा–गाकर जन–मन का अनुरंजन किया करती हैं। मृत्यु के अवसर पर गीत बड़े कारूणिक तथा ह्रदय विदारक होते हैं। किसी प्रिय व्यक्ति, पुत्र, पति की मृत्यु पर उसकी स्त्री या माता उस मृतात्मा के गुणों का वर्णन करती हुई रोती और विलाप करती है। परन्तु ऐसे गीतों की संख्या अधिक नहीं है। अभी भी ये मौखिक रूप में हैं।

**(II) रसानुभूति कराने वाले लोक गीत :** लोक गीतों में अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी ही सुन्दर रीति से हुई है। इन गीतों में विभिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है, उसका स्त्रोत कदापि नहीं सूख सकता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है, परन्तु निम्नांकित पाँच रसों की ही प्रधानता पायी जाती है।

(1) श्रृंगार रस, (2) करूण रस, (3) बीर रस, (4) हास्य रस, (5) शान्त रस।

श्रृंगार रस के अन्तर्गत विशेष कर सोहर, जनेऊ, विवाह, झूमर और वैवाहिक परिहास के गीत आते हैं। करूण रस के गीतों को गवना, जँतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी तथा सोहनी के गीतों की गणना की जा सकती है। इन गीतों से करूण रस छलक पड़ता है। यद्यपि उपर्युक्त सभी करूण रस से ओतप्रोत हैं, परन्तु गवना के गीतों में करूण रस बरसाती नदी की भाँति उमड़ता हुआ दिखाई पड़ता है। लड़की की विदाई के समय जो गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही ह्रदयद्रावक होते हैं।

"आल्हा" बीर रस का महाकाव्य है, जिसके प्रत्येक पद में वीरता फूट–फूट कर भरी है। लोक गीतों में हास्य रस्स की मात्रा अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। वैवाहिक परिहास के गीतों में हास्य रस की मधुर व्यंजना हुई है। झूमर के गीतों – जिनका नामकरण इन्हें झूम–झूम कर गाने से हुआ है। कहीं प्रियतम पर फबती कसी जाती है तो कहीं देवर से हँसी–मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गंगा माता के गीतों का शांत रस पाया जाता है। संध्या के समय तथा रात्रि के पिछले प्रहर में स्त्रियाँ भजन गाती हैं। इन गीतों में भगवान की स्तुति है, जिनमें संसार के झंझटों से मन को हटाकर भगवान में उसे लगाने का वर्णन रहता है। इन गीतों को सुनकर मन में भक्ति उत्पन्न हो जाती है।

**(III) ऋतुओं और व्रतों के लोक गीत :** लोक गीतों के अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि इनमें से अधिकांश गीत किसी न किसी ऋतु या त्योहार से संबंधि

ात हैं। वर्षा और बसंत ऋतु आने से जन–जीवन में उल्लास उत्पन्न होता है। इनकी अभिव्यक्ति लोकगीतों में पायी जाती है। यदि वर्षा (आषाढ़) के दिनों में किसान आल्हा गा–गाकर अपना मनोरंजन करता है, तो सावन में कजली गाकर अपने दिल के दर्द को दूर करता है। फागुन में फगुआ गीतों को गाकर हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है।

**(IV) देवता संबंधी लोक गीत** : भारत में विभिन्न धर्मों तथा समुदायों में भिन्न–भिन्न देवताओं की पूजा की जाती है। इनकी स्तुति में गीत गाये जाते हैं। राम, कृष्ण, हनुमान तथा गंगामाता, धरती माता इत्यादि के गीत गाये जाते हैं। देवताओं की स्तुति, भजन–कीर्तन एवं निर्गुण भी गाये जाते हैं। उनका अन्तर्भाव इसी श्रेणी में किया जाता है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में भी विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गीतों को गाने की परम्परा है। हो आदिवासियों के लोक गीतों में भी देवताओं के गीतों की प्रधानता पायी जाती है।

**(V) जाति या समुदाय के लोक गीत** : कुछ ऐसे भी **गीत हैं** जिन्हें विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। उदाहरण के लिए बिरहा को लिया जा सकता है। यह गीत अहीर जाति के लोगों का जातीय गीत है। अहीर जाति के लोग जिस भावभंगी और जोश के साथ इसे गाते हैं, उस प्रकार दूसरा कोई नहीं गा सकता है। जो अहीर बिरहा गाने में जिना प्रवीण होता है, वह उतना ही योग्य समझा जाता है। इस जाति के लोगों में विवाह के अवसर पर घर की योग्यता उसके विरहा गाने पर ही आश्रित होती है।

''पचरा'' नामक गीत को दुःसाध नाम जाति के लोग प्रायः गाया करते हैं। जब इस जाति का कोई बीमार पड़ जाता है, तब इस जाति के किसी बुढ़े को बुलाया जाता है। वह रोगी के पास बैठकर ''पचरा'' गा–गाकर देवी का आह्वान करता है। इस प्रकार कई दिन ऐसी प्रक्रिया करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है। ऐसा लोक विश्वास है।

**(VI) श्रमगीत की दृष्टि से लोक गीत** : कुछ ऐसे भी गीत गाये जाते हैं, जो किसी विशेष कार्य को करते समय गाये जाते हैं। उदाहरण के लिए धान रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हें ''रोपनी'' गीत कहते हैं। तेली तेल पेरते समय अपने हृदय के भावों का मन्थन करता हुआ जिन पदों को सस्वर रूप में गाता है, उन्हें ''कोल्हू के गीत'' की संज्ञा दी गई है। इन गीतों को गाने से काम करने में उत्पन्न थकावट दूर हो जाती है और साथ ही काम करने में मन भी लगा रहता है।

**निष्कर्ष** :– लोक गीत या लोक साहित्य का सबसे बड़ा भाग है। लोक साहित्य का अधिकांश हिस्से उसके लोक गीतों में छिपे हुये हैं। उनके सारे पर्व, त्योहार, संस्कार इत्यादि सभी की झलक उनके लोक गीतों में स्पष्ट दिखाई–सुनाई पड़ते हैं।

**(ख). हो लोक गाथा** : भारतीय भाषाओं मे जो लोक गीत गाये जाते हैं, उनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार के वे गीत हैं जो

आकार में छोटे हैं, जिनमें कथानक का अभाव है और जिनकी प्रधान विशेषता गेयता है। दूसरे प्रकार के वे गीत हैं, जो आकार में बड़े हैं, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ–साथ गेयता भी है। काव्य की भाषा में उन्हें मुक्तक और प्रबंन्ध काव्य कह सकते हैं। संस्कार तथा ऋतु संबंधी समस्त गीत प्रथम कोटि में आते हैं और लोरकी, विजयमल, हीर–रांझा, राजा रसालू, गोपीचंद आदि के गीत द्वितीय श्रेणी में आते हैं। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रथम प्रकार के गीतों को लोक गीत और द्वितीय प्रकार के गीतो को लोक–गाथा का नाम दिया है। अर्थात् वैसे लोगों का गीत जो आधुनिक जीवनशैली से दूर ग्रामीण परिवेश में निवास करते हैं और उन लोगों में अधिकांश अशिक्षित, निरक्षर हैं, जो प्रायः प्राकृतिक परिवेश में रहते हैं। वैसे लोगों के कथा गीत जिनका आकार बड़ा होता है, वही लोक गाथा की श्रेणी में आता है।

**हो लोक गाथाओं की विशेषताएँ :**

लोक गाथाओं की अनेक विशेषताएँ हैं, जो इन्हें अलंकृत काव्य (Poetry of Art) ये स्पष्टतः पृथक करती है। इन विशेषताओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि अमुक लोक–गाथा है, अलंकृत काव्य नहीं। लोक गाथाओं की इन विशेषताओं को हम प्रधानतः दस भागों में विभक्त कर सकते हैं:–

(1) रचयिता का अज्ञात होना। (2) प्रामाणिक मूलपात का अभाव।
(3) संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य। (4) स्थानीयता का प्रचुर पुट।
(5) मौखिक प्रवृति। (6) उपदेशात्मक प्रवृति का अभाव।
(7) अलंकृत शैली की अविधमानता तथा स्वाभाविक प्रभाव।
(8) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव। (9) लम्बा कथानक।
(10) टेक पदों की पुनरावृत्ति।

इनका वर्णन यथाक्रम संक्षिप्त रूप में यहाँ उपस्थित किया जाता है।

**1. रचयिता का अज्ञात होना** :– हो लोक गाथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके रचयिता भी अज्ञात होते हैं। हीर–रांझा, ढोला–मारू, विजयमाल, सोरठी, नयकता, बनजारा, गोपीचन्द और राजा भरभरी आदि की अनेक गाथाएँ उत्तरी भारत में प्रसिद्ध हैं, परन्तु इनकी रचना किसने की यह अन्धकार के गर्त में दिया हुआ है। किस काल में किस गाथा की रचना किस व्यक्ति ने की इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन है। अन्य कविताओं की भाँति इन गाथाओं का भी कोई न कोई रचयिता अवश्य होगा, जिसने अपने साथियों के साथ आनन्द में मस्त होकर इनकी रचना प्रारम्भ किया होगा।

जातीय रचना (Communal Composition) की विशेषता यह होती है कि इसके रचयिता उस दल के मुखिया का काम करते हैं और जब गाथा की रचना समाप्त हो जाती है तब उसके रचयिता होने का वह अहंकार नहीं करता। इस प्रकार की रचनाओं में गाथा की प्रधानता होती है। इसमें दल का भी महत्व होता है परन्तु किसी व्यक्ति विशेष का महत्व नहीं रहता। ऐसा देखा जाता है कि छोटे–छोटे बच्चे, छोटे–छोटे गीतों को बनाते, गुनगुनाते और गाते जाते हैं, परन्तु

इनमें से कोई भी गीत के रचयिता होने का दावा नहीं करता। यह किसी को याद भी नहीं रहता कि किसने यह गीत बनाया ..............

**2. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव** :–हो लोक गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता है। क्योंकि गाथा सम्मिलित समुदाय की रचना होती है। अतः इसके मूल पाठ का पता लगाना कठिन है। रचयिता गाथा की रचना कर उससे पृथक हो जाता है। अब यह गाथा समस्त समाज, समुदाय या जाति की रचना हो जाती है और उसे प्रत्येक मनुष्य अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। प्रत्येक गवैया अपनी इच्छानुसार नयी पंक्तियों को जोड़ता भी जाता है। विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय निवासी अपनी भाषा की शब्दावली को मिलाते भी हैं।

इस प्रकार आकार में वृद्धि के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता जाता है। लोक–गाथाओं में समय–समय पर लोक कवियों द्वारा परिवर्तन और सर्वचन होता रहता है। इस प्रकार उसके मूल कलेवर में वृद्धि होती है। हो लोक गाथाओं की यह मौखिक परम्परा गतिविधियों तक प्रवाहमान रहती है। इस बीच में लोक कवियों द्वारा इसमे इतना परिवर्तन हो जाता है कि मूल गाथा का पता ही नहीं चलता। उसी प्रकार हो लोक गाथाओं के मूल रूप में लोक कवियों द्वारा इतना अधि ाक परिवर्तन कर दिये जाते हैं कि उसके मौखिक रूप का पता नहीं चलता। इसलिए किसी लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित या अन्तिम स्वरूप नहीं होता, कोई प्रामाणिक पाठ (Version) नहीं होता। अर्थात् लोक गाथाओं का कोई मूल प्रामाणिक तथा विशुद्ध पाठ नहीं होता है।

**3. संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य** :– सच तो यह है कि संगीत के बिना गाथा को सुनने में आनन्द ही नहीं आता है। पहले यह कहा जा चुका है कि अँग्रेजी के बैलेड शब्द की उत्पत्ति लैटिन ''बैलोर'' से मानी जाती है, जिसका अर्थ नाचना होता है। अतः बैलेड का मूल अभिप्राय उस संगीत से होता है, जो नाच कर गाया जाता है। इसे जनता कोरस से गान करता था। उत्तेजनात्मक तथा पुनरावृत्तिमूलक संगीत के बिना गाथा अधूरी है। क्योंकि इसके प्राण हैं, इसकी आत्मा।

भारतवर्ष में भी गाथा का और संगीत का अभिन्न संबंध दिखाई पड़ता है। वर्षा के दिनों में ''आल्हा'' गाने की प्रथा है। गोपीचंद और भरथरी के गीत गाथा–गायक सारंगी बजाकर गाते फिरते हैं। सारंगी उसके गायन का अनन्य सहायक है। गीत और संगीत का संबंध इतना घनिष्ठ है कि देहातों में जहाँ कोई भी वाद्य उपलब्ध नहीं होता, वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलटा करकें लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़कर विचित्र प्रकार की संगीतमयी ध्वनि उत्पन्न करती हैं। वहाँ वे ताली बजाकर भी संगीत के अभाव की पूर्ति करती हैं। झूमर के गीत प्रायः ताली बजाकर ही गाये जाते हैं। लोकगीत सामूहिक रूप से गाये जाने पर विशेष आनन्द देते हैं। इस प्रकार लोक गीतों और गाथाओं का संगीत से अविच्छिन्न संबंध है।

**4. स्थानीयता का प्रचुर पुट** :– लोक गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा–महाराजा, रईस और उमरावों का वर्णन हो फिर भी स्थानीय रंग इसमें गहरा होता है। यही कारण है कि जिस देश या प्रान्त में जो गाती प्रचलित है, उसमें वहाँ के लोगों के रहन–सहन, रीति–रिवाज, खान–पान और आचार–व्यवहार का सजीव चित्रण रहता है।

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलों में सर्दी अधिक रहती है। अतः वहाँ के लोगों के लिए थोड़ी भी गर्मी असह्य होती है। कोई पर्वतीय बाला अपने पिता से प्रार्थना करती है कि "आप मेरा विवाह छाना विलौरी नामक स्थान, जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, मत कीजिएगा, क्योंकि पसीने के मारे मैं परेशान हो जाऊँगी।"[1] इसी प्रकार मैथिली लोक गीतों में वहाँ की स्थानीय प्रथाओं की झाँकी मिलती है।

**5. मौखिक प्रवृत्ति** :– लोक कथाएँ चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही हैं। प्राचीन काल में वेदों की परम्परा भी मौखिक थी। गुरू अपने शिष्य को वेद की शिक्षा मौखिक रूप से ही देता था और शिष्य को इसी विधि से वेद पढ़ाता था। लोक गाथाएँ इसी रूप में आज भी सुरक्षित हैं। लोक कवि भिखारी ठाकुर का सुप्रसिद्ध "विदेशिया" नामक गीत उसके शिष्यों द्वारा प्रचलित किया गया है। बुलाकीदास के द्वारा रचित चैता के अनेक गीतों को उनके भक्तों ने गा–गाकर काल–कवलित होने से बचा रखा है।

लोक गाथा तभी तक सुरक्षित रहती है, जब तक उसकी परम्परा मौखिक होती है। लिपिबद्ध करते ही उसकी गति की प्रगति रूक जाती है। उसकी बाढ़ मारी जाती है। यह सत्य है कि यदि किसी गाथा को आपने लिख लिया तो निश्चय समझिये कि आपने उसकी हत्या करने में योग प्रदान किया है। जब तक यह मौखिक है तभी तक इसमें जीवन है, अन्यथा नहीं। गूमर ने लिखा है कि मौखिक परम्परा किसी गाथा की प्रधान उपलब्ध कसौटी है। जब किसी गाथा को लिपि के शिकजों में बाँध लिया जाता है तब उसकी वृद्धि रूक जाती है। उसका पाठ निश्चित हो जाने के कारण उसमें अन्य गायकों द्वारा परिवर्तन तथा सम्वर्धन की गुंजाइश ही नहीं रहती है। परन्तु मौखिक रूप में रहने पर जिस प्रदेश में इनका प्रचार होता है, वहाँ के गायक उसमे दो–चार अपनी कड़िया जोड़ देते हैं। इस प्रकार इनके विभिन्न पाठ हो जाते हैं।

**6. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव** :– लोक गाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। जिस प्रकार संस्कृत में "नीतिशतक" और हिन्दी में "नीति के दोहे" मिलते हैं, उसी प्रकार "नीति के वचन" गाथाओं में उपलब्ध नहीं होते। इन गाथाओं की प्रवृत्ति कथानक को गति प्रदान करने की है, न कि उपदेश कथन की। सोरठी और आल्हा आदि में देशभक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस और शौर्य एवं प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनसे उपदेश या शिक्षा ली जा सकती है। कुसुमा देवी और भगवती देवी के गीतों से उसके अलौकिक सतीत्व तथा आदर्श आचरण की शिक्षा मिलती है, परन्तु उनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती है।

**7. अलंकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रभाव**–लोक–गाथा कलात्मक या अलंकृत काव्य से सर्वथा भिन्न है। अलंकृत कविता किसी कवि द्वारा लिखी जाती है, जो अपनी रचना को सुन्दरतम् बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के अलंकार, छंद, रस, रीति और गुणों की अवतारणा करता है। वह अपनी कृति में उपमा, छंद, रूपक और उत्प्रेक्षा की योजना कर उसे किसी विशिष्ट छंद में ढाल देते हैं। ऐसे काव्य को अलंकृत काव्य (Poetry of art) कहा जाता है।

लोक–गाथाएँ जो जनता की कविता (Poetry of Folklor) कही जाती हैं, इससे बिल्कुल अलग है। इसमें अलंकार विधान, गुण–योजना आदि का प्रायः अभावत होता है। यदि कहीं अलंकारों की स्थिति दिख पड़ती है तो वह अनायास उपस्थित होती है, प्रयासपूर्वक नहीं।

"ग्राम गीत और महाकवियों" की कविता में अन्तर है। ग्राम–गीत हृदय का ध्यान है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित।" एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं – "ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इसमें अलंकार नहीं रस है, छंद नहीं लय है, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।"[2]

**8. रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव** :– अलंकृत कविता में लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित रहता है। ऐसा कहा जाता है कि शैली ही व्यक्तित्व है। अतः कलात्मक रचना में उसके रचयिता के व्यक्तित्व की छाप आवश्यक है। एक कवि का व्यक्तित्व उसे दूसरों की कृतियों से अलग करता है। परन्तु लोक गाथाओं में लेखक व्यक्तित्व का अभाव रहता है। इन गाथाओं का कोई रचयिता नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में उसके व्यक्तित्व का प्रभाव नहीं पड़ सकता है। जहाँ तक श्रोताओं पर प्रभाव उत्पन करने का प्रश्न है, गाथाओं का रचयिता केवल अदृश्य ही नहीं बल्कि उसका अस्तित्व ही नहीं होता है। इन गीतों में उत्तम पुरूष का प्रयोग नहीं होगा। गाथाओं का गायक न तो कोई निजी विचार करता है और न किसी की आलोचना करता है।

**9. लम्बा कथानक** :– लोक गाथाओं की अन्य विशेषता है, उनकी कथा–वस्तु की दीर्घता। गाथाओं का आख्यान बड़ा लम्बा होता हे। कोई–कोई तो काव्योत्कर्ष में न सही, परन्तु लम्बाई में तो महाकाव्यों की स्पर्धा करते हैं। "ढोला–मारू" की कथा जिसके प्रत्येक पृष्ठ में 28 पंक्तियाँ हैं। विजयमल, लोरकी, सोरठी, गोपीचन्द तथा भरथरी के गीत भी छोटे नहीं है।

**10. टेक पदों की पुनरावृत्ति** :– लोक गाथाओं की सर्वप्रथम विशेषता टेक पदों की पुनरावृत्ति है। गीतों को जितनी बार दुहराया जाय उतना ही उनका आनन्द बढ़ता है। गीत तथा संगीत का अटूट संबंध रहा है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतमय हो जाता है और श्रोताओं को खूब आनन्द आता है। टेक गाथाओं की दूसरी बड़ी विशेषता है कि उसके साथ सामूहिक रूप से गवैया को भी और अधिक आनन्द आता है।

**निष्कर्ष** :– उपरोक्त विशेषताओं के अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकगीत में साहित्य में गाथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है, चाहे वह शिष्ट साहित्य हो या लोक साहित्य, दोनों साहित्यों में इसकी अपनी एक खास पहचान है। जो लोक साहित्य को पढ़ने, जानने वालों तथा इसमें रूचि रखने वालों के लिए एक खोज का विषय बन सकता है। मेरे अनुसंधान में हो समाज में विशेष रूप से लोक गाथा नहीं मिलते हैं।

## (ग). हो लोक नाट्य

**1. उद्भव** :– भारतीय नाटक का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भरत मुनि ने अपने ''नाट्यशास्त्र'' में इस विषय का विशद वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त धनंजयकृत ''दशरूपक'' तथा विश्वनाथ कविराज लिखित ''साहित्य–दर्पण'' में उसके संबंध में बहुमूल्य बातें लिखी हैं। भारत के नाट्यशास्त्र का महत्व सबसे अधिक है कि इस ग्रंथ में ''नाट्य विद्या'' का मूल श्रोत है।

नाटक की उत्पत्ति के संबंध में नाट्यशास्त्र में एक कथा दी गई है कि जिससे यह पता चलता है कि इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने सब लोगों के मनोरंजन के लिए ''ब्रह्मा'' से कोई मनोविनोद का साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की। वे ऐसा साधन चाहते थे जो श्रव्य और दृश्य दोनों हो तथा जिसमें सभी वर्णों के लोग समान रूप से भाग ले सकें। चूँकि वेदों के पठन–पाठन का अधिकार शूद्रों के लिए निषिद्ध था। अत: पंचम वेद की रचना आवश्यक हो गई थी। इस प्रकार सभी वर्णों के मनोरंजन के लिए ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर ब्रह्मा ने ''नाट्यवेद'' की सृष्टि की।

उपर्युक्त कथा से दो बातें स्पष्टतया प्रतीत होती है -- (1) नाट्यवेद का निर्माण सभी वर्णों के लिए किया गया था। (2) इसके निर्माण का प्रधान कारण जन–मानस का मनोरंजन करना था। इससे यह स्पष्ट होता है कि नाटक की अपील सार्वजनिक है तथा यह साधारण जनता के मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है।

वेदों में भी नाटकीय तत्वों के बीज उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में जो संवादात्मक ऋचाएँ पाई जाती हैं, उन्हें नाटकीय संवादों का मूल रूप कहा जा सकता है। सामवेद के गीतों का नाटक के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। विभिन्न धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों पर नृत्य की प्रथा जनता में प्रचलित है। इस प्रकार गीत–संगीत, नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी ने प्राचीन नाट्य को जन्म दिया।

पतंजलि ने महाभाष्य में ''कंसबध'' और ''बलिबध'' नाटक खेले जाने की चर्चा की है। भास, अश्वघोष तथा कालिदास के नाटकों के बाद तो संस्कृत में नाटकों की अबाध गति से रचना होने लगी। बाद में सैकड़ों वर्षों तक अक्षुण्ण रूप से नाटक चलता रहा। इन समस्त उल्लेखों से पता चलता है कि भारतीय नाट्य साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

**2. हो लोक कथाओं का विकास** :– इस देश में मुसलमानों के शासन की स्थापना हो जाने पर भारतवर्ष की राजनीति में एक सूत्रता नष्ट हो गई। देश के विभिन्न भागों में छोटे–छोटे राजा राज्य करने लगे। मुसलमान शासकों की प्रवृत्ति

साहित्य और नाट्यकला की ओर शत्रुतापूर्ण थी। वे इन्हें नष्ट करने में वीरता समझते थे। फलतः उनके शासनकाल में नाटक–रचना तथा रंगशाला का घोर ह्रास हुआ। संस्कृत साहित्य की नाट्य–परम्परा, जो सैकड़ों वर्षों से अबाध गति से चली आ रही थी, सदा के लिए नष्ट हो गई।

इसी समय उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का उदय हो रहा था, जिसके संस्थापक गोस्वामी बल्लभाचार्य जी थे। इन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। उनके अनुयायियों ने भांगवत के दशम् स्कंध की कथा को जिसमें भगवान "श्रीकृष्ण" का जीवन चरित्र वर्णित है। अभिनय के माध्यम से जनता के सामने सजीव रूप प्रदान किया। कृष्ण की लीलाओं का अभिनय मंदिरों, मठों तथा अन्य स्थानों में होने लगा, जिसे देखने के लिए श्रद्धालु, जनता की भीड़ जुटने लगी। श्रीकृष्ण की इसी प्रारम्भिक लीला ने आगे चलकर "रासलीला" का रूप धारण किया, जो आज मथुरा और वृन्दावन में बड़े प्रेम एवं श्रद्धा–भक्ति से की जाती है।

उत्तर भारत में रामभक्ति के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानन्द को प्राप्त है। परन्तु रामभक्ति को पूर्ण प्रतिष्ठा गुरू नरहरि दास के शिष्य गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा ही हुई। साधारण जनता में कृष्ण भक्ति के प्रचार का श्रेय महात्मा "सूरदास" को प्राप्त है तथा रामभक्ति के प्रचार का श्रेय गोस्वामी "तुलसीदास" को जाता है। तुलसीदास जी ने सर्वप्रथम काशी में रामलीला शुरू की थी।

उनके समय की "लंका" जहाँ रावण निवास करता था, आज काशी का एक प्रसिद्ध मुहल्ला है। इस प्रकार से भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से उत्तर प्रदेश में दो लोकधर्मी नाट्य परम्परा का जन्म हुआ – रासलीला एवं रामलीला।

इसी समय बंगाल में गौरांग महाप्रभु का आविर्भाव हुआ जिन्होंने झारखण्ड प्रान्त में भी कृष्णभक्ति का प्रचुर प्रचार किया। श्री चैतन्य भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति का गान करते बेसुध हो जाते थे। वे भगवान की आराधना करते समय कीर्तन भी किया करते थे। बंगाल में आज कीर्तन का जो इतना अधिक प्रचार है, वह चैतन्य महाप्रभु की देन है। चैतन्य ने अनेक पवित्र स्थानों की तीर्थ यात्रा की। काशी, प्रयाग, जगन्नाथपुरी की इनकी यात्रा प्रसिद्ध थी। उनके साथ उनके भक्तों और शिष्यों की मंडली भी साथ यात्रा करती थी। यह यात्रा शुद्ध धार्मिक होती थी, जिसमें श्रीकृष्ण का भजन तथा कीर्तन प्रधान कार्य होता था। धीरे–धीरे यह कीर्तन "लोक नाटक" का रूप धारण कर लिया, जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाएँ अभिनय के माध्यम से दिखाई जाने लगी। आज बंगाल में "यात्रा" या "जात्रा" तथा कीर्तन का प्रचुर मात्रा में प्रचार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हो लोक नाटकों का विकास धार्मिक आन्दोलनों से प्रेरणा प्राप्त कर हुआ है।

**3. हो लोक नाट्यों की विशेषताएँ :–** लोक नाट्य की विशेषता उसके लोक धर्मी स्वरूप में निहित है। लोक जीवन से उसका घनिष्ठ संबंध रहा है। यही कारण है कि लोक से सम्बन्धित उत्सवों, अवसरों तथा मांगलिक कार्यों के समय इनका अभिनय किया जाता है। विवाह के अवसर पर अनेक जातियों में स्त्रियाँ बारात विदा हो जाने पर स्वांग का अभिनय करती हैं।

लोक नाटकों की संक्षिप्त विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:–

**(1) भाषा** :– लोक नाटकों की भाषा बड़ी सहज और सरल होती है, जिसे कोई अनपढ़ व्यक्ति आसानी से समझ सकता है। जिस क्षेत्र या प्रदेश में नाटकों का अभिनय होता है, नट लोग प्रायः वहाँ की ही क्षेत्रीय बोली का प्रयोग करते हैं। इसमें अभिनय समस्त जनता के लिए बोधगम्य हो जाता है। इनकी भाषा में किसी प्रकार की सजावट या बनावट नहीं होती। दैनिक क्रिया–कलाप में जिस भाषा का वे व्यवहार करते हैं, उसी का प्रयोग अभिनय करते समय भी किया जाता है। ये प्रायः गद्य का ही प्रयोग करते थे, परन्तु बीच–बीच में गीत भी गाते थे।

**(2) संवाद** :– लोक नाटकों के संवाद बहुत छोटे तथा सरल होते हैं। कहीं–कहीं तो प्रश्न तथा उत्तर दो तीन शब्दों में सीमित रहता है। लम्बे कथोपकथन का इनमें नितांत अभाव होता है। ग्रामीण जनता में लम्बे संवाद सुनने के लिए धैर्य नहीं होता है। अतः नाट्कीय पात्र अपने संवादों को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रयोग में लाते हैं।

**(3) कथानक** :– लोक नाटकों का कथानक प्रायः ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक होता है। धार्मिक कथावस्तु को लेकर भी अनेक नाटक खेले जाते हैं। बंगाल की "जात्रा" और "कीर्तन" का स्त्रोत धार्मिक है। केरल प्रदेश में प्रचलित "यक्षगान" नामक लोक नाटक का कथानक प्रायः पौराणिक होता है। उत्तर प्रदेश में रामलीला और रासलीला राम तथा कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है।

**(4) पात्र** :– लोक नाटकों में प्रायः पुरूष ही विभिन्न पात्रों का काम करते हैं। स्त्री पात्रों का कार्य भी पुरूष ही करते हैं। अब कुछ लोक नाट्य मण्डलियों ने साधारण जनता को आकर्षित करने तथा धन कमाने के लिए इन नाटकों में सुन्दर लड़कियों का उपयोग प्रारम्भ कर दिया है। लोक नाटकों के पात्र अपनी वेश–भूषा की अपेक्षा अपने अभिनय द्वारा ही लोगों को आकृष्ट करने की चेष्टा करते हैं। जिन पात्रों की चर्चा इन नाटकों में की जाती है, वे समाज के चिरपरिचित व्यक्ति होते हैं। जैसे – गाँव का मक्खीचूस बनिया, खूसट बूढ़ा, छैला युवक, दुष्टा सास, कुलटा स्त्री, शराबी पति, पाखण्डी साधु, अत्याचारी अफसर आदि।

**(5) चरित्र–चित्रण** :– लोक नाटकों में चरित्र–चित्रण बड़ा स्वाभाविक होता है। पात्रों के कथन से ही व्यक्ति के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। विदूषक अपने हावभाव तथा मुद्राओं से अपने चरित्र को सार्थक बनाने की चेष्टा करता है। स्त्रियों का चरित्र–चित्रण प्रायः पुरूष करते हैं, इसलिए उसमें सजीवता का अभाव रहता है।

**(6) रूप–योजना** :– इन नाटकों में किसी विशेष प्रकार के प्रसाधन, अलंकार, बहुमूल्य वस्त्र आदि की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, कागज, खड़िया आदि देशी प्रसाधनों से मुख का श्रृंगार करते हैं।

**(7) रंगमंच** :– लोक नाट्य खुले मंच पर हुआ करते हैं। जनता मैदान में आकाश के नीचे बैठकर नाटक का अभिनय देखती है। किसी मंदिर के आगे ऊँचा

चबूतरा या ऊँचे टीलों पर ही रंगमंच का काम लिया जाता है। कहीं–कहीं काठ के ऊँचे तख्ते बिछाकर मंच तैयार किया जाता है। इन रंगमंचों पर परदे नहीं होते। अतः दृश्य की समाप्ति पर कोई परदा नहीं गिरता। सारी कथा अविच्छिन रूप से अभिनीत की जाती है तथा दर्शक उसे बड़े धैर्य से देखते हैं। पात्रगण अपना प्रसाधन किसी पेड़ या दिवाल की आड़ में बैठकर करते हैं, जो उनके लिए "गीनरूम" का काम करता है।

**4. कुछ प्रसिद्ध लोक नाट्य** :– भारत के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न–भिन्न प्रकार के लोक–नाट्य प्रचलित हैं। उत्तर भारत में रामलीला और रासलीला है।

राजस्थान में माच "ख्याल" के रूप में प्रचलित है। इसका आरम्भ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। ब्रजमण्डल में खुले रंगमंच पर नौटंकी के ढंग पर "भगत" होती है। "भगतों" में विविध प्रकार की लीलाएँ खेली जाती हैं। स्वांग का इनमें पूरी तरह से समावेश है। गुजरात में "भवाई" नामक लोक नाट्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें अभिनय करने के लिए किसी भी ऊँची भूमि, मंदिर अथवा घर के चबूतरे पर रंगमंच अस्थायी रूप से तैयार किया जाता है। बंगाल की "जात्रा" दशावतर मराठी रंगमंच के आधार है। "तमाशा" महाराष्ट्र का प्राचीन नाट्य है। "यक्षगान" दक्षिण भारतीय लोक नाट्या का वह प्रकार है, जो तमिल, तेलगु, कन्नड़ भाषा–भाषी क्षेत्र की ग्रामीण जनता में प्रचलित है। तेलगु में इसे "विथि", "विथि भागवतम्" कहते हैं। यक्षगान लोक नाट्य की कथावस्तु प्रायः रामायण, महाभारत और भागवत से ली जाती है। परन्तु कहीं–कहीं कथानकों का आधार सामाजिक जीवन भी होता है।

**निष्कर्ष** :– भारत में लोक नाटक का इतिहास काफी पुराना है। लोक नाटकों का उल्लेख वेदों एवं शास्त्रों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है और लोक नाटकों की परम्परा काफी प्राचीन रही है। आज भी वह परम्परा से चली आ रही है और वह आगे भी चलती रहेगी।

## (च) हो मंत्र :

हो भाषी क्षेत्र के निवासी अदृश्य, अव्यक्त, अभौतिक तथा आत्मिक शक्तियों पर विश्वास करते हैं। इस क्षेत्र के लोगों की यह धारणा है कि मनुष्य जन्म से मृत्यु तक अदृश्य आत्माओं, भूत, प्रेतों और अज्ञात शक्तियों से घिरा रहता है। इस क्षेत्र के अधिकांश लोग यह मानते हैं कि चट्टान, पहाड़, पेड़ और नदियाँ सभी जीवनयुक्त होते हैं। जीवयुक्त होने के साथ ही साथ इनमें अन्य जीवोचित गुण–दोष भी होते हैं।

[illegible] क्षेत्र के लोगों का विश्वास जादू–टोना में है। सामान्य रूप से किसी कार्य [illegible] लेने की क्षमत जब व्यक्ति अथवा समूह में नहीं होती तब वह इन क्रियाओं की सहायता लेता है। यह जादू–टोना अच्छा भी होता है और बुरा भी। वास्तव में हो भाषी क्षेत्र में मंत्र, जादू, टोने–टोटके लोकजीवन के प्रमुख अंग बने हुए हैं और इनकी मान्यता और उपयोगिता सभी स्वीकार करते हैं। इससे ओझा, भगत, भगताइन, मौलवी आदि पर्याप्त धनार्जन करते हैं।

लोक–साहित्य में संस्कृत के "मंत्र" को "मन्तर" कहा जाता है। मंत्र, संकट मोचन का साधन है। जनजीवन में इसका प्रयोग कष्ट–निवारण के लिए होता है। मंत्र का अधिकांश प्रभाव उसके उच्चारण पर निर्भर करता है। उपयुक्त व्यक्ति के द्वारा ठीक उच्चारण किए हुए मंत्रों से इच्छित फल मिलता है, किन्तु साथ ही अशुद्ध उच्चारण से न सिर्फ उसका प्रभाव नष्ट होता है, बल्कि उल्टे अनिष्टकारी भी प्रमाणित होता है। इस सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र ने अपने एक लेख में कहा है –"समस्त देव मंत्र, संस्कार–अनुष्ठान से सम्बन्ध रखते हैं। वे Ritualistic है। मंत्रों के साथ यह टोने–टोटके की भावना लगी हुई है कि यदि इनका उच्चारण हम सविधि करेंगे तो उनसे हमें अवश्य फल मिलेगा। मूलतः मंत्रानुष्ठान टोने के एक आवश्यक अंग थे।"[3]

मंत्र का लौकिक जीवन में बड़ा महत्व है। वैदिक कर्मकाण्डियों के लिए मंत्र टोने के रूप में काम करते थे। उस जमाने में सिद्धि प्राप्ति के लिए उच्चारण करने का अधिकार सबको नहीं था। पर, इसके लिए ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं था। मंत्र की सिद्धि प्राप्ति के लिए विशेष अवसर और तिथि निर्धारित है। निर्दिष्ट अवसर और तिथि को सिद्ध प्राप्ति के लिए आवश्यक विधि की जाती है। यों तो चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के समय ही इनकी सिद्धि की प्राप्ति की जाती है।

दीपावली को काल रात्रि कहा जाता है और सारी तांत्रिक विधियों के लिए इसी रात्रि को सर्वोत्तम माना जाता है। तंत्र–मंत्र और ज्योतिष भारतीय जीवन के अभिन्न अंग हैं। वेदों की हर ऋचा एक–एक मंत्र हैं। गायत्री, गीता, रामायण और महाभारत में जाने कितने मंत्र हैं, जो सिद्ध कर लिए जाने के बाद प्रभावशाली बन जाते हैं। हमारे वैदिक ऋषियों की मनोकामना यही रही है कि तंत्र और मंत्रों का उपयीग सिर्फ मानव–कल्याण के लिए किया जाय। हम यह जानते हैं कि तंत्र और मंत्र को कुछ लोगों ने अब व्यापार बना लिया है और कुछ अधकचरे तथा कम समझदार लोग इस क्षेत्र में आ गये हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है हो भाषी क्षेत्र के लोग मंत्र सिद्धि हेतु कार्तिक अमावस्या को उपयुक्त मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि मंत्र की सिद्धि तो चन्द्रगहण, सूर्यग्रहण तथा प्रत्येक माह की अमावस्या तथा पूर्णिमा के अवसर पर ही प्राप्त की जाती है, किन्तु इस क्षेत्र के गुणी, जिन्हें बिसाहा (पुरूष) तथा डायन (नारी) कहा जाता है, विशेष सिद्धि के लिए कार्तिक अमावस्या के दिन श्मशान घाट में जाकर विधिपूर्वक सिद्धि प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करते हैं। इस रात को गाँव के लोग अपने बच्चों को घरों से बाहर जाने नहीं देते और प्रत्येक बच्चे के तलवे पर करंज के तेल की मालिश कर दी जाती है। उनका विश्वास है कि ऐसा करने पर किसी भी गुणी की कोई अनिष्टकारी कार्रवाई का असर बच्चों पर नहीं होगा। ग्रामीणों का यह विश्वास है कि दीपावली की रात्रि में "यम" खुले रूप से विचरण करता है और साथ ही "डायन" अथवा "बिसाहा" अपनी सिद्धि प्राप्ति के लिए बच्चों पर अपने मंत्र का प्रयोग करते हैं। इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए शिक्षित होना आवश्यक नहीं होता है, बल्कि इसके लिए निर्धारित मंत्र को याद करना पड़ता है

और सही उच्चारण का लम्बा अभ्यास होता है। यह भी विश्वास किया जाता है कि कोई ''डायन'' ही किसी स्त्री को ''डायन'' की दीक्षा दे सकती है। यह भी कहा जाता है कि यह दीक्षा माँ अथवा सास से किसी को विरासत के रूप में प्राप्त होती है। ''डायन'' कहलाने वाली स्त्रियों को अनेक प्रकार के कष्ट भी उठाने पड़ते हैं। फलतः वे किसी अन्य स्त्री को डायन बनाकर अपने को भार–मुक्त कर लिया करती हैं। कभी–कभी ऐसा जबरन किया जाता है, क्योंकि ''डायन'' बनने के लिए स्त्रियाँ आसानी से तैयार नहीं होती हैं। इसके लिए पहले किसी से मित्रता बढ़ानी आवश्यक होती है, जो बेरोक–टोक उसके साथ किसी भी समय मिल सके।

मुझे बताया गया है कि जब एक डायन किसी को डायन बनाना चाहती है, तो किसी भी महीने की अमावस्या अथवा पूर्णिमा की रात में वह उसके घर रात्रि में जाती है और तरह–तरह के टोटके, उस महिला की जानकारी के बिना करती है तथा उसके दरवाजे अथवा सम्भव हुआ तो उसके सिर के पास ''ठुठंगी बढ़नी'' (टुनटीला जोनोः/टूटी झाड़ू), फटा सूप (रापुड़् हाटाः), फूटा पुराना घड़ा (रापुड़् चाटु, करिया चुक्का), अरवा सूता (जिड़् सुताम/चरखा का काता सूत), सिन्दूर आदि रख देती है और वह वहाँ से चुपचाप चल देती है। इस अवसर के लिए काफी इंतजार करना पड़ता है और यह तभी सम्भव हो पाता है, जब घर के लोग किसी कार्यवश बाहर होते हैं अथवा जिस महिला में ''डायन'' का गुण थोपना होता है, वह अकेली सोयी होती है। ऐसा कहा जाता है कि ''डायन'' अपने मंत्र से गहरी नींद में उसे सुला देती है। सारी विधि, कहा जाता है पन्द्रह बीस मिनट में ही पूरी हो जाती है। इस विधि के पूर्ण हो जाने के बाद एक नयी महिला अनजाने ''डायन'' बन जाती है और ऐसी स्थिति में वह अपना ही अनिष्ट कर लेती है चूँकि कोई शक्ति ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। यह भी बताया गया कि अगर वह किसी अन्य का अनिष्ट करना नहीं चाहती तब अपने ही परिवार के किसी का अनिष्ट कर डालती है।

ऐसा भी होता है कि कुछ गुणी अथवा ''डायन'' किसी अन्य को कष्ट नहीं देना चाहते हैं, तब ऐसे लोग अन्य तक स्वयं सारे कष्ट उठा कर भी अपनी सिद्धि दूसरों को नहीं देते।

''अंधविश्वास का दूसरा बड़ा वर्ग है मंत्र–तंत्र। इस वर्ग के भी अनेक उपभेद हैं। मुख्य भेद हैं – रोग निवारण, वशीकरण, उच्चाटन, मारण आदि। विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मंत्र प्रयोग प्राचीन तथा मध्यकाल में सर्वत्र प्रचलित था। मंत्र द्वारा रोग निवारण अनेक लोगों का व्यवसाय था। विरोधी और उदासीन व्यक्ति का अपने वश में या दूसरों के वश में करवाना मंत्र सम्भव माना जाता था।''[4]

''मंत्र समय के साथ टोने का रूप धारण करता चला गया। पढ़कर मंत्र मारिये कार्य सिद्ध होगा। ओझाओं तथा सिद्ध पुरूषों में आपसी शक्ति का परीक्षण होने लगता है। इस क्रम में गुण–शक्ति को प्रभावहीन करने के प्रयास किए जाते हैं। जब कोई ओझा अथवा सिद्ध गुणी के कामों में बाधा डालने के लिए अपना मंत्र पढ़कर उसके कामों को प्रभावहीन करने का हर सम्भव प्रयास

करता है, तब इसमें कभी–कभी सफलता भी मिल जाती है। जिसके विरूद्ध यह कार्रवाई होती है, वह भी इस बात को जान जाता है और बड़ी ही सावधानी से अपना काम करता रहता है। हो–भाषी क्षेत्र में ओझा तथा भगत से लोग काफी भयभीत रहते हैं। डायन और मती जानने वाले ओझा से यह आशंका होती है कि पता नहीं कब वह अनिष्ट कर दे।

ओझाओं का टोना–टोटका चलता रहता है। इनसे गाँव के लोगों को अधिकतर लाभ ही का भ्रम रहता है। भूत–प्रेत–बाधा को समाप्त करने में ओझा बड़ा महत्वपूर्ण योगदान करता है। ऐसा विश्वास लोगों के मन में बैठा हुआ है।

हो भाषी क्षेत्र के ओझा अर्थात् भगत का काम है कि वह मंत्रों से झाड़–फूँक कर भूत–प्रेतों के रूप में आयी गम्भीर बीमारी को दूर करे। गाँवों के ये ओझा–भगत केवल मंत्रों के शब्दों से ही परिचित होते हैं, वे अर्थ नहीं जानते। मंत्रों पर ध्यान देने पर यह विदित होता है कि उसमें "अर्थ" जैसी कोई वस्तु नहीं होती। भगतों एवं ओझाओं के क्रिया–कलापों को "टोना" कहा जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मंत्र और टोना, दोनों में अभिन्न सम्बन्ध है।

"टोना अथवा मंत्र का आन्तरिक सिद्धान्त यह है कि समस्त प्रपंच किन्हीं निर्वैयक्तिक शक्तियों से संचालित होता है, जो नियमों से बँधकर चलता है, जो इन रहस्यों से परिचित है। वे अनुष्ठानों और जंत्रों–मंत्रों से उस शक्ति या उन शक्तियों को विवश करके अपने मनोनुकूल फल प्राप्त कर सकते हैं। यह भावना के विरूद्ध है जो धर्म (रिलीजन) में पायी जाती है।"

फ्रेजर महोदय ने "स्तुति" (प्रेयर) तथा मंत्र (स्पैल) दोनों को अलग–अलग माना है। स्तुति से देवताओं को फुसलाते हैं और स्तुतिवाचक का अभिष्ट पूर्ण करने का आह्वान करते हैं। किन्तु "मंत्र" अपनी शक्ति से विवश करके उस शक्ति से अभिष्ट पूर्ण कराता है। इस तरह स्तुति का सम्बन्ध धर्म सें है, मंत्र का टोने (मैजिक) से।

"यह सच है कि टोने का प्रयोग अक्सर आत्माओं पर होता है, जो उसी तरह की व्यक्तित्व–सम्पन्नकारक शक्तियाँ होती हैं, जिस तरह की धर्म द्वारा अनुभूति होती है, पर जब कभी अपने वास्तविक रूप से टोना इस प्रकार प्रयुक्त होता है तो यह उन शक्तियों को उसी रूप में गृहीत करता है जिस रूप में जड़ निमितों को अर्थात् यह उनको बाँधता और विवश करता है, उनकी स्तुति या विनय नहीं करता, जैसा कि धर्म द्वारा किया जाता है। इस प्रकार यह इस बात को मान लेता है कि किसी व्यक्तित्व सम्पन्न सताएँ, चाहे वे मानवी हो चाहे दैवी – अन्ततः उन निर्वैयक्तिक शक्तियों के वश में रहता है जो सभी नियमनों का पालन करता है। फिर भी जो स्वयं विवशता के साथ उपयोग में घसीटी जा सकती है, यदि कोई उन्हें समुचित चर्याओं और टोनों से वश में करना जानता हो।"

फ्रेजर महोदय भारत के सम्बन्ध में लिखते हैं – "इसी प्रकार आधुनिक भारत में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की महत्त्रयी भी जादूगरों के वश में है। वे अपने टोनों से इन सर्वातिशयी शक्ति से सम्पन्न देवताओं को भी इस प्रकार विवश कर सकते हैं कि नीचे पृथ्वी पर और ऊपर स्वर्ग में वे वही कार्य करें, जिनका आज्ञा उन्हें ये

स्वामी जादूगर उन्हें दें। एक लोकोक्ति सारे भारत में प्रचलित है कि सारा विश्व देवताओं के वशीभूत है, देवता मंत्रों के वशीभूत हैं, मंत्र ब्राह्मणों के वश में है, अतः ब्राह्मण हमारे देवता हैं।''

पुरोहित तथा सयाने (टोना करने वाले गुणी) धर्म और टोने का यह सैद्धान्तिक विरोध व्यावहारिक विरोध में परिणत हो गया। ये दोनों अलग–अलग अपनी शक्तियों का चमत्मकार दिखाते रहे हैं। आज भी यह अन्तर विद्यमान दिखायी देता है। फ्रेजर महोदय का कहना है कि आरम्भ में मूलतः सैद्धान्तिक विरोधी होते हुए भी वे दोनों अनुष्ठान साथ–साथ चलते रहे थे –''अपने अभीष्ट को सिद्ध करने वाले के लिए मनुष्य एक ओर तो देवताओं और आत्माओं की स्तुति और यज्ञ–बलि से रिझाकर उनकी कृपा चाहता रहा, उधर दूसरी ओर वह ऐसे अनुष्ठानों और शब्द–रूपों का आश्रय लेता रहा जिससे उसे आशा थी कि बिना देव अथवा दानव की सहायता के ही अभीष्ट सिद्ध हो सकेगा। संक्षेप में वह धार्मिक और टोने के अनुष्ठानों को साथ–साथ करता रहा। टोने के धर्म में घुलमिल जाने अथवा गड़बड़झाले के उदाहरण हमें मलैशिया वासियों तथा अन्य जातियों के आचारों में अभी मिल चुके हैं।''

**टोना :**

समय के साथ पुरोहित और सयाने में विरोध तीव्र हुआ और बाद में दोनों अलग–अलग हो गये। टोने से अपना अभीष्ट पूरा करने वाले, सयाने कहलाए। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिक युग में मानव ने टोने को ही प्रधानता दी थी। इस तथ्य को फ्रेजर महोदय ने तर्क परम्परा से भी प्रमाणित किया है – ''टोना क्या है ? टोना मस्तिष्क को अत्यन्त सीधी–सादी और अत्यन्त प्रारम्भिक प्रक्रिया का भ्रामक उपयोग ही तो है। दूसरे शब्दों में सादृश्य और संबद्धता के सहारे विचारों को संगति विषयक मानसिक प्रक्रिया का भ्रामक उपयोग टोने में दिखायी पड़ता है। दूसरी ओर धर्म मानता है कि उन चेतन और वैयक्तिक कर्ताओं को जो प्रकृति के अदृश्य आवरण के पीछे रहते हैं और जो मनुष्य से ऊँचे होते हैं।''

उन्होंने कहा है – ''यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि हमारी जाति के विकास में टोने का उदय धर्म से पहले हुआ तथा मनुष्य ने मात्र मंत्रों और वशीकरणों की शक्ति मात्र से ही प्रकृति को अपनी अभिलाषा पूर्ति के लिए झुकाने की पहले चेष्टा की, तब बाद में उसने स्तुति और यज्ञ के कोमल फुसलावों से एक कांइयाँ, स्पृही और तामसी देवता की खुशामद करने और उसे सन्तुष्ट करने की चेष्टा की।''

**प्रकार :**

फ्रेजर महोदय ने रिजेम्बलेंस (तुल्यता अथवा सादृश्य) और काण्ठिगुइटी (संबद्धता) के आधार पर दो प्रकार के टोने स्वीकार किए हैं –

1. **होम्योमैथिक मैजिक**–जो तुल्य अथवा सादृश्य वस्तु के द्वारा तुलनीय पर प्रभाव डालते हैं। शत्रु को मारने के लिए उसका पुतला बनाकर उसमें पिन चुभना या उसे जलाना आदि।

2. **काण्टेगुअस मैजिक**–जो अंशी के अंश से प्रभाव डालती है – जैसे, नाखून के टुकड़े, बालों के गुच्छे, मल, नाम, पद–चिन्ह आदि से टोना किया जाता है। इसके अतिरिक्त टोनों को पॉजिटिव और नेगेटिव में भी बाँटा जाता है। ''विधि विन्यासी टोना'' किसी को सम्पन्न करने के लिए उपयोग में आता है। ''निषेध विन्यासी'' किसी प्रभाव या घटना को रोकने के काम आता है। टोने के दो भेद और किये जाते हैं – **ब्लैक मैजिक** (काले टोने) जो अहितकर शक्तियों का आह्वान कर दुष्कृत्य कराने के उपयोग में आते हैं। **व्हाइट (श्वेत) मैजिक**–अच्छे कार्यों के लिए।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि टोने का जन्म आदिम मानस की देन है और वस्तुतः मूल में यह उस सिद्धान्त का परिणाम है जो ''मन'' शक्ति में विश्वास करता है। ''मन'' में विश्वास का कारण आदिम–मानस की वह वृति है, जिसमें यथार्थ और कल्पित मे भेद करने की बुद्धि नहीं रहती। ऐसी स्थिति में आदिम–मानस ने प्रकृति के व्यापारों में जो विशेषता देखी उसे एक शक्ति के यथार्थ रूप में समझा वैसे ही उसने सृष्टि की घटनात्मक स्थिति में पदार्थों की जड़ता के अतिरिक्त शक्ति की यथार्थता में विश्वास किया जो किसी घटना को घटित कराने में समर्थ होती है। इस भाव विवरण को डॉ० सत्येन्द्र ने तीन रूपों में विभक्त किया है –

1. एक ऐसी शक्ति की सर्वत्र विद्यमानता – ''मन'' की स्थिति।

2. ऐसी शक्ति से अप्राणी पदार्थों में एक प्राणित्व की भाव–स्थिति जिसे ऐनिमेटिज्म ''प्राणिभावकता'' नाम दिया गया है। ये दोनों स्थितियाँ इसी ''परिकल्पनीय'' विचारण का परिणाम है, और इसी के क्षेत्र की है। इसका आगे विकास हुआ।

3. ''अप्राणि आत्मवाद'' का जन्म होता है, जो ''अप्राणि आत्मीय विचरण'' का परिणाम है। मन की इसी शक्ति को जब कोई व्यक्ति टोने से या किसी क्रिया से सक्रिय करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करा सकता है तो वह टोने या मैजिक का उपयोग करता है। ऐसी शक्ति को उपार्जित सिद्धि कहा गया और उसका साधन तथा माध्यम ''मंत्र'' कहा जाएगा। मंत्र के द्वारा शक्ति का उपार्जन भी होगा और उसका उपयोग भी।''

यह सत्य है कि ''मंत्र–शास्त्र'' अत्यन्त ही प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इस शास्त्र पर बहुत अधिक दार्शनिक विचार किया गया है, जो आश्चर्यचकित कर देता है। इसे पूर्ण रूप से समझना बड़ा कठिन है, फिर भी इसकी जानकारी के लिए यहाँ बहुत ही संक्षेप में उसका उल्लेख करना अपेक्षित होगा।

यों तो ईसाइयों के बाइबल में भी कहा गया है –''आरम्भ में केवल शब्द थे। शब्द ईश्वर के पास थे और शब्द ही ईश्वर था। न्यू टेस्टामेन्ट के इस ''लोगास'' सिद्धान्त से बहुत पूर्व मिश्र में भी कुछ ऐसा ही विश्वास था। 700 ई०पू० में मिश्री फरोह ने एक शिलालेख पर मेम्फिस धर्म का रूप अंकित कराया। वह इस फरोह के भी पूर्व से चला आ रहा था। इसमें ''प्त'' को **शब्द** ब्रह्म माना है। यह लेख यों आरम्भ होता है – ''प्तः परम एक, वह देवताओं के ऐन्नीड का हृदय (अर्थ) और

जिह्वा (शब्द) है ......... इसने देवता उत्पन्न किये – हृदय में वह (कुछ या कोई भाव) आया, वह जिह्वा पर आया, "अतुम" के रूप में। किन्तु भारतीय वेदों में इस सत्य को यों प्रकट किया गया है –

"प्रजापतिर वे इदम् आसीत्।" (आरम्भ में प्रजापति थे)

"तस्य वाग्–द्वितीया आसीत्।" (और उसका द्वितीय वाक् (शब्द) था)

"वाग् वै परमं ब्रह्म।" (वाक् परम ब्रह्म है)

इस प्रकार यह शब्द ही प्रजापति अथवा मूल पुरूष है। इसी शब्द से समस्त सृष्टि उद्भावित हुई। मूल रूप में यह शब्द "पराशब्द" था। "पराशब्द" वह स्थिति है जिसे "सकल परमेश्वर" कहा जाएगा। इसमें कला–शक्ति सहित परमेश्वर = परमशिव अभेद भाव से अद्वैत रूप में विद्यमान रहते हैं। इस स्थिति में "शब्द + अर्थ + प्रत्यय" तीनों ही "एकमेक" रहते हैं। फलतः यहाँ शब्द = अर्थ = प्रत्यय – यही सत्ता का रूप होता है। इस सकल परमेश्वर में शक्ति का उद्भव होता है। शक्ति को इच्छा शक्ति भी कही जा सकती है।

"शारदातिलक" ने इस समस्त स्थिति को इस श्लोक से स्पष्ट किया है –

सच्चिदानन्द–विभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस ततो नादो नादाद् बिन्दु–समुद्भवः।

अर्थात इस बिन्दु से बीज प्रकट होते हैं। यों यहाँ तक परमतत्व की स्थिति को परा स्थिति में माना जाता है, और इस परा बिन्दु से कार्य–बिन्दु और उससे बीज की उत्पत्ति मानी गयी है। इस बिन्दु के सम्बन्ध में "टोडाला" तंत्र में कहा गया है कि बिन्दु शून्य भी है और गुण भी। शून्य इसलिए कि यह परम ब्रह्म है और गुण इसलिए कि यही शक्ति का वह रूप है, जिसका परिणाम पुरूष और प्रकृति इन दो तत्वों में होता है। प्रकृति तो सगुण होती ही है। यह बिन्दु शक्ति ही है जो नाम + रूप – आत्मिक जगत् का कारण है। नाम + रूप = शब्द + अर्थ। यह कारण बिन्दु ही कार्य–बिन्दु–नाद और बीज को जन्म देता है।

"प्रपंचसार तंत्र" में इस कारण–बिन्दु से उत्पत्ति की क्रिया बतायी गयी है। यह कारण–बिन्दु या परा–बिन्दु दो भागों में विभक्त हो जाते हैं – दक्षिण भाग और वाम भाग। दक्षिण भाग पुरूष है अथवा "हंस" है, + वाम भाग विसर्ग है, स्त्रीलिंग अथवा प्रकृति। "स" जिससे सम्पूर्णता "हंसः" कहलाता है। "हं" पुरूष और प्रकृति का संयोग है "सः" विसर्ग होने से दो बिन्दु युक्त है। एक बिन्दु "हं" का इससे "त्रिबिन्दु" की स्थापना होती है, ये "त्रिबिन्दु" समस्त सृष्टि के रहस्य है – ये तीन बिन्दु सूर्य, चन्द्र और अग्नि है। ये अच्छा, ज्ञान, क्रिया नाम की शक्तियाँ है, जिनका सम्बन्ध सत, रज, तम गुणों से है। इनसे तीन देवियों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम हैं – रौद्र, ज्येष्ठा और बामा और इन्हीं त्रिमूर्ति रूद्र, ब्रह्म और विष्णु प्रकट हुए हैं। इन तीन बिन्दुओं को सितबिन्दु (श्वेत), शोण बिन्दु (लाल) और मिश्र बिन्दु माना जाता है। इन तीन बिन्दुओं में ही श्रुतियों के "त्रिविक्रम" का अर्थ समाया है, जो विष्णु के तीन पग माने गये हैं और चौथा इन तीनों से ऊपर रहस्यमय है। सृष्टि क्रम में इस त्रैत का अर्थ स्पष्ट है। सद्वैत सृजन के लिए द्वैत होता है और इन दो

तत्वों का सम्बन्ध भी एक सत्ता में प्रकट हो जायगा। अतः द्वैत के साथ ही यह त्रैत शब्द ब्रह्म पैदा होता है। इस शब्द ब्रह्म से अभिव्यक्ति के वे स्थूल स्वरूप निकलते हैं, जो भाषा के "शब्द" और "अर्थ" और "प्रत्यय" कहलाते हैं। यह "शब्द–ब्रह्म" ही "शब्द" अथवा "मंत्र" की नित्य मूल कारणात्मक स्थित है। यह स्थूल और प्रकट शब्द का "परा" रूप शब्द है, जिसे "पराशब्द" भी कह सकते हैं। वह परा शब्द वास्तव में शक्ति की वह स्पन्दनशीलता है, जो प्रकृति की साम्यावस्था में क्षोभ पैदा कर देती है अथवा सामान्य स्पंदन प्रस्तुत कर देती है, जिससे यह अभिव्यक्त "शब्द" अथवा अपरा शब्द प्रकट हो जाता है जो अनेकों नाम रूपधारण कर लेता है। इस नाम ......... रूप वैविध्य धारण करने वाले शब्द–अर्थ का मूल अभिव्यक्त रूप महाबीज प्रणय "ओम्" है। यही समस्त मंत्रों का जनक है। नाम रूपात्मक वैविध्ययुक्त शब्द चार प्रकार सम्भव होते हैं।

1. प्रकृत ध्वनि, 2. प्रकृति निःध्वनि, 3. कृत् ध्वनि 4. कृत निःध्वनि।

प्रकृति–ध्वनि के अन्तर्गत् ही वैदिक शब्द और बीज मंत्र आते हैं। ये वैदिक शब्द और बीज मंत्र पराशब्द को शब्द–तन्मात्राओं से सम्बन्धित है। शब्द मात्र में ध्वनि का शुद्ध रूप ही नहीं सम्मिलित है, इनमें सामान्य और विशेष ध्वनियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। यह प्रकृत "ध्वनि नाम" अथवा "प्रकृत संज्ञा" से सम्बद्ध होती है।

भोज पत्र लिखे बन्धे तो भूत–प्रेत मिटे गले बाँधे .................हो भाषी क्षेत्र में भी उपर्युक्त प्रकार के भोज–पत्र में लिखे यंत्र रोगी को दिये जाते हैं।

डॉ० सत्येन्द्र ने मंत्रों के स्वरूप पर विचार करने के बाद उसे दो भागों में विभक्त किया है।

मंत्र, पारमार्थिक, लौकिक, वैदिक, बौद्ध, जैन, तांत्रिक

एक प्रकार के मंत्र पारमार्थिक कहे जा सकते हैं। इनका उद्देश्य परमार्थ विषयक होता है। इनका सम्बन्ध धर्म से होता है। इसको भी लौकिक चिकित्सा में ले लिया जाता है। इन मंत्रों को लोक–साहित्य में नहीं लिया जाता है।

लौकिक मंत्र एक प्रकार से लोक–चिकित्सा और लोक सम्भारण के लिए होता है। भूतों, प्रेतों की बाधा को झाड़ने–फूँकने, किसी को वश में करने, किसी को हानि पहुँचाने, विष झाड़ने, रोग को दूर करने, पुत्र प्राप्ति, किसी को मारने आदि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

लौकिक मंत्र : चिकित्सार्थ, वर प्राप्ति के लिए, मारण आदि हेतु, श्वेत टोना, काला टोना। हो–भाषी क्षेत्र के लौकिक मंत्रों का विभाजन हम इस प्रकार कर सकते हैं:–हो लौकिक मंत्र : श्वेत टोना, काला टोना, चिकित्सार्थ, कल्याणकारी, मारण या कष्ट या कष्ट देने हेतु।

श्वेत टोना–जन–कल्याण के लिए काम में आते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के रोगों की चिकित्सा, विभिन्न तरह के विषैले जीव–जन्तुओं के काटने पर शरीर में फैले विष उतारने, संतान की प्राप्ति, गाँवों में भूत–बाधा से छुटकारा, कृषि उपज बढ़ाने आदि के लिए कार्य होते हैं।

**काला टोना :**

शत्रुओं को मारने के लिए, लोगों को हर तरह से परेशान करने के लिए, गाँवों में अशान्ति फैलाने आदि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

हो–भाषा क्षेत्र के ओझा, गुणी, सयाने, भगत आदि अपने मंत्रों द्वारा जहाँ एक ओर भूत–प्रेत बाधा को दूर करने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं। विभिन्न प्रकार के असाध्य रोगों को भी समाप्त कर देने के लिए लगातार लगे रहते हैं, वहीं वे दूसरी ओर ''विनाशक मंत्र'' का प्रयोग कर लोगों की जान ले लेते हैं। इसके अतिरिक्त वे पशुओं में भयंकर रोग फैलाने में भूत–प्रेत का उपयोग करते हैं। गाँव में अशांति फैलाकर वे इसका मजा लेते हैं।

कभी–कभी गुणी–भगत आपस में शक्ति–परीक्षा के लिए भी काला टोना का प्रयोग करते हैं। मंत्रों से काम होता रहता है तब इस बात की जानकारी जनसाधारण को तो नहीं हो पाती किन्तु गुणियों के चेहरे के उतार–चढ़ाव उसकी परेशानियों को देखकर समझा जा सकता है। मुख्य रूप से डायन और बिसाहा मारकर मंत्रों का उपयोग करते हैं, जबकि अन्य गुणी और भगत कल्याणकारी कार्यों के लिए ही अपने मंत्रों का उपयोग करते हैं।

गुणी रोगों की जानकारी के लिए कई उपाय अपनाते हैं। रोग की जानकारी, चोरी के सामानों का पता लगाने, रोग के निदान के उपाय आदि के लिए ''डलिया'' अथवा ''सगुन'' का रास्ता अपनाते हैं। इस क्रिया में साल का पत्ता तथा अरवा चावल और कभी–कभी मुर्गी, उसके बच्चे अथवा बकरा भी काम में लाये जाते हैं। चोरी अथवा किसी गायब व्यक्ति का पता लगाने के लिए ''डलिया'' देखा जाता है अथवा ''सगुन'' किया जाता है। ''डलिया'' देखने के लिए गुणी अथवा ओझा साल का पत्ता, अरवा चावल तथा सवा रूपया लेता है। सबके सामने ही ओझा सखुवा के पत्ते में अरवा चावल रखता है और मंत्र पढ़ता जाता है तथा साथ ही चावल को अपने दाहिने हाथ से धीरे–धीरे रगड़ता जाता है। कुछ समय के पश्चात् उसे सारी बातें मालूम हो जाती है और वह सब कुछ बताने लगता है। चोरी के मामले में वह अगर चोर का नाम लेना नहीं चाहे तब वह मकान के स्वरूप, मकान के दरवाजे किस ओर हैं, मकान खपड़े से अथवा किसी और चीज से बनाया गया है, चोर का रंग–रूप, कद, उसके बाल–बच्चे कितने हैं, बतला देता है। ओझा यह भी बताता है कि क्या चोरी की चींज मिलेगी अथवा वह बेच दी गयी है।

खोये हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में भी इसी विधि से ओझा बताता है। रोग का भी पता लगाने में इस विधि को काम में लाया जाता है, किन्तु यह विधि रोग के मामले में काम आती है।

''सगुन'' देखने में उपर्युक्त विधि की आवश्यकता नहीं होती है। सगुन देखने वाले जमीन पर ही चित्र बना कर अथवा अँगुलियों की गणना कर लेती है। वास्तव में इसे ''सगुन करना'' कहा जाता है। मैंने स्वयं अपने ही एक सम्बन्धी के पुत्र, जो बिना सूचना के एकाएक घर से चला गया था, कि स्थिति की जानकारी प्राप्त करने

के लिए एक वृद्धा से सगुन कराया था। गाँव की यह महिला हनुमान भक्त है। वह प्रातः को ही मेरे अपने अपने गाँव के मकान में बुलवाने पर आयी। उसको मैंने बताया कि अमुक नाम का लड़का बिना सूचना दिए ही कहीं चला गया है, उसका कोई सुराग नही मिल रहा है। मैंने उससे पूछा कि क्या यह लौट आयेगा ?

उक्त वृद्धा ने जमीन पर कुछ रेखायें खींची, मंत्र पढ़े तथा बड़े ही प्रसन्न मुद्रा में बताया कि लड़का सुरक्षित है किन्तु उसे कुछ कठिनाईयाँ हो रही है। वह चौबीस से छत्तीस घंटों के अन्दर घर लौट आयेगा। वह शहर से पूर्व की ओर गया है। चिंता की कोई बात नहीं। वह अपने मित्र के साथ रेल पर सवार हो कर गया है, पैसे नहीं होने के कारण वह प्रशासनिक कठिनाई में फँस गया है। दूसरे दिन मैं गाँव से राँची वापस आयी और सीधे मैं अपने सम्बन्धी के घर पर गयी तो देखा कि वह लड़का मुझसे कुछ देर पहले कोलकाता से लौट आया था। पूछने पर पता चला कि टिकट नही होने के कारण उसे एक दिन रेलवे हाजत में रख छोड़ा गया था। इस घटना के कारण सगुन पर मेरा विश्वास जम गया।

शोध–कार्य के सिलसिले में हो–भाषी क्षेत्र के अनेक गुणियों, ओझाओं तथा सयानों से मिलने का अवसर मुझे मिला और इस क्रम में कई बातों का जानकारी मिली। गुणियों, ओझाओं आदि का कहना था कि उनके "गुरू" ने अनिष्ट कार्य नहीं करने के लिए उपदेश दिया है। किन्तु किसी एक के अनिष्ट करने से पूरे समाज को लाभ होता हो तो वे एक का अनिष्ट करने की छूट देते हैं। कल्याणकारी कार्य करने में उन्हें प्रसन्नता होती है।

"लोक मे यह दृढ़ विश्वास है कि तुल्य से तुल्य के प्रभावित होने का तात्पर्य यह है कि किसी आटे या मिट्टी के पुतले में सुई चुभोकर मनुष्य को मृत्यु में विश्वास करना। अंश से अंशी को प्रभावित करने का अर्थ है किसी के नाम, बाल, नाखून या वस्त्र आदि से उस व्यक्ति को प्रभावित करना। वे दोनों प्रकार के परिणाम टोटके हैं।"

"जैन तंत्र साधना महावीर के युग (ईसा पूर्व छठी शताब्दी) से ही प्रारम्भ हो गयी थी। महावीर के निर्देश पर ही गौशालक ने "तेजोलेश्या" विद्या की सिद्धि की थी। इस साधना में निर्निमेश दृष्टि से सूर्य की ओर अनवरत देखा जाता है तथा साथ में मंत्र का जाप भी करना होता है। गोशालक ने इस साधना के सहारे लोगों में भय व्याप्त कर उन्हें अपना शिष्य बनाया तथा महावीर पर भी तेजोलाब्धि फेरी। महावीर को रक्त–विकार हो गया था।"

"उत्तरवर्ती जैनाचार्य ने तंत्र को बहुत विकसित किया "ह्रींकर" की साधना से अनेक सिद्धियों की चर्चा की गयी है। जैनों के "ह्रीं" शब्द में 24 तीर्थंकरों तथा शासन देवियों का निवास रहता है। जैनियों के मंत्रों को यंत्र में संयोजित करने की कला प्रख्यात है। ऋषि मंडल, स्तोत्र, उबसागर स्तोत्र की साधना अतीव प्रभावकारी है। ऋषि मंडल का मूल मंत्र इस प्रकार है।

"ऊँ ह्रं ह्राँ ह्रीं ह्र ह्रत्रां ह्रत्री ह्रत्रुं ह्रत्रू ह्रूत्रै ह्रूत्रों अ सि आ उ"
सा सभ्यग ज्ञान दर्शन चारित्रेभ्यो ह्रत्रीं नमः।।"

इस मंत्र की सिद्धि आठ महीने की अनवरत साधना से होती है। वह साधक साक्षात् सिद्धियों का अधिष्ठाता बन जाता है। किन्तु यह विद्या अत्यन्त गोपनीय है, जैसा कि निर्देश भी है –

इदं स्त्रोत्रं महास्तोत्रं न देयं यस्त कस्यचित्।
मिश्यान्त वासिने दत्ते बाल हत्या पदे पदे।।

(यह तंत्र स्तोत्र महास्तोत्र है जिस किसी को नहीं देना चाहिए क्योंकि मिथ्यात्वी (अयोग्य) को देने पर कदम–कदम पर बालकों की हत्या का खतरा रहता है।)

फिलिप रासन ने तंत्र को धर्म के अन्तर्गत न मानकर तंत्र का बाह्य रूप ही प्रस्तुत किया है। तंत्र धर्म की ही एक कड़ी है। वस्तुतः कतिपय सिद्ध तांत्रिक संत ही तंत्र के पारिभाषिक शब्दों के अर्थ समझ सके हैं। उसके लिए तंत्र सर्वोपरि है क्योंकि तंत्र सिद्धि के लिए हठयोग, राजयोग, कुंडलिनी योग, ध्यान समाधि आदि योगों से गुजरना पड़ता है। तंत्र परम तत्व में प्रवेश कराने की एक विद्या है और सर्वोत्तम विद्या है।''

यह सही है कि तंत्र से अनिष्ट की संभावना रहती है, चूँकि इस विद्या में मारण, स्तंभन, उच्चाटन, सम्मोहन आदि सिद्धियों का भी समावेश है। यही कारण है कि इस विद्या को गुप्त रखा जाता है। तंत्र का ऐहिक सुखों के लिए प्रयोग किया जाता है, इससे व्याधियों (भूत–प्रेत बाधा सहित) का निवारण, असमय में वृक्षों का फल–फूल खिलाना, किसी के विचारों को रोक देना आदि कार्य किऐ जाते हैं।

**उच्चारण का फलाफल :**

यह सर्वविदित है कि मंत्र और उसके उच्चारण का फलाफल से सम्बन्ध है। मंत्र का उच्चारण सबसे अधिक महत्व रखता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है मंत्रों के पठन्–पाठन करते–करते उनके प्रति मोह ने यह रूप ग्रहण कर लिया है कि ऐसे शब्दों में स्वयं कोई प्रभाव आ जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र ने लिखा है –''मंत्र, शब्द के रूप में, परम्परा से प्राप्त हुआ है, इस प्रकार ''शब्द'' अंशरूप में हम उसके अंशी, अपने पूर्वजों की परम्परा को प्राप्त करते हैं। अशुद्ध उच्चारण वर्जन व टैबू है। अशुद्ध उच्चारण से समस्त क्रिया की भ्रष्ट हो जाती है और वह पूर्वज–प्राप्ति नहीं हो सकती है, जो हमें सुरक्षित रखती है, फलतः नाश अवश्यम्भावी हैं।''

इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि मंत्र, शब्द का उच्चारण हम सविधि करेंगे तो उनसे अवश्य फल मिलेंगे। यही कारण है कि वैदिक कर्मकाण्ड में विधि पर बहुत बल दिया गया है। वैदिक यज्ञ, धर्म, अर्थ काम, मोक्ष के लिये किये जाते थे। इस प्रकार मंत्र, अनुष्ठान, टोने के एक आवश्यक अंग थे। मंत्र के सही उपयोग तथा शुद्ध उच्चारण से धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष चारों पदार्थों की उपलब्धि हो जाती थी।

**टोने–टोटके :**

हो भाषी क्षेत्र प्रारम्भ से ही पिछड़ा क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में विकास की गति भी बड़ी धीमी रही है। वनों के बीच रहने वालों की जीवन–पद्धति भी अन्य क्षेत्रों

से अलग रही है। वनों में टोने–टोटके तथा जड़ी–बूटी ही इनकी चिकित्सा के साध न थे। इस क्षेत्र में तब न तो कोई चिकित्सक था और न ही कोई शिक्षित वैध ही। प्रकृति ने विभिन्न बीमारियों के निदान के उपाय का प्रबन्ध भी वनों में प्राप्त होने वाले कुद–मूल, फल–पत्तियों पर ही निर्भर रहते थे। इस क्रम में उन्हें जड़ी–बूटी के प्रभाव तथा गुणों का भी आभास हुआ होगा और जड़ी–बूटियाँ समय के साथ एक प्रभावी औषधियों के रूप में लोगों के सामने आयी होगी। विभिन्न बीमारियों के निदान के लिए टोने–टोटके के रूप में जड़ी को पीस कर पिलाने अथवा उसे गले में बाँध कर रखने की परम्परा चली होगी, जो परम्परा आज भी इस क्षेत्र में प्रचलित है। उसी समय शिव भक्तों ने शिव की उपासना की होगी और अपने ही शब्दों को जोड़कर मंत्रों का निर्माण किया होगा। मंत्रों से सिद्धियाँ मिली होगी, जो टोना–टोटका आगे चलकर माध्यम बन गयी। इसी टोना–टोटका की परम्परा अब भी, जब कि इस वैज्ञानिक युग में कितने ही साध्य औषधियाँ निकल चुकी है, लोग पूर्वजों से प्राप्त उसी पुरानी पद्धति से प्राप्त असाध्य रोगों का भी जड़ी–बूटी, टोना–टोटका अथवा मती–ओझा से ही उपचार करने में विश्वास करते हैं। बीमार के स्वस्थ्य हो जाने पर टोना–टोटका करने वालों की समाज में और अधिक प्रतिष्ठा होने लगती है।

इस क्षेत्र के लोगों का विश्वास है कि कोई भी कष्ट, विपत्ति, बीमारी अथवा सुख, देवी–देवता के प्रकोप तथा प्रसन्नता का फल होता है। यदि दुःख है तो देवता अन्य किसी अमानवीय शक्ति को प्रसन्न करने से ही दूर होता है और सुख के लिए उसे पत्र–पुष्प आदि अर्पण करने पड़ते हैं, जिससे वह सदा अपनी प्रसन्नता बनाये रखें।

**हो मंत्र या टोटका :**

सिरमारेन सिंहबोंगा आबेन तारेञ हरिगोआरी ताना चि आले ओवाःअः रेन मानवी जीवान एसु पुरा चेनटा, हिसा, ईर्ष्या, नोजोर ते दुःखु को ऐमालेताना ऐना को दूरे बेन ओण्डो नेन हासु–दुःखु, लोःलो, बलबल कोदो आको तातेगे बियुर रूआः सेकोर उराई बेन। सबिनगे बुरू–बोंगा, देशाउलि, नागे एरा, बिन्दी ऐरा, हाम हो–दुम होको मिड् केनेते नेन हासु–दुःखु को दोबु दरोम उराया। नेन मानमी जीबोन लोःलो तान – बलबल ताना को बुगीते राँसा–रासिका तेको टाईन का। जाईरेयो हिंसा / चेनटा / चाड़ोन / टोटका / नजर तानीःई आय तातेगे बियुर उरा सेकोर उरान काः। मेड् कोय अन्धाओः काय, काटा कोय लंगड़ाओकाय, गुरीःई दुबी कोरे तेगा डोबीई में, समुद्र कोरे उदुर चाबुड़ाई में, आतुई में, दोरेया कोरे चाबुड़ाई में, जीबोन रे सुखु अलोकाये नामे, लोःलो हासुको आयेताःअःतेगे बियुर उरा सेकोर उरानका।

हे ! सिरमारे सिंगबोंगा अलींञा हरिगोहारी ते नेन रूपेश कुंकल अः जीवोन राँसाते टाईयोका। रीः उधार केनतेञ एमापेए तना बुगीन–बुगीन नाईकी को लाँदा इनुञ, बाःकाः इनुञ, दुराँग इनुञ तनको सबजोम, दाण्डे जोम में नेन रूपेश कुंकल अः मानमी जीबोन दो आअः ताई बागे ताईमें लार जी लार होमो काय। आयर

चिलिकाय इनुंञ तान लेकागे इनुञ जोम, पढ़ाओ जोम, पाइटी जोम लान्दा जोमकाय।

**—: श्री बीर सिंह कुंकल के रिसर्च से प्राप्त हुआ है :—**

हो भाषी क्षेत्र का लोकमानस धर्मभीरू, सरल, अविकसित तथा अनभिज्ञ अन्तरमन है, जो उसे समाज, बड़ों तथा अपनी भावनाओं से विरासत के रूप में मिला है। उनकी भावना तथा सीमित ज्ञान इन संस्कारों को तोड़ नहीं पाता। यह लोकविश्वासों का ही अभिन्न व्यावहारिक पक्ष है, जिसमें विधि निषेध पर विशेष ध्यान दिया जाता है और बीच में "टोकने" से उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। टोने–टोटके का टोकने से विरोध किया जाता है। टोकने के भय के कारण ही यह एकान्त में किया जाता है। हो भाषी क्षेत्र के साधनहीन तथा सरल मानव इसे अपने विश्वास से लगातार सोच रहे हैं। इसका कोई इतिहास नहीं मिलता। इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह आर्यकालीन नहीं है, चूँकि वेदों तथा शास्त्रों में इस प्रकार के उदाहरण नहीं मिलते। टोने–टोटके तांत्रिक पद्धति के अधिक निकट हैं। इनकी उत्पत्ति भी उसी काल में हुई होगी, जैसा कि श्री जनार्दन मुक्तिदूत के इस कथन से स्पष्ट होता है –"इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति का एकदम ठीक–ठीक अन्दाज लगाना जरा कठिन है फिर भी मोटे तौर पर हमें दोनों शब्दों का प्रचलन वेदों के अप्रचार और पुराणों की प्रतिष्ठा के कई शताब्दी पश्चात् मंत्र युग में ही मिलता है। अथर्ववेद में वर्णित मंत्र–शास्त्र जिनमें यांत्रिक तथा केवल वैज्ञानिक दोनों ही प्रकार के तंत्र हैं, धीरे–धीरे भूला जाने लगा और मंत्रशास्त्र के नाम पर जो कुछ पुराण तथा परवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध था, उसे एकमात्र शास्त्रीय मान कर मंत्रशास्त्र के नाम पर अनेक लाभदायक तथा हानिप्रद प्रयोग चल पड़े। कालान्तर में इन्हीं प्रयोगों की उनकी उपयोगिता के आधार पर टोटका नाम पड़ा।"

तांत्रिकों में जातिवादी प्रवृत्ति की झलक मिलती है। तांत्रिकों ने ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित प्रत्येक सिद्धान्त के विरूद्ध तीव्र घृणा प्रकट की थी। अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मणवाद के विरूद्ध सर्वथा विपरीत मार्ग को स्वीकार किया था। इसी को तंत्र में वाममार्ग कहा जाता है। "तुम जो कुछ कर रहे हो, हम उसके विपरीत करेंगे। इससे तांत्रिकों में असामाजिक घोर कृत्यों का विधान हुआ। किन्तु इन सबको स्वीकार करने और "बाम" व्यवहार के प्रचार का उद्देश्य ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह ही था, जिसने चरम सीमा तक पहुँच कर अत्यधिक रहस्यवादी व भ्रष्ट रूप धारण कर लिया।"

तंत्र विद्या के अध्ययन से पता चलता है कि रामायण युग से पूर्व उत्तर वैदिक काल में नरबलि का प्रचलन था। ऐतरेय ब्राह्मण में "गुनःशेप" की कथा में इसका उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्ध में श्री हीरालाल शुक्ला ने लिखा है –शाक्त या तांत्रिक प्राचीन काल में नरमांस का भक्षण करते थे। तांत्रिक पूजा के अवसरों पर नरभक्त रक्त पान उनके लिए परम पुनीत माना जाता था।"

"गोड़ों में देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नरबलि की कुप्रथा आज भी विद्यमान है। युद्ध के अपराधियों व बन्दियों अथवा यदा–कदा भोले–भाले व्यक्तियों

को पकड़ कर ये लोग देवी के सम्मुख उनकी बलि देते हैं। इस जनजाति के राजा में भी वही कुप्रथा प्रचलित रही है, जिसके अनुसार अपराधी को इष्ट देवता के सम्मुख नतमस्तक होने को कहा जाता था तथा वह सिर झुकाता था तो पीछे से वार करके उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया जाता।"

हो भाषी क्षेत्र में भी नरबलि प्रथा थी। देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नरबलि दी जाती थी। ग्रामीण क्षेत्रों के वृद्धों ने बताया कि यह प्रथा आदिम युग से चली आ रही थी। गर्मी के दिनों में कुछ लोग, जो देवी–देवताओं को प्रसन्न करना चाहते थे। अनजान व्यक्ति को वन अथवा सुनसान स्थान पर पकड़ कर बलि दे दिया करते थे। यह कार्य मुख्यतः गर्मी के दिनों में होता था। आज भी नरबलि देने की चर्चा कभी–कभी सुनायी पड़ जाती है। नरबलि देने वालों को "ओटंगार" कहा जाता है।

नागपुरी समाज में इसे ओड़का या ओटंगा अथवा नसकटवा कहा जाता है। विशेषकर धान बोने के पहले नरबलि देकर उसके रक्त को धान के बीज में मिलाकर बोने से अधिक उपज होती है, ऐसी मान्यता थी। धानामुंजी खूँटी के एक गाँव की घटना का उल्लेख करना यहाँ समुचित होगा। गाँव का जमींदार एक बड़े बाँध के लिए नरबलि देना चाहता था। जमींदार ने घर की धंगरिन (नौकरानी) को जमींदारिन के सारे गहने पहनाकर बाँध स्थल पर टोकरी में भोजन पहुँचाने के लिए कहा। जमींदारिन सोची कि धंगरिन को सारे गहने पहनाकर भोजन देकर भेज दूँ और वह भाग गई तो सारे गहने मेरे जाते रहेंगे। यह सोचकर स्वयं ही भोजन लेकर चली गयी बाँध स्थल पर। लोगों ने सोचा धंगरिन है और उसकी बलि दे दी। और ऊपर से मिट्टी डाल दिया। घर लौटने पर धंगरिन को देख और जमींदारिन को न पाकर जमींदार समझ गया कि क्या हुआ। डर के मारे जमींदार गाँव छोड़कर दूसरे जगह जा बसा। *(गिरिराज के साक्षात्कार से)*

एक और घटना। एक नौजवान महिला अपने छोटे बच्चे को पीठ में बेतरा (बाँध) कर जंगल में पत्ती तोड़ रही थी। अकेली महिला देख कर ओंडकर बलुआ ले कर आ गया। महिला समझ गयी यह ओंडका है। मुझे अब काट देगा (नरबलि के लिए)। वह बोली अब तो तुम जो करना है वह तो करोगे ही। थोड़ा ठहरो बच्चा भूखा है, दूध पिला लेती हूँ और बच्चे को दूध पिलाने लगी। दूध पिलाते–पिलाते अपने बाल के खोपा (जूड़े) में खुँसे खोंगसो (Hairpin), जिसमें ऊपर सिक्के जड़े होते थे, सिर खुजलाते–खुजलाते हाथ में ले ली। ओंडका का ध्यान जैसे ही दूसरी ओर गया कि जल्दी से ओंडका की दोनों आँखों को जोब (चुभो) दी। उसकी दोनों आँखें फूट गई और वह वहाँ से भाग गई। इस तरह उस बहादुर महिला ने अपने आभूषण खोंगसो, जो चाँदी के काँटी की तरह नुकीले होते हैं, उसका उपयोग हथियार के रूप में कर के अपनी सुरक्षा कर ली। *(गिरिराज की दादी से सुनी घटना)*

ओझाओं को मंत्रों के उच्चारण में भारी सचेष्ट रहना पड़ता है अथवा उन्हें उल्टे कष्ट का सहन करना पड़ता है। कल्याण करने वाले गुणी, ओझा, नागमतिया तथा

शुद्ध मती के जानकार तो अपने मंत्र तथा गुणी होने की बात सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं तथा सिद्धि प्राप्ति की बात भी मान लेते हैं, किन्तु अनिष्टकारी तत्व – डायन, बिसाहा आदि न तो अपने मंत्र ही बताते हैं और न ही सिद्धि प्राप्त करने की बात ही स्वीकार करते हैं। ये किसी भी कार्य की विधि नहीं बताते।

मुझे बताया गया कि डायन श्मशान में जाकर अथवा कार्तिक अमावस्या की रात में अपने ही घर में सिद्धि कर लेती हैं। यह सिद्धि बड़ी कठोर होती है। ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि इस विनाशकारी (काला टोना) सिद्धि के लिए अपने प्यारे पुत्र–पुत्री अथवा स्वजनों की भी बलि देनी पड़ती है। ऐसा ग्रामीणों का विश्वास है कि "डायन" जीवित बच्चे की कलेजी निकाल लेती है, फलस्वरूप बच्चे की तत्काल मृत्यु हो जाती है। नागपुरी में इस संबंध में एक कहावत है जब कोई महिला डायन विद्या सीख लेती है तो गुरू दक्षिणा में उसे पति या संतान में से किसी एक को देना पड़ता है। तब गुरू पूछता है डायन विद्या सीखने वाली से कि "माँग देबे कि कोख देबे।" *(गिरिराज के साक्षात्कार से)*

मुझे अपने ही गाँव के वृद्ध व्यक्तियों ने अपने ही गाँव की एक डायन का ही माँस नोच–नोचकर खाती थी, घर के अन्दर ही बन्द रहा करती थी, के संबंध में बताया कि एक छोटी बच्ची को "डायन" ने अपने मारण मंत्र से मार दिया। उस बच्ची को गाँव के निकट ही विशेषतः बच्चों के लिए अलग से बने कब्रिस्तान (जिसे गाँव वाले बच्चा तोपवा) कहते हैं, में गाड़ दिया गया। बच्चे की मृत्यु अमावस्या की संध्या में हुई थी। ग्रामीणों को पूर्णतया सन्देह था कि बच्चे को किसी "डायन" ने मारा है, इसलिए गाँव के कुछ साहसी युवकों का एक दल अर्द्धरात्रि के कुछ पूर्व कब्र के निकट के एक आम के वृक्ष पर जा बैठा। उनका विश्वास था कि "डायन" अवश्य ही उस बच्चे को जीवित करेगी और सिद्धि प्राप्त करेगी।

लगभग आधी रात को एक महिला दबे पाँव उस कब्र की ओर आ रही है, यह उन्हें आभास मिला। कुछ समय बाद वह महिला उसी स्थान पर पहुँची, जहाँ बच्चे को दफनाया गया था। बहुत ही अल्प समय के लिए एक दीपक वहाँ जला। इसी बीच युवकों ने देखा कि वह महिला निर्वस्त्र है और उसने बच्चे को अपनी गोद में ले रखा है। उसके बाल खुले हुए थे। वह बच्चे को गोद में लिए ही नाच भी रही है। फिर दीपक बुझ गया। कुछ समय बाद "डायन" भी चली गयी थी। युवक इतने भयभीत थे कि उन्हें वृक्ष से उतरने का भी साहस नहीं हो रहा था। फिर बताया गया कि दूसरे दिन गाँव में पंचायत बैठायी गयी। उस महिला को बुलाया गया। उसे सर्वसम्मति से आर्थिक तथा सामाजिक बहिष्कार का दण्ड दिया गया। इसी प्रकार की चर्चा मुझे अन्य कई गाँवों में सुनने को मिली। रोग की जानकारी के लिए की जाने वाली विधि :–

रोगों की जानकारी प्राप्त करने के पूर्व ओझा, गुणी आदि अलग–अलग कई प्रकार की विधियाँ अपनाते हैं। कोई अरवा चावल सूप पर अथवा साल के पत्ते पर रखकर बायें हाथ से चावल को मंत्र के साथ रगड़ कर, कुछ गुलैची अथवा अन्य किसी पाँच सफेद फूल से अथवा दीपक जलाकर मंत्र पढ़ते हुए रोग का पता लगाते हैं। जब रोगों

के कारण की जानकारी उन्हें हो जाती है तब ही आगे की कार्रवाई वे करते हैं। कुछ मती, ओझा, सोखा नामटिपी होते हैं, अर्थात् डायन–बिसाहा का नाम लेकर बताते हैं, तो कुछ संकेत या लक्षण से। कुछ ओझा रजिस्टर्ड होते हैं, जिसे कानून भी मान्यता देता था, ऐसा अंगरेजी शासन के समय होता था, सुना गया है।

शुद्ध मती के जानकार ओझा किसी गम्भीर रोग अथवा भूत–प्रेत की छाया लग जाने की बात को लेकर उसकी सही जानकारी के लिए अपनी अलग विधि अपनाते हैं। एक विधि का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। यह विधि हो भाषी क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित है।

नये अथवा पुराने कपड़े की एक मोटी सी बत्ती बना कर मिट्टी के दीपक में जटंगी के तेल से जलाया जाता है। इसके बाद दीपक को बाँधा जाता है, जिससे अन्य कोई विरोधी गुणी काम में बाधा उत्पन्न नहीं करे। इसके बाद ओझा मंत्र पढ़ता है और तब रोग की गंभीरता के अनुसार मुर्गी (मुख्य रूप से काली मुर्गी), बकरा (काला) अथवा चेंगना को पूजा के लिए रख अरवा चावल को खिलाया जाता है। अगर वह चावल खा लिया तब तो ओझा घोषण कर देता है कि काम बन जायेगा अन्यथा बार–बार मंत्र पढ़ता है और उसे खिलाने की चेष्टा करता है। यदि इसके बाद भी वह चावल नहीं खाये तो काम नहीं बनने की बात वह कह देता है।

काम ठीक–ठीक चला तो ओझा अपना मंत्र आगे बढ़ाता है और जब रोगी रोग मुक्त हो जाता है तब चराये गये बकरे अथवा मुर्गी को अंतिम दिन मंत्र के साथ काटता है। रोगी की ऊँचाई के बराबर चरखा से काता सूत लेता है। दीपक की बत्ती को साल के पत्ते में लपेटता है तथा किसी दूर की झाड़ी अथवा पहाड़ की तलहटी में ले जाकर जमीन के नीचे दबा देता है। वह साड़ी, जाकेट, चूड़ी, काजल, सिन्दूर, बारह प्रकार के लकड़ियों के टुकड़े, 12 प्रकार के फूल, खपड़े में आग–धूप–धूवन आदि लेकर दो सीमाने के चौराहे पर फेंक आता है। यह काम रात्रि में होता है। जिस समय ओझा इन सामानों को लेकर निकलता है उस समय तुरन्त ही घर के दरवाजे बन्द कर दिये जाते हैं। ग्रामीणों का विश्वास है कि अगर दरवाजे खुले रहे तो भूत–प्रेत पुनः घर में लौट सकते हैं। नागपुरी समाज में भी डायन–बिसाहा के संबंध में ये सारी बातें बतायी जाती हैं, जो हो समाज में प्रचलित है। – गिरिराज के साक्षात्कार से।

**विष उतारने के मंत्र :**

हो भाषी क्षेत्र में जंगल, पहाड़ और नदियाँ बहुत अधिक हैं और इन्हीं के बीच लोगों को रहना और काम करना पड़ता है। यहाँ विषैले जानवर तथा विभिन्न प्रकार के जन्तु होते हैं जो किसी को भी काट सकते हैं। अतः विष उतारने वाले गुणी तथा भगत भी अनेक मिलते हैं। लोगों को वनों और खतरनाक स्थानों से गुजरना पड़ता है। ऐसे समय में अकेले चलने में लोगों का भयभीत होना लाजिमी होता है। भय के निवारण के लिए राह चलने वाले ईश्वर का ध्यान करते हैं और मंत्र से अपनी देह/शरीर को बाँधते हैं। ग्रामीणों का कहना है कि ऐसा कर लेने से भय जाता रहता है तथा भूत–प्रेत भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

**1. (होरा सेन रेयाः हो मन्तर) – रास्ता तय करने वाला मंत्र :** होरोगोछो डमरू, तुई मुड़ी मुई बाई, एकागोरे ताइ, पोड़ा रे डाइन, पोड़ारे जुगनी, पोड़ारे हिंसा, पोड़ारे बादी, पोड़ारे छाड़ोन, पोड़ारे सिंगार, पोड़ारे नोजोर, पोड़ा ना पोड़ा हुनू हुँग कर पोड़ा।

हिन्दी अनुवाद : हे ! रक्षक पेड़ तुम इसे अपने सिर में धारण कीजिए। एकाएक डाईन मंत्र, ईर्ष्या, बुरी नजर, छोड़कर चले जाओ, इसी पेड़ में समाहित हो जाओ।

**2. ओवाअः बेटायानरे कटाव उरा हो मंत्र (घर पहुँचने के पश्चात हरने वाला मंत्र) :** घाट काटे, गाटोवाल काटे काटी ला हारसी को बुडगुनियान को ज्ञान काटे, दाऊ देवता को ज्ञान काटे, हिस्सा तिरसा को ज्ञान काटे, डाईन जुगनी को ज्ञान काटे, बुत पिरोत को ज्ञान काटे, चाड़ोन सिंगार को ज्ञान काटे, किय काटे गुरू काटे, गुरू आईगे मुई काटे एइसोर बोड़ो बीर माँ बीर आईगें रे, ऊईज्ञान काटे।

हिन्दी अनुवाद : रास्ता वाट–घाट में, गुणीमंत्र के विशिष्ट ज्ञान में, विघ्न देवता के ज्ञान में, ईर्ष्या में, डाईन मंत्र में, प्रेत आत्मा में सबके ज्ञान को हरने वाली विनाशकारिणी माँ तुम बड़ी सामार्थी शक्तिशाली हो जिससे तुम हरती हो।

**हो मंत्र :**

सिरमा रे सिंगबोंगा
ओते दिसुम गोमके
होयो लेका सएका
दः लेका सपा
दक् दिरि रे सम्
जिय–जोन्तु रे सम्
नेल् उरूम् बनोः अले
होयो लेका सएका अम्।।
ए सिंगबोंगा
जोअर तना ले
बिनती तना ले
गोआरि तना ले
जिव–जन्तु तन
मनोआ तन
अयुम् लेमे
सिरमा रेन सिंगबोंगा
ओते दिसुम गोमके
एंगा–आपु अमगे तना।।
होरो तले में, जंगि तले में
उरूम तलेम् केजा तले में
लुकु हड़म होन् लुकुमि बुड़ि होन
पिलचु हड़म् होन, पिलचू बूड़ि होन्

अदम् हड़म होन, ह्व्वा बुड़ि होन्।
मुनु कड़ो रे, दः दिसुम रे
बिर–दरू, बिर तसड् कोरे
मनोअ जियु–जोन्तु, उपन–जपन कोरे
लेन्डड किन्न जोम् बुरू रे
कट्टकोम लोटोङ जाम्बु डिपा रे
जोनोम् लेन् मरं लेन मरं बुरू
रो हसा रे, अदम् बगान रे
दरू लेना, मरं लेन हब्बा।
इआ दोरेआ तला, इआ बन्देला तना
एन् होन्को, एन जिउको
नितिर लेन पसिर लेन
एड़ए बा दिसुम् रे
जोहार
जोहार
जोहार तञ् सिंगबोंगा।।

**ऊँ सरस्वती**

देवी सरस्वती विधा एमतानी,
सनाम विधा बुद्धि आदानी।
जोहारम तानांञ जोड़ातीड़ी,
सबानाम किताब पोथी तीड़ी।।
हंडस दोयारे दुबाकानी,
बीणा वानाम साबानी।
मागो रांसातिय मे मागो,
हुजआकानांय शरण अमागो।।
दुबाकान्ते अमा काटा सुबा,
एंडातांय मेगा अज्ञान चुवा।
दुरांग पोथी नेएयं ओले ताना,
अमा समानांग नेएम नेलेताना।।

**देह/शरीर बाँधने का मंत्र :**

**1. हो :**

**मन ते केड़ेन में/पेयन में**

दूत–भूत कोवा उम्बुलेते केड़ेन में/पेयन में
लेंगा पारे नरसिंह ओण्डोः मंडी पारे हनुमान
चनाप पारे काली माँ ओण्डोः आयर पारेवो काली माँ
चिमिन दुनाःम पढ़ावेआः इमिन दुनाम पासोया
इमिन दुना गुण नेम दुरांगेया नरसिंहः।

**हिन्दी अनुवाद :**

कठोर से कठोर बनो
दूत–भूत की छाया के लिए अपने शरीर को कठोर करो
बाँयी ओर नरसिंह तो दाहिनी ओर हनुमान
पीछे की ओर भैरो तो आगे की ओर काली
जितनी बार पढ़ो उतनी बार सफलता
उतनी बार गुणगान करो नरसिंह की।
(विधि – इस मंत्र को तीन बार पढ़ कर तीन ताली मारें।)

**2. हो –**

ओम नमः हनुमान दिल रेया ओवा रे केड़ेएन में।
एनतारे अबुआ जीवोन बचाओः
ईश्वर ब्रह्माःअः चाभी तनाए।
नेन होमोः रेया आत्मा रे
बीर होरो तानीःई हनुमान मेनायीअः।

**हिन्दी अनुवाद :**

ओम नमः हनुमान कठोरता की कोठी
जिसमें हमारे प्राण बसते हैं
ईश्वर ब्रह्मा की कुँजी है
इस शरीर रूपी पिण्ड का
वीर रखवाला हनुमान है।
(विधि–इस मंत्र को तीन बार पढ़ें तथा अपनी छाती को एक बार फूँके।)

अनजाने यदि किसी व्यक्ति को किसी जहरीले जन्तु ने काट लिया हो और वह व्यक्ति अचेतावस्था में पड़ा हुआ हो और अगर किसी गुणी अथवा भगत (नगमतिया जानने वाला) को विष उतारने के लिए बुलाया गया हो तब सबसे पहले वह यह ज्ञात करेगा कि किस जन्तु ने काटा है। इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए वह इस मंत्र का पाठ करता है –

(विधि–जिस व्यक्ति को जन्तु ने काटा है उसे गुणी अपने सामने बैठा लेता है और अपने दाहिने हाथ को जमीन पर रख कर मंत्र का पाठ करता है। अगर साँप ने काटा होगा तब गुणी का हाथ स्वतः ही खिसकता हुआ उस व्यक्ति के शरीर पर चढ़ने लग जायेगा। अगर ऐसा नहीं हो तब यह समझा जाता है कि उसे किसी अन्य जन्तु ने काटा है।)

जब गुणी को पूर्ण विश्वास हो जाता है तब ही वह साँप का विष उतारने के लिए मंत्र का पाठ करना प्रारम्भ करता है। लेकिन इसके पूर्व वह यह भी जान लेगा कि किस विषैले साँप ने काटा है। इसका पता लगाने के लिए निम्नलिखित मंत्र का पाठ करता है –

**3. हो :**

स्वर्ग तेबुआ पताल तेबुआ हापा धर्म तेबुआ पाइटी
दोलाबु सिकामनी दोलाबु पताल बासुकी
दोलाबु – दोलाबु
शंकर नाथ लेका बुगीन सम्भाल ते
तीः काये साबे रे लेंगा–मंडी ते सेनोःअः गुरू
अञः बन्धा जपा–जपा रे
बामेः मयोमे जोमे राँसा ते काजी इडेया।

**हिन्दी अनुवाद :**

स्वर्ग चले पताल चले शिथिल धर्म चले कर्म
चले सिकामनी चले पताल बासुकी चले–चले
शंकर नाथ जैसे अच्छा सँवरता है
हाथ चले नहीं सँवरता बाँये दाहिने चले गुरू
मेरे बाँध के आसपास
ब्राह्मण रक्त खाय कुशल से कहते चले।

(विधि–जमीन पर सभी साँपों का नाम लिख लें। जहाँ नाम लिखा गया हो वहीं जमीन पर अपना दाहिना हाथ रखकर उपर्युक्त मंत्र को पढ़ें। मंत्र पढ़ते समय जिस साँप ने काटा है हाथ स्वतः ही खिसकता हुआ उसी नाम पर जा कर रूक जाएगा।)

अगर किसी व्यक्ति को विषैला साँप काट ले और साँप का विष उतारने वाला काफी दूर में रहता है तथा उसके आने में समय लग सकता हो तब ऐसे समय में वह साँप के विष को शरीर में और फैलने से रोकने के लिए नीचे के मंत्र को 3 बार पढ़ कर अपने कपड़े में गाँठ बाँध लेने का रिवाज है। इस क्रिया से साँप का विष शरीर में नहीं फैल सकता है।

**4. हो :**

हो ऐन पारोम रे धोबा एरा लिजःए तापाताना
होरा नामते विष हतोमेना।
धोबा एरा अम गुरू
अमःअ चेला मेनञा। लाँगा रे तोल रिकाञ में
होमोः गोजो तेया विष।

**हिन्दी अनुवाद :**

उस पार धोबिन कपड़ा धोती है
रास्ता मिलते जहर तिरोहित। धोबिन तुम गुरू
तुम्हारा शिष्य हूँ। आँचल में बाँध रखो
शरीर काल कूट जहर।

साँप का विष उतारने का मंत्र बहुत लम्बा है। इस मंत्र में मनुष्य के शरीर के एक–एक अंग का नाम लिया जाता है। मनुष्य के सिर से पैर के नाखून तक का विष उतारा जाता है और फिर उसे विभिन्न रास्तों से गुजारते हुए समुद्र में ले

जाकर डुबो दिया जाता है। पूरा मंत्र परिशिष्ट में दिया जा रहा है। यहाँ उदाहरण के रूप में मंत्र का एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है –

5. हो :

पाण्डु नागु रे पाण्डु नागु – 2
अमाः ओवा रे चंदन रेया दुवार मेनाअः।
अमाः ओवारे दारू रेया दुवार मेनाअः।
चिमिन सुन्दरा मेनाअः चिमिन सुन्दरा मेनाअः
ऐन ओवाः दो निदिर को जोम केडा
ची ऐन ओवा दो हासा जोम केडा
पाण्डु नागु रे पाण्डु नागु –2
अमाः ओवा रे चंदन रेया दुवार मेनाअः
चिमिन सुन्दर मेनाअः चिमिन सुन्दर मेनाअः
ऐन ओवाः दो निदिर को जोम केडा
ची ऐन ओवाः दो हासा जोम केडा।

**हिन्दी अनुवाद :**

नागिन रे नागिन – 2
तुम्हारे घर में चंदन के द्वार हैं
तुम्हारे घर में लकड़ी के द्वार हैं
कितना सुन्दर लगता है, कितना सुन्दर लगता है
उस घर को दीमक खा गया
किस उस घर को मिट्टी खा गया
नागिन रे नागिन – 2
तुम्हारे घर में चंदन के द्वार हैं
कितना सुन्दर लगता है कितना सुन्दर लगता है
उस घर को दीमक खा गया
कि उस घर को मिट्टी खा गया।

किसी गर्भवती महिला को पुत्र जनने में काफी कष्ट होता हो अथवा बच्चे की मृत्यु गर्भ में ही हो गयी हो तब महिला को राहत पहुँचाने तथा शीघ्र बच्चा पैदा होने के लिए गुणी इस मंत्र को पढ़ता है –

''ऊँ मंगमथ मंगमथ वाहनी लम्बोदर मूंच–मूंच स्वाहा''

(विधि–थोड़ा सा जल ले लें और उपर्युक्त मंत्र को सात बार पढ़ें तथा जच्चा को उस पानी को पिला दें। मृत बच्चा भी शीघ्र ही पैदा हो जाएगा।)

ग्रामीणों के घर में चोरी हो जाने पर पता लगाने तथा चोरी का सामान वापस लेने के लिए गुणी की सहायता ली जाती है। गुणी चोर का पता लगाने के लिए निम्नलिखित मंत्र को पढ़ता है –

**6. हो :**

हासा–हासा समुद्र हासा–हासा बजार हासा
कुंबुउ सबीमें तीः चिपुड रे
काली माँ उडुउयी में काली माँ।

**हिन्दी अनुवाद :**

धूल धूल पकड़ो धूल पंच में पहला
खेल धूल सागर धूल धूल नागर धूल
चोर को पकड़ो मुट्ठी में
काली की दुहाई काली के वर।

(विधि–गाँव अथवा आस–पास के गाँव के लोगों को एकत्र किया जाता है तथा एक दोना में ऊपर के मंत्र को 15 बार पढ़ कर सभी व्यक्तियों के हाथों दे दें और सब को मुट्ठी बन्द करने को कह दें। इसके बाद 108 बार फिर मंत्र को पढ़ें तब सबको मुट्ठी खोलने को कहें। सबकी मुट्ठी खुल जायेगी किन्तु जो चोर होगा उसकी मुट्ठी नहीं खुलेगी, जब तक वह सबके सामने चोरी करने की बात स्वीकार न कर ले।)

गाँव में आपसी दुश्मनी बड़ा ही कष्टदायक तथा भयंकर होती है। प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर लोग एक दूसरे की जान मार डालने को उतावले हो जाते हैं। गाँवों में प्रतिहिंसा के कारण ही लोग काला टोना का सहारा लेते हैं और इसके लिए काफी रकम भी खर्च कर डालते हैं। किसी की जान मार डालने के लिए गुणी इस मंत्र को पढ़ता है –

**7. हो :**

उटान में उटान में ससन अञः मूर्ति बाई केते
इनीअः होन उरूमी में
अमा माँ मिसी कुई अः उण्डी को।

**हिन्दी अनुवाद :**

जाग–जाग रे श्मशान मेरी मूर्ति करके
फलना के बेटा को जान
तेरी माँ बहन के तीन तेलाख"

(विधि – एक सूअर के दाँत को रविवार के दिन लेते जाकर श्मशान में जमीन के नीचे दबा दें और प्रति रात 108 बार मंत्र पढ़ें। एक महीना के बाद श्मशान देवी शत्रु के घर जा कर परिवार के लोगों को एक–एक कर मारना प्रारम्भ कर देगी। इस प्रेत बाधा को जब समाप्त करना हो तो दाँत को वहाँ से निकाल लें।)

मारण की तांत्रिक क्रियाओं में शत्रु अथवा प्रतिस्पर्धी की मिट्टी या लकड़ी की मूर्ति बनायी जाती है और उसे या तो जल में रख दिया जाता है अथवा जमीन में दबा दिया जाता है। जैसे–जैसे वह मूर्ति गलती जाती है, यह अपेक्षा की जाती है कि शत्रु की जीवन–शक्ति भी क्षीण होती जायेगी।

हो भाषी क्षेत्र में मूर्ति की छाती पर शत्रु का नाम, उसके पिता तथा गाँव का नाम लिख दिया जाता है। इसे ''शत्रु मारण मंत्र'' कहा जाता है।

सफेद कपड़े की एक मूर्ति (पुतला) बनायी जाती है। इस पुतले की छाती पर शत्रु का नाम, पिता तथा गाँव का नाम लिख कर रात में श्मशान में जमीन के नीचे गाड़ दिया जाता है। नाम लिखने में बकरा का खून तथा श्मशान के कोयले से स्याही बनायी जाती है तथा कौआ के पंख से लिखा जाता है। यह सारा काम दक्षिण मुँह बैठ कर किया जाता है। पुतला को श्मशान में गाड़ते समय मुँह दक्षिण की तरफ रखा जाता है। इसे मारण तंत्र कहा जाता है।

हो भाषी क्षेत्र में ''डायन–भूत'' का बहुत अधिक प्रकोप माना जाता है। अस्वाभाविक कृत्य को ''डायन–भूत'' की करतूत माना जाता है तथा गुणियों–भगतों द्वारा इस बाधा को दूर करने के लिए मंत्रों का सहारा लिया जाता है। गंभीर से गंभीर रोग को भी भूत–बाधा मानकर मंत्र–तंत्र का प्रयोग किया जाता है।

डायन–भूत की सही जानकारी के लिए ''जल दर्पण'' नामक मंत्र का पाठ किया जाता है। नीचे ''जल दर्पण'' मंत्र दिया जा रहा है –

**8. हो :**

मियाड पढ़ाओ एरे सेनेया बरिया पढ़ाओए रे
पाईटी का होबाना
अपिया पढ़ाओए रे अपिया कोना ओते
मोयाः पढ़ाओए रेमोया बोया को पाण्डव,
तुरूया पढ़ाओएरे गंगा सागर
आईयाः पढ़ाओएरे आईया सुप रावण, इरलेया
पढ़ाओएरे इरलेया पाण्डु नागु
गेलेया पढ़ाओएरे गेलेया कोना ओते ओण्डोः
बोंगा मेनायीअः।
कजि में बोंगा नुतुम डाइन ची योगनी ची भूत–प्रेत
बागे ताईमे–बागे ताईमे कृष्ण बागे ताईमे कामरूप कमाया
माँ अः हुक्म ते अन्जागे बागे ताईमे।''

**हिन्दी अनुवाद :**

एक पढ़ो चलन दो पढ़ो दो अचलन
तीन पढ़ो त्रिकोण पृथ्वी चार पढ़ो चतुर्भुज नारायण
पाँच पढ़ो पाँच भाई पाण्डव, छह पढ़ो गंगा सागर
सात पढ़ो सात स्कंध रावण, आठ पढ़ो आठ नाग
दस पढ़ो दस कोण पृथ्वी या देवता है
बोलो देव नाम डाइन कि योगिनी कि भूत प्रेत
छोड़ो–छोड़ो कृष्ण बोले जा रे कामरूप कमाख्या
माँ की आज्ञा को तुरंत छोड़ो।''

(विधि–एक काँसे की थाली में पानी भर दें और तुलसी की तीन पत्तिया डालकर 03 बार मंत्र पढ़ दें। रोगी को उस थाली के पानी में देखने को कहें। अगर डायन–भूत रोगी पर सवार होंगे तो रोगी को स्पष्ट दिखाई पड़ेगा।)

किसी के द्वारा अगर विष दिया गया हो तो इस मंत्र से विष की शक्ति को समाप्त किया जाता है –

**9. हो :**

बुगीन काजी आयुम नी समुद्र कुटीरे टाईन में
तोयोर उटा कायेते विष अतोम केते साफा केते होमोः
बुगीन दुआ नामे लगिड़् महादेव जी अः बुगीन
दुआ नामे लगिड़् पार्वती जीअः।''

**हिन्दी अनुवाद :**

अच्छा पालन करने वाले समुद्र किनारे बस
डंक फैला कर विष मिटाकर निर्मल कर शरीर
दुहाई महादेव जी की दुहाई पार्बती जी की।''
(विधि–मंत्र पढ़ कर झाड़े और रोगी की नाभि के पास चुटकी बजावें।)

किसी व्यक्ति विशेष को अपने वश में करने के लिए सम्मोहन मंत्र का प्रयोग किया जाता है। इस मंत्र को 15 बार पढ़ें और एक बार अपने हाथों से मुँह को पोंछ लें। इसके बाद उस व्यक्ति विशेष को देख लें वह वश में हो जायेगा। मंत्र इस प्रकार है –

**10. हो :–**

''ओम नमो भगवती पूरा वैशाली पुरा अपनाःअः तीः रे।
साबिन दिशुम अपना पाईटी रे आगुई तेया ऊँ होरा–होरा
हरी सफा तामे
होनको साबिन मोयाः पाईटी सबी को पाईटीया
साबिन होको एरा को दुरांज बोंगा रे आलेया
जीबोन ले एम ताअः।''

जब कुछ लोग एक साथ सामूहिक रूप से मंत्र–विद्या (मती) सीखना चाहते हैं तब सभी एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते हैं और सबसे पहले वहाँ पाठ बाँधा जाता है। पाठ बाँधने का मंत्र इस प्रकार है –

**11. हो :**

ओम नमो मनसा माँ पाठ उडुउ रिकाये तेयाआमाः
हुजुउयान ते मन रे दुब में बुद्धि एमालेम

**हिन्दी अनुवाद :**

ओम नमो मनसा माँ पाठ याद करना है तुम्हारा
आकर मन में बैठो विद्या प्रदान करो

जब विद्याध्ययन समाप्त हो जाता है तब पाठ की समाप्ति की जाती है। पाठ समाप्ति का मंत्र इस प्रकार है –

**12. हो :**

"ओम नमो मनसा माँ आमा शिक्षा / ज्ञान ले पढ़ावेया
युग–युग बुद्धि एमालेम।"

**हिन्दी अनुवाद :**

"ओम नमो मनसा माँ तुम्हारी शिक्षा पढ़ते हैं
युग–युग करो विद्या प्रदान।"

भूत भगाने वाले गुणी, ओझा अथवा भगत को जब यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि पुरूष अथवा स्त्री अथवा बच्चे के शरीर में भूत, डायन अथवा भूतनी का प्रवेश हो गया है और उसने उसे परेशान करना प्रारम्भ कर दिया है, तब वह भूत भगाने के मंत्र का प्रयोग करता है। सबसे पहले ओझा–गुणी अपने शरीर को बाँधता है फिर घर को चारों ओर से बाँधता है। उनका विश्वास है कि इस प्रकार की विधि में भूत–प्रेत अथवा प्रेतनी घर में ही छिप कर नहीं रह पायेगी और न भूत भगाने वाले के शरीर में ही प्रवेश कर पायेगी।

भूत भगाने का मंत्र पढ़ने के पूर्व ओझा अथवा भगत सखुवा के डंठल के चार छोटे–छोटे टुकड़े करता है तथा चरखा से काते सूत (अरवा सूत) से अच्छी तरह इन डंठलों को बाँध देता है और फिर उसे जमीन पर अपने सामने ही रख देता है। मिट्टी का दीया लेता है। उसमें करँज अथवा जटंगी का तेल भर देता है। एक सफेद कपड़े के टुकड़े की मोटी सी बत्ती बनाता है तथा उसे दीये में रख कर जला देता है। उस दीये को बँधे हुए डंठल के बीच में रख देता है। एक दूसरी बत्ती भी बनाता है और उसे मंत्रित चावल पर रख देता है। मंत्र पढ़ते हुए देखता है कि उस व्यक्ति अथवा घर में कौन–कौन सा भूत–प्रेत, भूतनी अथवा डाकिन हैं। मती पढ़ने के लिए सूप में अरवा चावल रख देता है, जिसे रूक–रूक कर थप्पड़ मारता है और रगड़ता जाता है।

गुनगुनाता हुआ रोगी के सिर से भूत उतारता है और घर से उसे भगाने के लिए मंत्र पढ़ता है। भूत–प्रेत अथवा भूतनी को मकान के अन्दर से निकालता है। यह दरवाजे पर आकर रूक जाता है, फिर भूत डेबढ़ी पर आकर रूक जाता है। वहाँ से निकलकर गाँव के रास्ते, फिर गाँव के किसी वृक्ष, नदी में जा रूकता है। भगत–ओझा उसे गंगा में ले जाकर प्रवाहित कर देता है। कभी–कभी इस काम में ओझा परेशान हो जाता है और पसीने–पसीने भी हो जाता है। मंत्र इस प्रकार है –

**13. हो :**

उण्डी कुई मिसाते गे
ओवाएते मयोम ले एमामा, एमामा ले ओल में
जगह–जगह रे मिसाते
ओवाएते मयोम ले ओलाःमाः
गुरू काःअः रेदो तुलसी दारू गुरू

उपुन कोन रे ब्रह्मा, कोतो रे बोंगा
गुरू का:अ: रेदो तुलसी दारू गुरू
उपुन दिशा रे बोंगा कोवा: दारू
बोंगा ओलाअ: कड़ भूतनी सनित्र रे टाइन में
दोलाबु भूतनी दोलाबु भूतनी गाड़ा कुटी ते
चंदन तेले लगाओ तमा सुहाय–सुहाय ते अम मियाड जगह ले एमामा
सनित्रेते ओलेयानेते सनित्र रे टाइन में
दोलाबु भूतनी गाड़ा कुटी ते
चंदन तेले लगाओ तमा सुहाय–सुहायते अम मियाड जगह ले एमामा
ओवाएते ओलाकन हातु रे तिंगुवाकन भूतनी
दोलाबु भूतनी गाड़ा कुटी ते
चंदन तेले लगाओतमा सुहाय–सुहायते अम मियाड जगह ले एमामा
यमुनाएते सेनकेते गंगा रे ले आतु तमा।

**हिन्दी अनुवाद :**

बहन एक साथ रे
घर से बलि देंगे, देंगे निकाल
टीला–टीला रे एक साथ
घर से बलि निकाल देंगे
गुरू नहीं तो तुलसी की पौधा गुरू
चारों कोने पर ब्रह्मा, डाली पर देव
गुरू नहीं तो तुलसी का पौधा गुरू
चारों दिशाओं में देवताओं के पौधे
झाड़ से निकला भूतनी दूर रहो
चल भूतनी चल रे भूतनी नदी किनारे
चंदन लगा देंगे धीरे–धीरे तुम्हें एक स्थान देंगे
दूर से निकलकर दूर रहो
चल भूतनी नदी किनारे
चंदन लगा देंगे धीरे–धीरे तुम्हें एक स्थान देंगे
घर से निकलकर गाँव में खड़ी भूतनी
चल भूतनी नदी किनारे
चंदन लगा देंगे धीरे–धीरे तुम्हें एक स्थान देंगे।
यमुना से चलकर गंगा में बहा देंगे।

वस्तुतः मंत्र और लोक मानसिकता के साथ एक और भी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तत्व संलग्न रहता है और वह है मंत्र की शब्दावली को छिपाये रखना और किसी को भी नहीं बताना। इससे लोगों के बीच आतंक व्याप्त रहता है।

हो भाषी क्षेत्र में जिन मंत्रों का उपयोग किया जाता है, उनके सम्बन्ध में अब तक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। हो भाषी क्षेत्र भूत–प्रेतों के विश्वास का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। यों भूत–प्रेत और मंत्र–तंत्र के सूत्र अथर्ववेद में मिलते हैं। किन्तु बौद्ध धर्म के ह्रास काल में तांत्रिकों एवं सिद्धों का जो एक नया दौर आया, उसका प्रभाव इस क्षेत्र के लोगों पर विशेष पड़ा, ऐसा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र से भूत–प्रेत, डायन–बिसाहा, झाड़–फूँक, ओझा–मति आदि की परम्परा जन–जीवन में गहरे पैठ गयी है।

**(छ) हो बाल–खेल गीत आदि :**

**खेल गीत :–** छोटे–छोटे बच्चों द्वारा खेलने के समय गाये जाने वाले गीत भी हो भाषा में हैं। छोटे बच्चों के ये छोटे गीत भी अपना महत्त्व रखते हैं। बच्चे बड़ों के क्रिया–कलापों का अनुकरण करते हैं, इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन यह गीत करता है –

**हो :** दोकोलेन में, दोकोलेन में करम राजा, एमाकोम
हो को उपुनिया तुपु लुटुराकन चाऊली एमा कोम।

**हिन्दी :** हिलो, हिलो करम राजा, दे हो लोगों को चावल भींगा।
हे करम राजा ! हिलो, हिलो। हो लोगों को तुम भींगे हुए चावल दो।

नागपुरी समाज में इसे इस प्रकार पेड़ों की डालियों में चाहे पेड़ कटे डालियों में सवार होकर हिलाते हुए गाते हैं–हिलो हिलो करम डाइर। दे भउजी भुंजा चाउर। घरे नखे भुंजल चाउर। देख तो दादा नी देल। मार तो दादा जूते जूते। आहे बाबा भूंजल चाउर। इस प्रकार वे किसी भी वृक्ष की शाखा को गाड़ कर उसे हिलाते हुए यह गीत गाते हैं। वास्तव में यह करम पूजा का ही अनुकरण है। जब स्त्रियाँ पूजा कर चुकती हैं, तो करम वृक्ष की शाखा को गले लगाती हैं, ताकि उन्हें वरदान प्राप्त हो। इस समय डाल जोरों से हिलने लगती है। बच्चे भी करम वृक्ष की शाखा से कुछ पाना चाहते हैं। अतः करम डाल की प्रतीक किसी भी वृक्ष की डाल को हिलाते हैं।

इस प्रकार के अन्य खेल भी हैं, जिनमें गीत का व्यवहार होता है। "रूमाल चोर" खेलते समय हो भाषी जिस गीत का व्यवहार करते हैं, वह है –

**हो :** निमिन मरॉँग–मरॉँग रॉँसा लड्।
निमिन मरॉँग–मरॉँग रॉँसा लड्।

**हिन्दी :** इतनी बड़ी–बड़ी प्यार के लड्डू।
इतने बड़े–बड़े प्यार के लड्डू।
एक अन्य खेल गीत है :

**हो :** मरॉँग–मरॉँग कोतो रे मॉँदाल बा।
दोड़ा जापा रे कुदा बा बाकना।

**हिन्दी :** बड़ी–बड़ी डाल पर शरीफा के फूल होते है।
उस गड्ढे के पास जामुन के फूल खिलते हैं।

इस गीत को गाते हुए बच्चे एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गोल बनाते हुए घूमते जाते हैं। थकान ही गीत का सिलसिला तोड़ पाती है। इस गीत से हमें कुछ उपयोगी तथ्यों की जानकारी होती है। जैसे – जामुन का वृक्ष किसी गड्ढे के पास भी उग आता है। शरीफे की डालियाँ काफी मोटी नहीं हुआ करती हैं, इत्यादि।

प्रत्येक गीत अलग–अलग खेल से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए एक बड़ा मनोरंजक खेल है। इस खेल में खिलाड़ी बच्चों में से एक चोर बनता है। वह चोर किसी भी खिलाड़ी का नाम लेकर गाता है कि उसको मारो और गीत के साथ ही उस पर सभी खिलाड़ियों के मुक्के बरसने लगते हैं। फिर वही चोर किसी अन्य बच्चे का नाम लेता है। इस प्रकार जब सभी खिलाड़ी चोर बन कर मुक्के खा–खाकर तृप्त हो जाते हैं, तो खेल की समाप्ति हो जाती है। यह गीत इस प्रकार है –

**हिन्दी** : खेल के मैदान में मैच हो रहा था, कुंभकरन ने चाका मरा।
राम ने कैच किया, लक्ष्मण बोला आऊट, सीता बोली गेट आऊट।

**हो** : इनुंग गोड़ा रे मैच होबाकना, कुंभकरन चाकाया रू केडा।
राम तेला केडा, लक्ष्मण कजि केडा आऊट,
सीता कजि केडा गेट आऊट।

इस प्रकार एक–दो पंक्ति के छोटे–छोटे गीतों का यह छोटा वर्ग अपने में विशेष महत्व रखता है, क्योंकि कल के नागरिक बच्चों का यह प्राण है।

## सन्दर्भ ग्रंथ

1. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, वाराणसी, द्वितीय संस्कारण, 1970, पृष्ठ संख्या 53।
2. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, वाराणसी, द्वितीय संस्कारण, 1970, पृष्ठ संख्या 54।
3. डॉ० सत्येन्द्र, भारतीय साहित्य, प्रथम अंक, जनवरी 1956, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० (प्रा०) लि०, दिल्ली–आगरा–जयपुर, प्रथम संस्करण, 1962।
4. डॉ० सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1965, पृष्ठ संख्या–355।

# तृतीय अध्याय

# "हो" संस्कृति और लोक मानस

"संस्कृति" शब्द सम उपसर्ग के साथ संस्कृत की (उ) कृ (ञ) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। आज की हिन्दी में यह अँग्रेजी शब्द "कल्चर" का पर्याय माना जाता है। संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा लोक मानस के उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। संस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय भी कहा जाता है।[1]

"हो" संस्कृति और लोक मानस का मुख्य उद्धेश्य है, विभिन्न संस्कारों द्वारा व्यक्ति की प्रतिभा और योग्यता का पूर्ण विकास। इस संस्कृति की सहज और सरल अभिव्यक्ति कर्त्तव्यों के प्रति वैयक्तिक एवं सामाजिक जागरूकता एवं कृतज्ञता के परिपालन के रूप में होती है। संस्कृति अन्तःकरण और सभ्यता शरीर है। संस्कृति एक प्रकार का साँचा है, जिसमें लोक मानस समाज के विचार ढालते हैं। संस्कृति समाज की आत्मा और प्राण शक्ति है।[2]

डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार—संस्कार किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण अंग हैं। इतिहास के आरम्भ से ही वे धार्मिक तथा लोक मानस सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे हैं। उनका उदय सुदूर अतीत में हुआ था और कालक्रम से अनेक परिवर्तनों के साथ वे आज भी जीवित हैं। संस्कारों का उद्धेश्य व्यक्तिगत तत्व के विकास द्वारा मनुष्य का कल्याण और समाज तथा विश्व से उसका सामंजस्य स्थापित करना है। संस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्व और पवित्रता प्रदान करते हैं।[3]

ऐतिहासिक क्रमानुसार संस्कृति के अनेक विकसित स्वरूप सामने आते हैं। वैदिक संस्कृति हजारों वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी हमारे लिए आज भी वरेण्य है, जिसमें विश्व कल्याण, जगत शान्ति एवं चराचर के हित की कामना मुखरित है। अतः यह संस्कृति गंगा की पावन धारा के समान सत्त उत्कर्षमयी रहेगी।[4] संस्कृति के प्रमुख छः अंग हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| 1. सामाजिक | 2. धार्मिक | 3. कलात्मक |
| 4. राजनीतिक | 5. आर्थिक | 6. प्राकृतिक |

किसी प्रदेश विशेष की सामाजिक व्यवस्था, धार्मिकता, कलात्मक अभिवृद्धि, राजनैतिक चेतना, आर्थिक दृढ़ता, प्राकृतिक अभिरूचि से ही उसकी सांस्कृतिक जागृति का अनुमान लगाया जाता है। समृद्ध संस्कृति में समाज उत्तरोतर वृद्धि

करता है। जन–जन की मानसिक प्रवृत्तियाँ धार्मिक बनती हैं, कलात्मकता जीवन की साँसों को एक अभिनव उल्लास से अनुप्राणित करती रहती हैं, राजनैतिक प्रबुद्धता मानवीय विचारों के आदर्श शासक एवं शासित के चिन्तन में संलग्न करती है तथा आर्थिक समृद्धि जन–जन के जीवन को जीने के योग्य बनाती है, शालीनता लाती है, पारस्परिक कालुष्य की कालिमा को क्षीण करती है और सामाजिक विषमता को मिटा देती है। प्राकृतिक वैभव सांस्कृतिक सजगता में उदारता, व्यापकता, सुदृढ़ता एवं परोपकार की वृद्धि करता है।[5]

मानव विज्ञान की दृष्टि से संस्कृति उतनी ही पुरानी है जितना मानव। अलग–अलग क्षेत्रों में मानव समाज ने अपनी यौन भावना, भूख, आवास, पारस्परिक वार्तालाप एवं आदान–प्रदान सम्बन्धी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति सम्बन्धी विशिष्ट जीवन प्रणाली का सृजन किया, जिसे हम "संस्कृति" की संज्ञा देते हैं।[6]

एक अमरीकी मानव वैज्ञानिक के अनुसार "कल्चर इज द मैन मेड पार्ट ऑफ द इनविरॉनमेंट।" इस प्रकार संस्कृति को पर्यावरण का मानव निर्मित भाग भी कहा गया है। संस्कृति मानवीय उद्धेश्यों, विचारधाराओं, मानवीय साधनों की समष्टि है।

भारतीय संस्कृति में विभिन्नता में एकता है। भाषा की विभिन्नता का राजनीतिक पक्ष हो साहित्य एवं उनमें अभिव्यंजित सामग्री के विश्लेषण से सांस्कृतिक समानता ही परिलक्षित होती है। संस्कृति के सम्बन्ध में टायलर ने यह परिभाषा दी है—वह जटिल इकाई जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, विधि, रीति और अन्य वे क्षमताएँ और अभ्यास सम्मिलित हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है।[7] मैलिनोवस्की के अनुसार – संस्कृति के अन्तर्गत वंशगत शिल्पतथ्यों, वस्तुओं, तकनीकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है।[8]

संस्कृति को आन्तरिक और बाह्य व्यक्त और अव्यक्त, इन दो पक्षों में विभाजित कर देखने की आवश्यकता है। व्यक्त संस्कृति रीतियों, प्रथाओं, आचारों, कलाओं और विभिन्न प्रकार के शिल्प तथ्यों की समष्टि है, तो अव्यक्त संस्कृति इन रूपों में मूर्त होने वाले मूल्यों और प्रयोजनों का समाहार।[9] जैसे – महिलाओं का साड़ी पहनना सभ्यता है और उनका सर पर आँचल लेना उनकी संस्कृति है।

संस्कृति सामाजिक मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। इसी साधन के द्वारा वह परिवेश के साथ अपना समायोजन करता है। उसके द्वारा अपनी संस्कृति को अर्जित करने की संस्कृतिकरण की यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। संस्कृति विभिन्न पक्षों, जैसे – धर्म, भाषा, संगीत, अर्थव्यवस्था, परिवार आदि में विभाजित रहती है, किन्तु इसके सभी पक्ष परस्पर सम्बद्ध और संकेन्द्रित होते हैं।[10] व्यक्ति अपनी संस्कृति द्वारा निर्णीत होती है और यही उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र निर्धारित करती है। संस्कृति व्यक्ति या व्यक्तियों से अधिक बड़ी होती है। व्यक्ति समाज और संस्कृति का व्यवहार इकाई है। उसी के माध्यम से उनकी निरन्तरता का वहन और कार्यान्वयन होता है।[11]

श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने लोक संस्कृति के निम्नांकित मूल तत्वों को प्रस्तुत किया है।

1. भिन्नता में एकता,
2. बाह्य रूप में परिवर्तन परन्तु सात्विक स्थिरता,
3. मानवता एवं सहिष्णुता,
4. प्रकृति से अभिन्न सम्बन्ध,
5. सव्य परिपालन,
6. विद्या और कला की उन्नति,
7. आध्यात्मिक विकास,
8. तत्वज्ञों का समय–समय पर आविर्भाव,
9. ज्ञान की पिपासा,
10. द्रव्यमूलक शासन।

**लोक कथा और संस्कृति का पारस्परिक सम्बन्ध :**

संस्कृति से लोक साहित्य के कई प्रकार के सम्बन्ध हैं, जिनमे मुख्य हैं – प्रतिफलन, इच्छा पूर्ति, आलोचना, शिक्षण और संचालन। बोआज ने केवल लोक–साहित्य के आधार पर सिमिशियन जाति की जीवन–पद्धति का पुनर्निर्माण किया। उसके प्रयत्न से यह धारणा और भी दृढ़ हुई कि लोक साहित्य संस्कृति को प्रतिफलित करता है। अर्थात् लोक कहानियों और मिथों में जो सामग्री मिलती है, वह एक अर्थ में जाति–विशेष का आत्मचरित है। उनमें वही घटनाएँ और प्रसंग मिलते हैं जो किसी समाज की दृष्टि में सार्थक और महत्वपूर्ण होते हैं। अत्एव वे उसकी अभिरूचि, विश्वास और मूल धारणा की अवगति के प्रामाणिक साधन हैं।[12]

लोक–साहित्य की सामग्री प्रायः सामुदायिक जीवन की समकालीन वास्तविकता को चित्रित करती है और उसका यदि व्यवस्थित रीति से अध्ययन किया जाय तो वह जाति विशेष के व्यक्त और अव्यक्त भौतिक और मानसिक जीवन को अद्‌भुत रूप में उजागर कर सकती है।

यदि कुछ अपवादों को छोड़कर विचार किया जाय तो समस्त भारतीय लोक कहानियों की एक मुख्य विशेषता उनकी सुखान्तता है। यह सुखान्तता सत्य और न्याय की विजय के आस्थामूलक दृष्टिकोण को व्यक्त करती है और भारतीय लोक–मानस की अवगति का एक मूल्यवान सूत्र है।[13]

लोक–साहित्य वास्तविकता का ही नहीं, अपेक्षा का भी चित्रण करता है। वास्तविकता और अपेक्षा का द्वन्द्व संस्कृति के रचनातंत्र की एक बुनियादी विशेषता है और यह शायद कहावतों में सबसे अधिक प्रत्यक्षता से व्यक्त होता है।[14] ये लोक कहानियाँ ही हैं जिनके माध्यम से लोक–संस्कृति ने अनन्त यात्राएँ की हैं, लोक की वसुन्धरा के प्रत्येक भाग को देखा और समझा है। लोक की आत्मा को मुखर करने वाली लोक–संस्कृति के मूल में मुख्यतः एक लोक कथा रहती है।[15]

डॉ० सम्पूर्णानन्द ने लोक–कथा और लोक संस्कृति के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– ''ऐसा माना जाता है कि लोक–संस्कृति के मूल में ''मिथ'' हुआ करता है। कथा भी कई प्रकार की होती है। एक तो वे कथाएँ हैं जिनका संबंध उन समाजों और उन संस्कृतियों से है, जिनका आज लोप हो गया है।''

मिश्र देश की कथाएँ इसका उदाहरण हैं। दूसरी वे कथाएँ हैं जो आज भी प्रचलित हैं। उन कथाओं की एक विशेषता होती है। निश्चय ही इनका आधार कोई ऐसी

घटना होती है, जो कभी प्राचीन काल में घटित हुई मानी जाती है। परन्तु जब वह लोक–संस्कृति में अवतरित होती है तो अपने पुरानेपन के साथ नूतन आवरण अपना लेती है। वह लोगों के दैनिक जीवन के किसी पहलू का प्रतीक बन जाती है। इसलिए वह जीवित घटना बन जाती है, ऐसी घटना का अतीत नहीं, वर्तमान है।[16]

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के कथनानुसार–''भारतीय संस्कृति का सच्चा एवं स्वाभाविक चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध होता है। लोक संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए हमें लोक–साहित्य का ही अनुसंधान करना होगा।''

पारिवारिक जीवन के जो मर्मस्पर्शी दृश्य यहाँ उपलब्ध हैं, उनके दर्शन अन्यत्र कहाँ ? यहाँ जहाँ माता और पुत्री का दिव्य–प्रेम दिखलाया गया है, वहाँ सास–बहू तथा भावज–ननद के कटु एवं विषाक्त व्यवहार का वर्णन भी है। भाई–बहन के निस्पृह पवित्र और दिव्य–प्रेम का वर्णन करने के लिए जो भी विशेषण प्रयुक्त किया जाय, वह थोड़ा ही है।[17] लोक–संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास के लिए लोक–कथाओं का महत्व सर्वोपरि है। विश्व के अनेक देशों में लोक–कथाओं का संकलन एवं संग्रह इस बात का परिचायक है। स्वीडेन में चार सौ से भी अधिक ऐसे संग्रहालय हैं जहाँ स्थानीय संस्कृति के प्रतीकों तथा उपकरणों और वहाँ के मौखिक साहित्य विशेषकर लोक–कथाओं को सुरक्षित रखने का यत्न किया गया है।

आयरलैण्ड की राजधानी डब्लिन में लोक–कथाओं का संसार का संभवतः सबसे बड़ा संग्रहालय है।[18]

इस प्रकार लोक–कथाओं की उपयोगिता, लोक–संस्कृति के संरक्षण एवं अध्ययन के लिए अतार्किक है। इन लोक–कथाओं की व्यापकता में जो विशालता देखने को मिलती है, इनमें भारतीय समन्वयवाद, भाग्यवाद, कर्मवाद, सामाजिक संगठन, अध्यात्मवाद, सहिष्णुता, मानववाद आदि के शास्वत स्वर मुखरित हो रहे हैं। सामाजिक उदाहरण में कल्पित जातिभेद का यहाँ स्थान नहीं है।

इस प्रकार लोक–साहित्य इन कथाओं में समाहित होकर चिरन्तन बन गई है। बोआस के मतानुसार – ''लोक मानस या लोक जीवनयापन के ढंग संबंधी जो विवरण लोक–कथाओं में आते हैं उनमें समूह के रीति–रिवाज प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ते हैं।'' इस प्रकार बोआस लोक–कथाओं को एक प्रकार से समूह की आत्म–कथा मानते हैं।[19]

किसी भी जनजाति की लोक–कथाओं में उपर्युक्त सारी विशेषताएँ पायी जाती हैं। ''हो'' लोक–कथाओं में भी लोक–जीवन एवं लोक–संस्कृति की सारी विशेषताएँ एवं उनका अन्योन्याश्रय संबंध हमें मिलता है। प्रायः सभी ''हो'' लोक–कथाएँ सुखान्तता के साथ ही समाप्त होती है। इन कथाओं में भविष्य के प्रति आशान्वित होने का दृढ़ विश्वास भी परिलक्षित होता है। इन कहानियों में मर कर भी लोग जी उठते हैं और अल्पावधि का कष्ट या विरह कथा के अन्त होने के पूर्व समाप्त हो जाता है और कथा का मिलन से एवं अभिप्रेय वस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति से ही होता है। जहाँ मनुष्य की सीमित श... ...प्रेय वस्तु या फल की प्राप्ति में असमर्थ

होती है, वहाँ ''सिंगबोंगा'' (ईश्वर) उपस्थित होकर या अवतार के रूप में आकर अभिप्रेय फल को दिलाने में सहायक होते हैं। प्रायः सभी ''हो'' लोक–कथाओं में सत्य की विजय एवं असत्य का नाश दर्शाया गया है।

**2. ''हो लोक–कथाओं में ''हो'' संस्कृति :**

लोक–कथाएँ किसी जाति या समुदाय विशेष के व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को अभिव्यक्त करती है। ये कथाएँ आदिम युग से चली आ रही हैं और अनन्त काल तक चलती रहेंगी। लोक–जीवन के आदि काल में ही उनका जन्म हुआ होगा। इन कथाओं में विशेषकर आदिम जाति की कथाओं में जो अधिकांशतः मौखिक होती हैं, लोक–जीवन की सांस्कृतिक चेतना अधिक मुखर रहती है। लोक–कथाओं के कथक्कड़ इन कथाओं में युग विशेष में समाज की स्थिति, आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था, पारिवारिक जीवन आदि का चित्र उपस्थित कर देते हैं। कालक्रमानुसार इनमें परिवर्तन–परिवर्द्धन होता रहता है।

''हो'' लोक–कथाओं में ''हो'' संस्कृति का जीवन्त रूप हमें देखने को मिलता है। ''हो'' जाति प्रारम्भिक काल में घुमक्कड़ एवं शिकारी जीवन में थी। ''हो'' प्रदेश (हो लैण्ड) – सिंहभूम में आने के पूर्व ये लोग अपने पूर्वजों (मुण्डा जाति) के साथ छोटानागपुर में कुछ काल तक रहे। सिंहभूम में आने के बाद भी उन्हें विभिन्न जातियों (विशेषकर भुइया) से संघर्ष करना पड़ा और साथ ही ''असुर'' लोगों के साथ भी इनका टकराव हुआ। ''हो'' जाति के लोग वहाँ के सामन्तवादी राजाओं एवं जमीनदारों के शोषण के विरूद्ध भी बराबर संघर्ष करते रहे। उनके वन्य जीवनकाल में वन्य पशुओं के साथ बिताये गये जीवन की झलक उनकी लोक–कथाओं में मिलती है।

''हो'' समाज पूर्व से ही पितृकुल प्रधान समाज रहा है। फिर भी वहाँ स्त्रियों का स्थान समाज में महत्वपूर्ण रहा है। ''हो'' लोगों की सामाजिक व्यवस्था अन्य जातियों से कुछ भिन्न रही है, क्योंकि अधिकांश ग्रामों में एक गोत्र (किलि) विशेष के ही लोग पूर्व से बसते आये हैं। वहाँ जमीन या अर्थ–व्यवस्था उनकी अपनी होती है। वहाँ की जमीन पर वहाँ बसने वाले गोत्र विशेषकर लोगों का व्यक्तिगत एवं सामूहिक अधिकार रहता है। ''हो'' समाज की अपनी सामाजिक व्यवस्था है, जिसके अपने विधान हैं। ''हो'' समाज में अपने गोत्र के बाहर ही शादी–ब्याह होता है। समाज के नियम को भंग करने पर व्यक्ति विशेष को समाज की ओर से दण्डित किया जाता है। ''हो'' समाज आरम्भिक युग में आखेट की प्रेमी रहा है। इनकी ''गोत्र कथाओं'' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि आखेट के क्रम में इनके सम्पर्क में आये पशु–पक्षी, वन–सम्पदा, नदी–झरना आदि जो भी हितकर सिद्ध हुए इनके ''गोत्र प्रतीक'' बन गये। ''देवगम पक्षी'' से देवगम किलि, पीपल के पेड़ से काइला गोत्र, जामुन के रस से कुदादा गोत्र, झरना के नाम पर जामुदा गोत्र आदि की उत्पत्ति हुई। इसी से ''हो'' जाति में ''गोत्रों'' की अब तक संग्रहित संख्या 125 बताई गई है। इनमें बहुत से उप–गोत्र सम्मिलित हैं। इन गोत्रों का अलग–अलग उद्भव स्थान है। यथा – ''अल्डा'' का गंजिया, ''बालमुचु'' का गुइरा, ''बानरा'' का

टोंटो, "बासिंग" का भोया, "बारी" का खूँटा, "बिरूआ" का लगड़ा, "बोयपाई" का पंडाबीर आदि ग्राम उनके उद्भव स्थान हैं।[20]

सामाजिक दृष्टि से "हो" अपने समाज में तीन दृष्टियों से विशिष्ट रूप से जुड़ा होता है। प्रथमतः वह अपने परिवार का सदस्य होता है, जिसके प्रति उसकी अपनी खास जवाबदेही होती है। उसके गोत्र का स्थानीय प्रधान व्यक्ति ही ग्राम का मुण्डा होता है, जो उस ग्राम का "प्रधान" होता है। गोत्र के मामले में "हो" जाति के नियम बहुत कठोर हैं और अपने गोत्र के प्रति पूरी निष्ठा एवं नियमों का पालन करने के प्रति "हो" लोग काफी जागरूक हैं। वे गोत्र के नियम एवं हित के विरूद्ध कोई कार्य नहीं करते। गोत्र के नियम एवं मर्यादा को भंग करने वाले को "गोत्र" का मुखिया दण्डित करता है। "गोनोङ का जन्म" शीर्षक कथा में सामाजिक नियम को भंग करने वाली लड़की को सजा देने का प्रावधान था, जो "मृत्यु दण्ड" के समान था। बाद में इसे बदल दिया गया क्योंकि वह अमानवीय था। इसी प्रकार सामान्तवादी युग में "हो" समाज में "रितुई गोंडाई सिंकू" नामक सम्पन्न एवं वीर व्यक्ति को राजा जगन्नाथ सिंह द्वारा (जगन्नाथपुर में) झूठे इल्जाम लगाकर दण्डित किया गया था। उसका "हो" समाज में परवर्तीकाल में सामन्तवाद के खिलाफ विद्रोह कर बदला लिया। "रितुई गोंडाई की कहानी" सामन्तवादी युग में "हो" समाज पर किये गये अत्याचारों का दृष्टान्त है।

"हो" ग्राम एक सामाजिक इकाई होता है जिसमें एक खास गोत्र के ही लोग अधिकांशतः बसते हैं। उस गाँव में सभी सामाजिक, धार्मिक आदि कार्य उस गाँव के गोत्र प्रधान (मुण्डा) की देखरेख में सम्पन्न होता है। गाँव के नाम भी गोत्र के परिचायक हैं। बन्दगाँव की टेबो घाटी के आगे दोनों तरफ कई गाँव हैं जिनके नाम का गोत्र प्रचलित है। यथा, अंगारिया, कुदादा, जोंको, बुड़िउली, तापे पाड़ेया, बारजो, सिरका, पिंगुवा, पाठ पिंगुवा, हेस्सा पिंगुवा, हेम्ब्रम, तिरिया, पूर्ति आदि। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि "हो" जाति के लोग इसी क्षेत्र से सिंहभूम (कोल्हान) में फैल गये।[21] जब "हो" सिंहभूम में आये और वहाँ अपनी बस्तियाँ बसाने का कार्य किया, उस बीच उन्हें काफी जंगल आदि साफ करना पड़ा। यह क्षेत्र उपजाऊ एवं नदी–झरनों से भरा था। अतः उन्होंने इस क्षेत्र को अपना वासस्थल बनाया।

जिस गोत्र के लोग जिस जंगल को साफ कर कृषि योग्य एवं वासस्थल बनाये, उस क्षेत्र के वे "खूँटकट्टीदार" हो गये। इसका अर्थ होता है "जंगल की सफाई।" इस प्रकार जो ग्राम बने एवं वहाँ जितनी भूमि खेती योग्य बनी, वह उस गाँव में बसने वाले एक गोत्र विशेष के लोगों की सामूहिक सम्पत्ति बन गयी। अभी भी "हो" ग्रामों में पूरी जमीन एक गोत्र विशेष की होती है। उस गोत्र का मुखिया एवं उसके वंशधर उस जमीन का भोग कर सकते हैं। उसे बेच या हस्तान्तरित नहीं कर सकते। "हो" लोक–कथाओं में भी घर का पशु आदि बेचने की घटना वर्जित है, परन्तु जमीन बेचने का कोई प्रसंग नहीं मिलता। यह तथ्य "एक भाई का प्रतिशोध" शीर्षक कहानी में उभर कर सामने आया है। इस कथा का नायक भाईयों

के अत्याचार से अपना ग्राम थोड़े समय के लिए छोड़ देता है। परन्तु जब उसकी आर्थिक स्थिति सुधर जाती है तो वह पुनः गाँव में आ जाता है। भाईयों के अत्याचार से पीड़ित होकर वह घर और जमीन नहीं बेच सका, जैसा कि अन्य क्षेत्रों में देखा जाता है।

"हो" लोगों का आर्थिक जीवन कृषि पर आधारित है। कोल्हान क्षेत्र (सिंहभूम) में मुख्यतः धान की खेती होती है और चावल ही "हो" का मुख्य भोजन है। चावल से वे "डियङ" (हंड़िया) बनाते हैं, जो उनका पेय ही नहीं, भोजन भी है। "हो" जाति के लोग धान के अतिरिक्त गेहूँ, मकई आदि भी कुछ मात्रा में पैदा करते हैं। साग–सब्जी की भी वे खेती करते हैं, जिसे वे साप्ताहिक हाट में बेचकर घर के लिए नमक, तेल, साबुन आदि खरीदते हैं। जंगल से जंगली फलों, लकड़ी, दतुवन, पत्ता आदि भी वे निकटवर्ती बाजारों–हाटों में लाकर बेचते हैं। हाट में बड़ा लाल "चींटा" (हौऊको) एवं वर्षा ऋतु में पाया जाने वाला "फतिंगा" (बुरदुडको) भी वे भूनकर बेचते हैं, जिसे "हो" लोग खाते हैं। "हो" जाति के लोग गो–दोहन नहीं करते। उनका यह लोक विश्वास है कि लक्ष्मी उरि का दूध उसके बच्चों के पालन–पोषण के लिए है, दोहनकर बेचने या खाने के लिए नहीं। फलस्वरूप "हो" क्षेत्र में गाय या भैंस के दूध का अभाव है। "हो" गाय के दूध को एक प्रकार से गाय का रक्त मानते हैं।

"हो" लोगों के घरों में "लाल चाय" में रोटी डूबो कर खाते हैं। हालांकि ये चाय से अधिक "हंड़िया" पीना पसन्द करते हैं। किसी नवान्तुक व्यक्ति (विशेषकर गैर आदिवासी / दीकू) से पूछते हैं कि "आप आदिवासी चाय पीयेंगे या दीकू चाय"। हंड़िया (डियङ) को ही वे आदिवासी चाय की संज्ञा देते हैं। ग्रामों एवं शहरों तथा हाटों में "हो" स्त्रियाँ हंड़िया का व्यापार करती हैं और वह भी उनकी आय का एक अच्छा साधन है। "हो" लोग व्यापार बहुत कम करते हैं। फिर भी "दुष्ट भाभी का अन्त" शीर्षक कथा में "वरदा–बेमारी" अथवा बैल पर नमक का व्यापार करने वाले भाईयों का प्रसंग आया है। परन्तु व्यापार उनका मुख्य पेशा नहीं है। धान या चावल का व्यापार वे केवल कृषि के उत्पादन के रूप में करते हैं। अभी भी "हो" लोगों के समाज में "अदल–बदल" का प्रचलन है, जिसके अनुसार वे "चावल" या धान देकर "नमक" आदि प्राप्त करते हैं।

वन प्रान्त में रहने वाले "हो" लोगों का आर्थिक जीवन कठिन है, जहाँ उत्पादन हेतु जमीन कम है और जंगल–पहाड़ अधिक हैं। वहाँ वन्य–पशुओं (विशेषकर हाथी) से फसल नष्ट भी अधिक किये जाते हैं। सिंहभूम का "सारण्डा" (सात सौ पहाड़ियों का प्रदेश) क्षेत्र ऐसा ही है। यहाँ की भूमि कृषि कार्य के लिए उतना उपयुक्त नहीं है। "झूम खेती" (सिफ्टींग कल्टिभेसन) भी होता है, जहाँ पहाड़ी क्षेत्र है। वहाँ की जमीन को "हो" कई श्रेणी में बाँटते हैं। एक सर्वेक्षणात्मक अध्ययन के अनुसार उस क्षेत्र में निम्न प्रकार की कृषि भूमि पाई जाती है:–

1. गोड़ा – लाल एवं पथरीली–कंकड़ीली जमीन
2. कुदुरगोड़ा – नदी किनारे की बलुआही जमीन

3. बकई — घर से सटी हुई जमीन या बाड़ी
4. बाढ़ी — पहाड़ी ढालों पर की अपेक्षाकृत उपजाऊ जमीन
5. बेड़ा — धान खेत—घाटियों एवं नीचे की समतल भूमि के खेत

मुख्यतः धान (बेड़ा धान) जून में बुन दिया जाता है और उन्हें नवम्बर तक काट लिया जाता है। इसे ''हो'' में ''हम्बल—बाबा'' कहा जाता है। धान काट कर उसमें नमी रहने पर चना, तीसी, मसूर, खेसारी, सरसों आदि छींट देते हैं जिसे फरवरी या मार्च में काटा जाता है। पहाड़ियों पर जहाँ कम उपजाऊ जमीन है, ''हो'' झूमचास करते हैं। इनमें झाड़ी आदि को काट कर जला देते हैं और गोड़ा—गोंदली आदि लगाते हैं। जून में वे ''इरबा'' (गंगई, एक प्रकार का ज्वार आदि) लगाते हैं जिसे काटकर सितम्बर में ''विरही'' (एक प्रकार का दलहन) लगा देते हैं। दो साल ऐसी जमीन पर खेती करने के बाद वे उसे छोड़कर अन्य स्थान को झूमचास के लिए साफ करते हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण ''हो'' जाति का भोजन एवं खाद्य पदार्थ विभिन्न ऋतुओं में खाद्यान्न एवं फल—फूल की उपलब्धता के कारण बदलता रहता हैं उनका आहार वर्ष भर में निम्न प्रकार का रहता है, विशेषकर ''सारण्डा'' जैसे वन प्रान्तर में, जो कोल्हान का मुख्य भाग हैः—

1. जनवरी—फरवरी — चावल, मकई, ज्वार—बाजरा आदि।
2. मार्च—अप्रैल — कंदा, महुआ, पीपल साग, केन्दू, बड़ आदि के फल।
3. मई—जून — कोयनार साग, गेटो—कन्दा, जामुन, आम आदि के फल।
4. जुलाई—अगस्त — चातु, पोटके, भाजी, उपुन्डु, सिरगिटी, लेपेर अःअ, मुनगा आदि की पत्तियाँ। मुख्यतः महुआ से ''सोरगा'' आदि बनाकर खाते हैं। (वर्षा ऋतु में)
5. सितम्बर — गोंदली।
6. अक्टूबर—नवम्बर — मकई एवं गोड़ा धान।

''हो'' प्रदेश में अनेक पेड़—पौधे हैं, जिन्हें खाने, दवा—दारू या जादू—टोना के कार्य में प्रयुक्त किया जाता है। इनसे तेल भी निकाला जाता है। जैसे—महुआ, कुसुम, नीम तथा करंज के बीच से तेल निकालकर ''हो'' लोग अपने कार्य में लाते हैं। अधिकांश ''हो'' नीम का तेल लगाते हैं, विशेषकर औरतें इसका सेवन करती हैं।

''हो'' पशुपालन का कार्य भी करते हैं और पशुओं के लिए एक गोशाला बनाते हैं, जहाँ ''गोएटे या गोटो बोंगा'' निवास करते हैं और पशुधन की रक्षा करते हैं। ''हो'' गाय एवं बैल तथा भैंस—भैंसा को कृषि कार्य में हल जोतने के लिए रखते हैं। वे नर—मादा दोनों को हलों में या बैलगाड़ी में जोतते हैं। झारखण्ड के सदानों में भैंस व गाय (जो दूध देती हैं) का उपयोग हल जोतने, बैलगाड़ी खींचने में प्रयोग नहीं किया जाता है। वे लोग बकरा एवं मुर्गी भी पालते हैं। ये दोनों पशु—पक्षी उनके लिए भोजन से अधिक धार्मिक अनुष्ठान के अवसरों पर बलि देने में प्रयुक्त होते हैं। बकरा मुख्यतः अन्तिभ संस्कार ''तोपा'', ''तेन तोपा'' (कब्र पर चट्टान रखने) के समय बलि के रूप में मारा जाता है। जब किसी अवसर विशेष पर मेहमान आते हैं, तब भी बकरा काटा जाता है। शादी—विवाह के अवसर पर या संबंध अच्छा

ब..ाने के लिए तथा किसी को जुर्माना देने या शुद्धिकरण के अवसर पर भी बकरे का भोज दिया जाता है।

मुर्गा "हो" समाज में विशेष महत्व रखता है। उसकी बलि देकर विभिन्न बोंगाओं की पूजा–अर्चना कर उन्हें प्रसन्न किया जाता है। "मुर्गा" उनके आर्थिक जीवन में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मुर्गा, मुर्गी एवं अण्डा बेचकर "हो" लोग कपड़ा, तेल, साबुन आदि खरीदते हैं। "मुर्गा लड़ाई" भी सिंहभूम में (झारखण्ड में) "हो" जाति का प्रमुख खेल एवं जुआ है, जिसमें हजारों रूपयों की हार–जीत होती है। मुर्गा लड़ाई का मुख्य मास दिसम्बर से फरवरी तक है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में वे जंगली बकरी, वन मुर्गा, हिरण, सांभर आदि का शिकार कर जीवन–यापन करते थे। "हो" तीरंदाजी में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। "कुम्हार" के लड़के की कथा एवं "गोनोङ की उत्पत्ति" की कथा में तीर से बाघों को मारने की घटना वर्णित है। आज भी "हो" जाति के तीर–धनुष उनके मुख्य शस्त्र हैं और अभी भी उनका निशाना अचूक होता है।

विभिन्न लोक–कथाओं में फल चुनने, शिकार करने आदि का प्रसंग आता है। "दो बहनों की कथा", गोत्र कथाओं में "लुगुन गोत्र", "समद गोत्र" आदि में शिकार कर भरण–पोषण की बात कही गई है। पूर्व काल में जब "हो" वनों में भटकने वाली बंजारा जाति की तरह जीवन व्यतीत कर रही थी, उस समय फलों और जानवरों के शिकार पर ही उनका भरण–पोषण निर्भर था। अभी भी वनों में उपलब्ध कंद–मूल, फल–फूल, वन्य पशु इनके जीवनयापन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

शिक्षा एवं औद्योगिक विकास से उनके जीवन में भी परिवर्तन आया है। सिंहभूम में मैंगनीज, पत्थर, चूना–पत्थर, ताँबा आदि की खानें हैं। साथ ही जमशेदपुर में टाटा के कारखाने, जादूगोड़ा में यूरेनियम का खान एवं प्लांट, घाटशिला में ताँबा का कारखाना आदि की स्थापना से खानों एवं उद्योगों में "हो" जाति के लोगों को नौकरी करने का सुअवसर मिला है और वे मजदूर की श्रेणी से लेकर उच्च पदों पर भी कार्यरत हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा, बिहार प्रशासनिक सेवा, वित्त सेवा, भारतीय वन सेवा, आरक्षी सेवा, सेना आदि में "हो" जाति के पढ़े–लिखे युवक उच्च पदों पर सेवारत हैं। शिक्षा के प्रसार एवं विकास से उनका जीवन–स्तर, आर्थिक–सामाजिक स्थिति आदि में यथेष्ट सुधार एवं प्रगति परिलक्षित हैं।

"हो" जीवन समाज और संस्कृति पर श्री योगेन्द्र मुनि ने अपने निबंध में कुछ तथ्यों को उजागर किया है, जो "हो" समाज की विशेषताओं को प्रकाशित करता है। उनके अनुसार "हो" समाज में संस्कारों का बहुत महत्व है। "हो" समाज में "गर्भाधान" से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनेक संस्कार हैं, जो उनके जीवन को शुद्धता प्रदान करते हैं। इन संस्कारों में गर्भाधान संस्कार, शुद्धि संस्कार, सामाजिक संस्कार, विवाह संस्कार, अन्तिम संस्कार एवं श्राद्ध संस्कार प्रमुख हैं। "गर्भाधान" संस्कार" से संबंधित कहानी "दुष्ट रानी की कथा" जिसमें ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए राजा पूजा–अर्चना करता है और उसे फल की प्राप्ति के रूप में "पुत्रों" की प्राप्ति होती है। आम्रफल के सेवन से सभी रानियाँ गर्भवती होती हैं।

छोटी रानी इस संस्कार के महत्व को नहीं समझती है और इसको मानने में त्रुटि कर देती है, जिसके फलस्वरूप उसके सुन्दर बच्चे का मुख ''नेवला'' जैसा हो जाता है। स्पष्ट है कि ''हो'' समाज संस्कारों को विशेष महत्व देता है।

''हो'' समाज में ''न्याय व्यवस्था'' भी ग्राम स्तर पर है, जिसका प्रधान ''मुण्डा'' होता है। ''हो'' सत्यवादी एवं न्यायप्रिय होते हैं। उनकी कथाओं में नीर–क्षीर न्याय की झलक हमें मिल जाती है।। उनकी दृष्टि में अन्यायी का अन्त और न्याय की विजय अवश्यंभावी है। ''कुम्हार के लड़के की कथा'', ''एक लोमड़ी का कलापूर्ण छल (कपट)'', ''एक सियार की धूर्तता'', ''राजकुमार के साहसिक कार्य'' आदि कहानियाँ उनके इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं। न्याय करने वाला पशु हो या मनुष्य, वह नीर–क्षीर न्याय करके निर्दोष को मुक्त करता है।

''हो'' समाज में शुद्धिकरण की भी व्यवस्था है। यदि कोई ''हो'' लड़की या लड़का किसी तरह विजातीय घोषित कर दिया जाता है तो उसे समाज जुर्माना आदि से दण्डित कर समाज में वापस ले लेता है। इस सन्दर्भ की कथा ''गोनोङ'' की उत्पत्ति है, जिसमें एक चरवाहा (गोंड़) का लड़का एक मुण्डा की दण्डित लड़की से शादी कर लेता है और ''गोनोङ'' (लड़की का मूल्य) देकर वह ''हो'' समाज में ''गोनोङ'' की प्रथा के प्रादुर्भाव के साथ–साथ ''शुद्धिकरण'' के लिए ''दण्ड'' की व्यवस्था का प्रादुर्भाव भी होता है, ऐसा इस कथा से परिलक्षित होता है।

''हो'' के पारिवारिक जीवन में स्त्रियों का प्रमुख स्थान होता है, जो घर के कार्य से लेकर कृषि कार्य, क्रय–विक्रय, आदि तक के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती है। फिर भी ''हो'' परिवार पितृ प्रधान परिवार होता है। वंशा पिता का चलता है। विवाह के उपरान्त वधू वर के घर में रहती है और उसे ही अपना घर समझ लेती है। ''हो'' समाज में विवाह की कई प्रथाएँ हैं। निम्नलिखित प्रथाएँ उनमें वर्तमान हैं:–

**1. बपाला** :– इसमें लड़के की ओर से लड़की के माँ–बाप के पास शादी का प्रस्ताव भेजा जाता है। यदि बात पक्की होने योग्य हुई तो मध्यस्थता करने वाले के माध्यम से ''लड़की का मूल्य'' (गोनोङ) की बात लड़के वाले तक पहुँच जायेगी और इसके तय हो जाने पर शादी होगी। अगर बातचीत के मध्य कुछ अशुभ बातें हो गयी तो ओझा–गुनी (दिऊरि या पाहन) के माध्यम से उसे दूर करने हेतु ''सिंगबोंगा'' को बकरे या मुर्गे की बलि दी जाती है। इस पारस्परिक शादी में जो रस्म होता है उसे ''एरातिई'' कहते हैं। जिसमें वर एवं कन्या एक दूसरे के प्रति शपथ लेते हैं। यह शपथ का आदान–प्रदान ''हंड़िया'' (डियांङ) से भरे दोना द्वारा होता है। ''वर'' किसी प्रकार का हो, लड़की के माता–पिता के वचन देने पर उसे चुन लेती है। यह घटना ''एक घडियाल दामाद'' शीर्षक कहानी में उभर कर सामने आयी है। लड़की का पिता वचन दे चुका था कि यदि उसे लड़की होगी तो उसकी शादी उससे (घड़ियाल) से अवश्य करेगा। अतः शादी हुई। ''हंड़िया'' का आदान–प्रदान भी घड़ियाल के अपने ससुराल आने पर हुआ। परन्तु ''हंड़िया'' की बुराई भी इस कहानी में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। जब घड़ियाल ''डियङ'' अधिक पीकर

नव-विवाहिता को घायल कर देता है और तब उसकी पशु-प्रवृत्ति को खत्म करने के लिए ग्रामवासी उसे मार डालते हैं। हंड़िया के संबंध में एक कथा है – जब लोग सभा में बैठते हैं तो सभी मौन रहते हैं, क्योंकि अभी तक हंड़िया नहीं चला। पहला दोना हंड़िया चलने पर लोग मैना की तरह बोलने लगते हैं। दूसरा दोना मिलने पर लोग मोर की तरह नाचने लगते हैं और तीसरा दोना मिलने पर शेर की तरह गरजने लगते हैं। चौथा दोना पीने पर सूअर की तरह कीचड़ में लोट-पोट होने लगते हैं। इस तरह हंड़िया की मात्रा और इसके प्रभाव को बहुत ही अच्छी तरह बताया गया है।

**2. दिकू आँदी** :– ''हो'' समाज में दूसरे प्रकार के विवाह की भी परम्परा चल रही है, जिसे ''दिकू आँदी'' कहते हैं। इसमें वैवाहिक कार्यों एवं रस्मों को ''दिऊरि'' के स्थान पर ''ब्राह्मण'' (पण्डित) सम्पन्न कराते हैं। इसमें वर-वधू को ''शालिग्रामशिला'' के समक्ष दाम्पत्य जीवन निष्ठा से निर्वाह करने की शपथ लेना पड़ता है।

**3. ''ओपोर तिपी''** :– तीसरी पद्धति ''ओपोर तिपि'' की है, जो प्राचीन काल से चली आ रही है। यह पद्धति ''कन्या-हरण'' द्वारा शादी की है। इस प्रथा के पीछे ''गोनोङ'' (कन्या-मूल्य) बहुत बड़ा कारण है। झारखण्ड के सदान इसे उढ़रिया विवाह कहते हैं, इसमें लड़का लड़की को उड़ा ले जाता है और विवाहित के समान रहने लगता है। लड़का अपनी मनचाही लड़की को लेकर अपने घर चल जाता है। बाद में कुछ ''गोनोङ'' देकर शादी की रस्में पूरी की जाती है। लड़की को लेकर भगाने के पीछे सामाजिक असमानता एवं रूढ़िवादिता है। इस घटना को ''राजकुमारी एवं मंत्री पुत्र'' की कथा में दर्शाया गया है। ऐसी शादी में लड़के को एवं वर पक्ष को अधिक कठिनाई होती है और तब सामाजिक मान्यता मिलती है। ''कुम्हार के लड़के की कथा'' में भी यही तथ्य सामने आया है।

**4. राजी-खुशी विवाह** :– चौथी पद्धति ''राजी-खुशी'' विवाह है। यह विवाह दोनों पक्षों के पारस्परिक इच्छानुसार बिना किसी समारोह या लेन-देन के सम्पन्न होता है। जब कन्या यह पाती है कि उनके माता-पिता किसी कारणवश राजी नहीं हो रहे हैं तो दोनों गाँव से बाहर जाकर तब तक कहीं अन्यत्र रहते हैं, जब तक कि उनके माता-पिता उनके इस संबंध को मान्यता नहीं दे देते। इसका उदाहरण ''राजकुमारी एवं मंत्री पुत्र'' की कथा में मिलती है।

**5. अनादेर विवाह** :– पाँचवी पद्धति ''अनादेर'' कहलाती है। इसके अनुसार जब कोई लड़की किसी लड़के के साथ प्रेम कर लेती है और लड़की वाले लड़के वाले को मनाने में असमर्थ हो जाते हैं तो लड़की जबरदस्ती लड़के के परिवार में आ जाती है। लड़के वाले उसे अनेक प्रकार के कष्ट देते हैं, ताकि वह उनका घर छोड़कर चली जाय। परन्तु सब कष्टों को सहते हुए अपनी सेवा भावना, कठिन परिश्रम एवं सहिष्णुता से जब वह घर वालों की सहानुभूति प्राप्त कर लेती है, तो उसे उस घर में पत्नी का दर्जा प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार की शादी में ''गोनोङ'' या किसी समारोह की आवश्यकता नहीं पड़ती है। ''गोनोङ'' की प्रथा के कारण

भी बहुत अधिक संख्या में "हो" लड़कियाँ कुँवारी (अविवाहित) रह जाती है। सदानों में इस प्रकार के विवाह को "ढुकू विवाह" कहते हैं।

"हो" समाज में लड़की की इच्छानुसार किसी लड़के को भगा कर ले जाने और शादी कराने की परम्परा नहीं मिलती है। परन्तु "जंगली भैंसों का पालतू होना" शीर्षक कहानी में या "सांभर धातृ" शीर्षक कथा में यह तथ्य परिलक्षित होता है, जिसमें इच्छित युवक को लड़की द्वारा पकड़कर शादी सम्पन्न करायी जाती है। सम्भव है, यह परम्परा "हो" समाज में कभी रही हो अथवा इन लोक–कथाओं पर किसी अन्य क्षेत्र की कथाओं का प्रभाव मात्र हो।

विवाह से सम्बन्धित एक रस्म है, जिसे "साकी सुताम" कहते हैं। जब कोई युवती प्रथम बार विवाह के लिए ससुराल प्रस्थान करती है, तो अपने गाँव की सीमा पर एक पेड़ में "साकी सुताम" बाँध देती है। "साकी" शब्द "साक्षी" से उदभूत प्रतीत होता है। यह अपनी "जन्म–भूमि" को, अपनी देशाउली को हमेशा स्मरण रखने के लिए है। यह कार्य सम्पन्न कर वह वादा करती है – यद्यपि मैं जा रही हूँ, फिर भी तुमको मैं भूल नहीं जाऊँगी। मेरा संबंध तुमसे बना ही रहेगा। जिस जन्म–भूमि में बचपन बिताई, युवती हुई, खेली–कूदी, तुम्हें मेरा प्यार हमेशा रहेगा।[22]

विवाह में "गोत्र" का महत्व अत्यधिक है। समान गोत्र में शादी नहीं होती। जब कोई वर पक्ष वाला किसी वधू पक्ष के यहाँ शादी की बात करने प्रथम बार जाता है तो लड़की वाले पूछते हैं – "किसके राज्य से आप लोग आये हैं (किस गोत्र से आप लोग आये हैं)। इस पर लड़के वाले कहते हैं –"हमलोग पिंगुवा राज्य से आये हैं। (अर्थात पिंगुवा गोत्र के हैं)। वे सीधे गोत्र के विषय में नहीं पूछते हैं।

विवाह लड़की एवं लड़का, दोनों के घर में सम्पन्न होता है। यदि लड़की वाले निर्धन हैं तो वे लड़की को लड़का के घर में ले आकर वहीं शादी सम्पन्न करते हैं। मुख्यतः वर पक्ष के लोग ही बारात लेकर लड़की घर जाते हैं और विवाह करा कर ले आते हैं।[23] झारखण्ड के सदानों में मूल रूप से लड़की को लगन करा कर लड़के पक्ष घर ले आते हैं और लड़के के घर में विवाह सम्पन्न होता है। अपवाद में लड़का आर्थिक रूप से कमजोर होता है तब चढ़ बारात अर्थात लड़की के यहाँ लड़का जाकर विवाह करता है।

विवाह में पर्व–त्योहार के अवसरों पर स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के स्वर्ण एवं रजत आभूषण धारण करती हैं। उसके मुख्य आभूषण हैं – "लुतुर मुरकि" (कर्णफूल या झुमका), टका सकोम (हाथ की पहुँची या कंगन) तथा "तोनाको आन्दु" (पाजेब या पायल)। इसके अतिरिक्त वे नाक में "कील" या "नक़वेसर" जैसा आभूषण भी धारण करती हैं। "एक नवयुवती की कथा" में बाघों के राजा द्वारा आभूषण आदि के साथ सुसज्जित कर उस युवती को विदा करने का विवरण है, जो उसे (बाघ) दादा मान ली थी और जिसकी शादी होने वाली थी। "हो" स्त्रियाँ भी आभूषण–प्रिय होती हैं। यह "हो" क्षेत्र में सर्वत्र देखने को मिलता है। केश–विन्यास भी उनकी श्रृंगार–प्रियता को दर्शाता है। "हो" स्त्रियों के केश लम्बे और वृद्धावस्था तक काले

रहते हैं। वे अधिकांशतः नीम, कुसुम के तेल का प्रयोग करते हैं। उनका स्वास्थ्य सौन्दर्य एवं सुगठित शरीर पर रंगारंग परिधान उनके व्यक्तित्व को अत्यन्त आकर्षक एवं मोहक बना देता है। पर्व–त्योहार एवं विवाह आदि के अवसर पर उनका सरल–सुलभ श्रृंगार एवं प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय होता है। "हो" बालाएँ कृत्रिम श्रंगार प्रसाधनों का प्रयोग कम करती हैं। साड़ी, साया, ब्लाउज उनका मुख्य परिधान है। कंचुकी आदि पहन कर ही सब कार्य करती हैं।

"हाट" (साप्ताहिक बाजार) उनका सांस्कृतिक एवं सामाजिक केन्द्र होता है, जहाँ सुदूरवर्ती ग्रामों से नर–नारी "हाट" में क्रय–विक्रय करने आते हैं। यहाँ युवक–युवतियाँ अपने जोड़े भी तय करते हैं और कभी–कभी इन्हीं हाटों से लड़कियों को लड़के विवाह के लिए चुनकर ले जाते हैं, जिसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

"हो" अपने घर को अत्यधिक साफ–सुथरा रखते हैं। उनके घर मिट्टी के बने होते हैं। "हो" मिट्टी के बने घर मिट्टी के विभिन्न रंगों से की गयी चित्रकारी से अत्यन्त आकर्षक लगते हैं। "हो" का रसोई घर (अदिङ) अत्यन्त पवित्र माना जाता है। "हो" इस घर मे अन्य किसी जाति के व्यक्ति को प्रविष्ट होने नहीं देते हैं। उनका लोक विश्वास है कि इस घर में उनके पूर्वजों की आत्माएँ जिन्हें वे "ओवा बोंगा" कहते हैं, निवास करती हैं। वे जो भी खाना बनाते हैं, उसको सर्वप्रथम अपने पूर्वजों को समर्पित करते हैं। यदि कोई विजातीय बहू घर में प्रवेश करती है तो जब तक वह "गोत्र" में नहीं मिला ली जाती, रसोई घर में प्रवेश नहीं कर सकती। उन्हें यह भय रहता है कि उसके प्रवेश से पूर्वजों की आत्माएँ नाराज हो जाएँगी और इससे उनका अहित हो सकता है।[24]

पारिवारिक सम्बन्धों में "हो" परिवार में भाई–बहन का स्नेहिल संबंध सबसे अधिक श्लाध्य है। सामान्यतः सात भाईयों में एक बहन का प्रसंग "हो" कहानियों में उपलब्ध है। कहीं–कहीं दो भाई–एक बहन का भी प्रसंग आता है। बहनों की संख्या कहीं–कहीं दो पायी जाती है। बहन का बहन के प्रति स्नेह भी "हो" कथाओं में पाया जाता है। माँ पुत्र, पिता–पुत्र या पिता–पुत्री आदि का संबंध प्रेम भरा एवं निकटता का प्रतीक है। परन्तु अधिकांश कथाओं में भाई–भाई एवं ननद–भौजाई में अच्छा संबंध नहीं पाया जाता। भाई अपने भाई को विपन्न एवं फटेहाल देखना चाहते हैं। इसका उदाहरण "एक भाई का प्रतिशोध" शीर्षक कथा में हम पाते हैं। एक विधवा के सात लड़कों में सबसे छोटा "चीरूचुटिया" को उसके अन्य छः भाई विपन्न बनाकर रखना चाहते हैं। परन्तु वह अपनी मेधा–शक्ति और चतुराई से अपनी आर्थिक स्थिति काफी सुधार लेता है, जबकि अन्य छः नष्ट हो जाते हैं।

भाई–बहन के पवित्र स्नेहिल संबंध का दृष्टान्त हमें "दुष्ट भाभी का अन्त", "छोटी बहन" आदि कथाओं में मिलता है। दोनों कथाओं में भाभियों द्वारा ननद को सताये जाने की कथा है और दोनों में भाईयों ने अपनी पत्नियों को बहन को उत्पीड़ित करने के कारण मार डाला।

बहन और बहन का स्नेहिल संबंध भी "दो बहनों की कथा" में दर्शाया गया है। बड़ी बहन रानी बनकर भी अपनी छोटी बहन को नहीं भूल पाती। वह उसके मृत शरीर को पुनः जीवित करने में सफल हो जाती है और अन्त में दोनों सुखपूर्वक रहने लगती हैं। एक ऐसी कथा मिलती है जिससे मनुष्य की आदिमयुग की प्रवृत्ति का आभास मिलता है, जिसमें मनुष्य अधिकांशतः पशु–प्रवृत्तियों से प्रभावित था। उसके लिए मनुष्य भी भले ही उसका निकट संबंधी ही क्यों न हो वह उसका भोज्य पदार्थ था। "मनुष्य भक्षी की कथा" इसी तथ्य को उजागर करती है। इस कथा में सात भाईयों की एकमात्र बहन को छः भाई मारकर खा जाते हैं, क्योंकि सब्जी में गिरा उसका रक्त उन्हें बहुत स्वादिष्ट लगा था और उनके मन में एक अमानवीय भाव उठा था कि "जिसके रक्त के कुछ बून्द इतने स्वादिष्ट हैं, उसका माँस कितना सुस्वादु होगा।" इसी विचार से वे उसे (बहन को) मारकर खा जाते हैं। परन्तु छोटा भाई "लिटा" बहन को बहुत प्यार करता था। अतः वह उसका माँस नहीं खाया और उसे चींटी के बिल में गाड़ दिया, जिससे वह पुनर्जीवित हो उठी। इस कथा में भी छोटे भाई और बहन का अनन्य प्रेम उभर कर सामने आया है।

"हो" समाज में बड़े भाई की इज्जत अधिक होती है। सभी उसकी बातें मानते हैं और सहयोग देते हैं। इसका दृष्टान्त हमें "हेरोः पर्व की कथा" में मिलता है। सभी चार भाईयों के प्रयन्त से मिट्टी की मूर्ति जब स्त्री बन जाती है तो चारों भाई उसे अपनाना चाहते हैं। परन्तु पंचायत से फैसला होने पर सभी उसे बड़े भाई की पत्नी मान लेते हैं और सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें "हो" समाज में पंचों की महत्ता एवं उनके न्याय की मान्यता पर प्रकाश भी पड़ता है।

"हो" जाति के जीवन में पर्व–त्योहारों का विशेष महत्व है। सभी पर्व उनके कृषि जीवन से जुड़े हुए हैं। वे विभिन्न ऋतुओं में भिन्न–भिन्न पर्वों को सोल्लास मनाते हैं। इनके सभी पर्व सामूहिक जीवन–दृष्टि पर आधारित हैं। इनके मुख्य पर्व माघे, हेरो, बताउली, जोमनमा आदि हैं। 'हो' पर्व, कृषि कर्म एवं माह का विवरण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है:–

| पर्व | कृषि कार्य | महीना |
|---|---|---|
| 1. माघे पर्व या देशाउली बोंगा | फसल काटना, खलिहान में बीज निकालना | जनवरी, फरवरी |
| 2. बा पर्व | बेड़ा जमीन में बीज बपन, बसन्तागमन | मार्च, अप्रैल |
| 3. हेरो पर्व | खेत की जोताई एवं बुआई | मई, जून, जुलाई |
| 4. बताउलि पर्व | रोपनी का कार्य | जुलाई |
| 5. जोमनामा पर्व | नया धान की कटाई (गोड़ा धान की) | अगस्त, सितम्बर |
| 6. कॉलोम पर्व | धान काटकर खलिहान में लाना | नवम्बर, दिसम्बर |
| 7. मकर पर्व | धान की पिटाई आदि | दिसम्बर, जनवरी |

उपर्युक्त पर्व "हो" जाति के कृषि–जीवन से निकट सम्बन्ध रखते हैं। ये पर्व मात्र पर्व नहीं, वरन् विभिन्न देवताओं (बोंगा) की आराधना एवं बलि द्वारा उन्हें प्रसन्न करने का अनुष्ठान भी हैं। माघे में देशाउलि बोंगा, हेरो में देशाउलि और जाहेर बुड़ि (एरा), जोमनामा में सिंहबोंगा आदि देवताओं की पूजा "हो" जाति के लोग किया करते हैं। इन पर्वों की उत्पत्ति कथाएँ, "हो" लोक–कथाओं में पाई जाती है। "हेरो पर्व" की कथा में "हेरो" की उत्पत्ति का मिथ प्रस्तुत किया गया है। "हेरो" सृजन का पर्व है, ऐसा उक्त कथा से पता चलता है। "लक्ष्मी की कथा" में लक्ष्मी पूजा या सोहराई–बन्धना पर्व की उत्पत्ति की कथा कही गई है। "मागे या माघे पर्व" की कथा में माघे पर्व की उत्पत्ति की कथा है। माघ मास की पूर्णिमा के अवसर पर यह पर्व मनाया जाता है। यह देशाउलि बोंगा की पूजा है।

"हो" जीवन में लोक–विश्वास का बड़ा अधिक महत्व है। "हो" लोक–जीवन में "शकुन विचार" का भी पालन किया जाता है। विशेषकर शादी–ब्याह या अन्य शुभ यात्राओं के अवसर पर "हो" जाति के लोग शगुन एवं अपशगुन पर बहुत अधिक ध्यान देते हैं। विवाह ठीक करने हेतु जाते समय यदि कोई वृक्ष की डाल जाते हुए लोगों की बाएँ ओर गिरे तो वह लड़की के लिए अपशगुन है और दाहिनी ओर गिरने पर लड़के के लिए अमंगलकारी समझा जाता है। उक्त दल के मार्ग में दाहिनी ओर से यदि अकेला सियार, गिद्ध, गिरगिट या मधुमक्खियों का झुण्ड गुजर जाय तो लड़के के लिए और बायीं ओर से गुजरने पर लड़की के अमंगलकारी होता है। इसी प्रकार यदि कोई कृषक खेत जोतने जाते समय सर्प को विवर में प्रविष्ट होते देखता है तो यह फसल के खराब होने का सूचक है। यदि रोपनी, निकौनी आदि करने हेतु जाते समय डोंढ़ साँप को सिर उठाये देख लेता है तो इसे शुभ मानता है।[25] "हो" घर में जब चूहा देख लेते हैं तो उन्हें "चुरदु बोंगा" के आगमन का भय हो जाता है। जिसके आगमन से धन–धान की क्षति सम्भावित हो जाती है। कनगोजर अथवा कनखजुरा का दर्शन वे शुभ मानते हैं।[26] .

इसी प्रकार स्वप्न दर्शन के सम्बन्ध में भी उनके कुछ अपने लोक–विश्वास हैं। उन्हें यदि स्वप्न में बाघ का दर्शन हुआ तो उसे वे किसी राजसी उपलब्धि का कारक मानते हैं। यदि स्वप्न में हंड़िया पीना, मिरचा खाना या बिरनी से डंक मारा जाना देखते हैं तो समझते हैं कि कोई उनके साथ गाली–गलौज करेगा।

हाथियों को झुण्ड में देखना अच्छी फसल (धान) होने का सूचक है। यदि अपनी जमीन पर सामियाना गाड़ने का स्वप्न होता है तो यह अच्छी वर्षा का सूचक है। यदि स्वप्न में "सबई घास" या "पुआल काटना" दिखाई पड़े तो यह अकाल पड़ने का सूचक है। यदि उजली मछली पकड़ने का स्वप्न हो तो यह मुद्रा प्राप्ति का सूचक है। यदि बोआरी या गरई मछली पकड़ने का स्वप्न होगा तो यह किसी पुरूष के मरने का सूचक होगा। इसी प्रकार यदि निरगल, रेहू या पोठिया पकड़ने का स्वप्न होगा तो यह किसी स्त्री की मृत्यु का सूचक होगा। अगर कोई तेल लगाने का स्वप्न देखता है तो उसे जख्म होगा। यदि चिंटियों के दल के जाने का स्वप्न दिखता है तो यह किसी व्यक्ति की मृत्यु का सूचक है।

"हो" लोक–कथाओं में विभिन्न "बोंगा" (देवताओं) की पूजा–अर्चना एवं उनके आवास आदि का विवरण मिलता है। इन देवी–देवताओं की स्थिति एवं उनके प्रभाव आदि लोक–विश्वास पर आधारित हैं। लोक–विश्वास अधिकांशतः "हो" स्त्रियों में पाये जाते हैं, जिनमें मानव आदि की सृष्टि, उनके विकास–विनाश आदि की कथाएँ उपलब्ध हैं। अन्य जनजातियों की तरह "हो" जाति में भी अनेक देवी–देवता हैं जिन्हें मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया हैः–

1. बोंगा
   1. सिंहबोंगा -- सर्वशक्तिमान देवता, सूर्यदेव।
   2. मराङ बोंगा – अत्यधिक शक्तिशाली देवता।
   3. देशाउलि बोंगा – ग्राम देवता, जाहेर थान में निवास करने वाले देवता
   4. गुरू बोंगा – पहाड़ियों पर निवास करने वाले देवता
   5. बुरू बोंगा – तदैव
   6. असारो बोंगा – कृषि देवता
   7. बड़ा भोजनी बोंगा – ग्राम देवता
   8. गोटो बोंगा – पशुधन के देवता
   9. कोलोम बोंगा
2. एरा
   1. नगे एरा – जल देवी (वरूण)
   2. बिन्दी एरा – तदैव
   3. बन्धा नगे एरा – तदैव
   4. बगेया एरा – वृक्ष पर वास करने वाली देवी (आत्मा)
   5. कुदरा एरा – वन देवी

इसके तीन रूप हैं।

(क). भरम कुदरा -- उच्च भूमि पर वास करने वाली।

(ख). धन कुदरा – शिशु भक्षिणी

(ग). बुनुम कुदरा – जादूगरों द्वारा निर्देशित।

**3. रोआ** :– "रोआ" का अर्थ "हो" में छाया या आत्मा होता है। उनके लोक–विश्वास के अनुसार मृत्यु पश्चात आत्मा शरीर से निकल कर अपने "कब्र" के निकट भटकती रहती है और उसे वर्षा, ग्रीष्म, शरद आदि ऋतुओं में कष्ट झेलना पड़ता है। अतः "हो" अपने पूर्वजों की आत्मा (रोआ) को अपने घरों में ही आमंत्रित कर निवास हेतु अनुनय–विनय करते हैं। वे "अदिङ" (रसोईघर) में उनके आवास के लिए एक चबूतरानुमा ऊँचा स्थान मिट्टी से बना देते हैं। सामूहिक रूप से ये "हम–हो" या "ओवा–बोंगा" के नाम से जाने जाते हैं। पर्व के अवसर पर ग्रामवासियों द्वारा सामूहिक रूप से उनकी पूजा–अर्चना की जाती है।

"हो" लोक कहानियों में बोंगा, एरा और रोआ का प्रसंग, उनका प्रभाव, उनका वरदान अथवा अभिशाप आदि की कथाएँ प्रचलित हैं। जैसा कि ऊपर वर्णित है, सिंहबोंगा सर्वशक्तिमान देवता हैं, जिन्हें "हो" सबसे अधिक आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। "हो" लोक–विश्वास के आधार पर सृष्टि की रचना के कारक सिंगबोंगा ही हैं। "धरती बनने की कथा", "पेड़–पौधे आदि बनाने की कथा",

''मानव के सृजन की कथा'' आदि सृजन कथाओं में सभी जीवों के सृजन के प्रणेता सिंहबोंगा ही हैं। यही नहीं, सृष्टि के विनाश के भी वे ही कारक हैं। ''सिंहबोंगा'' में सनातन धर्म के ब्रह्मा, विष्णु और महेश – तीनों एकात्म होकर प्रकट हुए हैं। ''सेंगेल गमा'' (अग्नि वर्षा) का आयोजन सिंगबोंगा ही करते हैं, जो ''अग्नि प्रलय'' के सदृश है। इस प्रलय का कारण भी पृथ्वी पर पाप का अधिक्य होना बताया जाता है। यह ''सेंगेल गमा'' ''हो'' लोगों के इस लोक–विश्वास पर आधारित है कि सिंगबोंगा को अप्रसन्न करने पर सर्वनाश अवश्यम्भावी है। अतः सिंगबोंगा को वे कभी अप्रसन्न करना नहीं चाहते।

''असुर की कथा'' में भी ''सिंगबोंगा'' के कोप का दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है। ''सिंगबोंगा'' विनाश करने के पहले बहुत अधिक चेतावनी देते हैं, यह ''हो'' लोक–विश्वास का अभिन्न अंग है। ''सिंगबोंगा'' पहले विभिन्न सन्देशवाहकों को भेजकर असुरों को सद्मार्ग पर चलने का संदेश भेजते हैं। जब असुर अपनी असुरी प्रवृत्ति को नहीं छोड़ते हैं तो उनका सर्वनाश करने के लिए ''सिंगबोंगा'' स्वयं अवतरित होते हैं और उनका (असुरों का) विनाश करते हैं। ''अग्नि वर्षा'' मिथ में ही ''नगे एरा'' का भी प्रादुर्भाव हुआ है, जो अग्नि प्रलय से मानव एवं अन्य जीव को अपने जलागार में ले जाकर बचा लेती है। अतः ''नगे एरा'' दया की देवी सिद्ध होती है। ''नगे एरा'' ही मानव–सृष्टि को बचाने में समर्थ हुई। ''हो'' लोक–विश्वास के अनुसार ''सिंगबोंगा'' के श्राप से ही अब ''नगे एरा'' जलाशय में इधर–उधर भटकती रहती है।

''लक्ष्मी की कथा'' में ''गोटो बोंगा'' या ''गोवा बोंगा'' की उत्पत्ति वर्णित है। यह ''हो'' जाति के कृषि जीवन एवं पशुधन के प्रति स्नेह एवं लगाव का परिचायक है। ''हो'' अब गोटो बोंगा की पूजा श्रद्धापूर्वक करते हैं जिसमें ''गोड़'' या ''गोप'' जाति के लोग भी सम्मिलित होते हैं। इसमें यह लोक–विश्वास है कि ''गोटो बोंगा'' की कृपा पर ही पशुधन का विकास निर्भर करता है।

''मागे पर्व'' की कथा में यह वर्णित है कि इस अवसर पर ''देशाउलि'', ''जाहेर एरा'' एवं ''सिंगबोंगा'' की पूजा होती है। ''मागे पर्व'' या ''माघे पर्व'' वंश वृद्धि की कामना का पर्व है। यह भारत के अन्य क्षेत्रों में विशेषकर बिहार में मनाया जाने वाला ''होली'' पर्व का पर्याय है। परन्तु ''होली'' के हर्षोल्लास के साथ–साथ विभिन्न देवताओं ''देशाउली'' आदि की पूजा–अर्चना का अनुष्ठान इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस पर्व को शुभारम्भ करने के लिए गाँव के पुजारी (दिउरी) को अपनी पत्नी के साथ दो दिनों तक उपवास व्रत करना पड़ता है और पूरी पवित्रता से इस पर्व का अनुष्ठान करना पड़ता है। ''धरती की पूजा'' इसमें डियङ (हंड़िया) से की जाती है, जो नये चावल से बनाया जाता है। इस पर्व में भी ''गोटो बोंगा'' की पूजा होती है।

''हेरो पर्व की कथा'' में भी ''सिंगबोंगा'' की पूजा–अर्चना से जीवन का सृजन की कथा परिलक्षित है। ''मिट्टी की काया'' में प्राण डालना ईश्वर का कार्य है, यह सर्वमान्य लोक–विश्वास है। ''हेरो'' पर्व सृजन का पर्व है। इस पर्व में अभी भी ''हो''

लोग प्रतीक के रूप में भीति–चित्र बनाते हैं। खेतों में बीज–वपन का कार्य सृजन के कार्य के शुभारम्भ का परिचायक है। "जोमनामा" पर्व भी "सिंहबोंगा" एवं लक्ष्मी की अर्चना का पर्व है, जिसमें नये अन्न को उनके प्रति अर्पित करने के बाद ही ग्रहण किया जाता है।

"जोमनामा" पर्व आते ही ग्रामवासी गा उठते हैं:–

"भादो चन्डु सेटेर याना
नामा बाबा तियार याना,
दोलारेया हागा मिसी बाबा ईरेते।
बाबाम ईरेया सेरेसेरे,
बाबाम दुपीले गासा–गासा
लक्ष्मी एंगा ओड़ातेबु केयादारोमी।1

(हे भाई–बहनों! नया धान तैयार होकर पक गया है, अब उसे काटने चलें। उसे काटकर और ढोकर अपने निवास स्थान में आज लक्ष्मी माँ का स्वागत करें)

आगे वे अपने पितरों के साथ–साथ "सिंगबोंगा" का आह्वान एवं अर्चना निम्न प्रकार से करते हैं:–

"मान्डी–डियाङ जोमनु केयते,
पितरू–माता कजिः केयते,
दोला रेया हागा–मिसी सुसुन आकाड़ाते।
जोहार तानाले सिंगबोंगा,
गोहारी तानाले सिंगबोंगा,
नेलेका गेया जोम–नु सुकु दिमसी ऐमालेम।

अपने पितरों को नया धान का भात (मांडी) और हंडिया (डियङ) का भोग अर्पित कर हमलोगों ने भी भोजन कर लिया। अतः हे भाई–बहन ! अब नृत्य स्थल में चलें। हे भगवान (सिंगबोंगा)! हमलोग आपसे विनती करते हैं कि हमें सदा इसी तरह ही सुखी बनाये रखें। इस प्रकार पूरी निष्ठा और पवित्रता का पर्व "जोमनामा" है, जिसमें समर्पण की भावना सर्वोपरि है। "हो" लोगों में यह लोक–विश्वास है कि "हंड़िया", "जाति–प्रथा" कर्म का सृजन (बँटवारा) आदि का कार्य "सिंगबोंगा" द्वारा ही किया गया है। यह "जाति एवं कर्म के बँटवारा" की कथा में परिलक्षित होता है।

"पुनर्जन्म" या पुनः जीवित होने की परिकल्पना भी "हो" लोक–विश्वास का एक महत्वपूर्ण अंग है। "हो" लोक–साहित्य में अनेक ऐसी कथाएँ उपलब्ध हैं जो उनके इस लोक–विश्वास की पुष्टि करती है। "हो" लोगों के अनुसार आत्मा मरती नहीं है, वह शरीर को छोड़कर बाहर चली जाती है। "रोआ" की परिकल्पना का यही आधार है। पुनर्जन्म या फिर से जीवित होने का लोक–विश्वास "मनुष्य भक्षी की कथा", "कुम्हार के लड़के की कथा" आदि में हम स्पष्ट रूप से पाते हैं। उनके लोक–विश्वास के अनुसार "शरीर का कोई अंग या हड्डी मिल जाने से "सिंगबोंगा" की कृपा प्राप्त कर सम्बन्धित व्यक्ति को जीवित किया जा सकता है और इसकी पुष्टि उक्त कथाओं में की गयी है।

''हो'' लोगों में यह लोक–विश्वास प्रचलित है कि नवजात शिशु का ''नाल पुरइन'' घड़ा में रखकर इस प्रकार सुरक्षित जमीन में गाड़ दिया जाय, ताकि उसे कोई पशु या वन्य जीव खा नहीं सके। यदि उसे कोई कुत्ता या अन्य जानवर खा जायेगा तो वन में जाने पर उस बालक को बाघ खा जायेगा। इसलिए ''हो'' लोग ''नाल पुरइन'' को गाड़कर उसकी रक्षा करते हैं। ''नाल पुरइन'' के गाड़ने की घटना पर आधारित गोत्र कथा में ''तुबिड गोत्र'' का प्रसंग आया है। ''हो'' के शिशुओं के जन्म के समय जिन पशु–पक्षियों ने मदद की अथवा शुभ संवाद दिये (बोली बोलकर) उनके नाम पर उस शिशु का गोत्र निर्धारित हुआ। ''हो'' लोक–विश्वासों के अनुसार वन प्रान्तर में पये जाने वाले पशु–पक्षी, नदी, झरना, वृक्ष, पुष्प, फल आदि उनके जीवन के सहायक हैं और सभी ''सिंगबोंगा'' द्वारा सृजित हैं। अतः प्राकृतिक पदार्थ ही ''हो'' जाति के गोत्र–प्रतीक बन गये।

''हो'' लोगों में ''फल'' खाने से (आम का फल) गर्भ ठहरने और सन्तानोत्पत्ति का भी लोक–विश्वास है। यह लोक–विश्वास ''दुष्ट रानी की कथा'' में उभर कर सामने आया है। एक विशेष समारोह या अनुष्ठान करके ''फल'' या अन्य प्रकार का कन्द–मूल सेवन करने से सन्तानोत्पत्ति का लोक–विश्वास उनमें प्रबल है।

''हो'' लोगों में यह लोक–विश्वास बहुत प्रबल है कि मरणोपरान्त मृतात्माएँ पुनः उनके घरों में आ सकती हैं। वे इन प्रेतात्माओं से बहुत भयभीत एवं आतंकित रहते हैं। जब वे मृत व्यक्ति को कब्र में गाड़कर पुनः उसका ''फेरा'' देने जाते हैं (संध्या काल) तब वे घर में एक विशिष्ट स्थान पर राख सूप से फैला देते हैं। उनकी यह धारणा है कि मृतात्मा यदि उनके घर में आयेगी तो राख पर उसके पद चिन्ह अवश्य अंकित हो जायेंगे। जब वे वापस आकर उस पर (राख पर) किसी प्रकार का चिन्ह देखते हैं तो आतंकित होकर चीखना–रोना शुरू कर देते हैं।[27] ''प्रसव'' में कष्ट या कठिनाई होने पर ''हो'' जाति में यह लोक–विश्वास है कि यह ''खराब नजर'' का प्रभाव है या पुत्री का विवाह पूर्व किसी युवक से अवैध सम्बन्ध का प्रभाव है। ऐसी स्थिति में वे ''सिंगबोंगा'' को एक सफेद मुर्गा की बलि देते हैं और इस प्रकार प्रसव बिना पीड़ा के शिशु का जन्म होता है।[28]

गर्भवती स्त्री की अकाल मृत्यु पश्चात् वह प्रेतात्मा बन जाती है और गर्भवती स्त्रियों को प्रभावित करती है और प्रसव में बाधा देती है, ऐसा भी ''हो'' लोगों की धारणा है। अकाल मृत्यु का कारण वे कोई बुरी नजर (डायन आदि का) या किसी प्रेतात्मा (बोंगा) का कोप मानते हैं।[29]

''हो'' लोगों का यह लोक–विश्वास है कि सामान्य मृत्यु होने पर आत्मा (रोआ) किसी न किसी जीवधारी के रूप में पुनः जन्म ले लेती है। उनके मतानुसार भी आत्मा अमर है। पुनर्जन्म को अनेक कथाओं पर पूर्व में विचार किया गया है, जिनमें मनुष्य का पुनर्जन्म मछली के पेट से या वृक्ष से हुआ है। किसी व्यक्ति के मरने के तीन दिन बाद ''हो'' एक सगुन करते हैं, जिसके माध्यम से वे समझ या जान जाते हैं कि मृत व्यक्ति का जन्म किस रूप में हुआ है। वे घर में (रसोईघर में) राख फैला देते हैं। एक आदमी और एक औरत दो कोने में बैठ जाते हैं। घर का किवाड़ बन्द

कर पुरूष सदस्य पूछता है –"सुखिला कि दुखिला" (प्रवेश किया या नहीं)। राख पर यदि किसी चिड़िया या कीड़ा–मकोड़ा का चिन्ह मिल गया तो समझते हैं कि उसका (मृतात्मा का) पुनर्जन्म चिड़िया आदि में हो गया। अगर मनुष्य का पैर आदि छाप मिला तो उसे मनुष्य के रूप में पैदा हुआ मानते हैं, यह "हो" लोगों का लोक–विश्वास है। इस आयोजन/समारोह को "हो" "उम्बुल केया आदेर" अथवा "राअः बोंगा आदेर" कहते हैं।[30]

"हो" का अन्तिम संस्कार (मरणोपरान्त) "जंङ तोपा" (अस्थि विसर्जन) होता है। पूर्व की कहानियों में हम विचार कर चुके हैं कि किसी मृत व्यक्ति की हड्डी या अवशेष जमीन में गाड़ देने से वह पुनः कुछ काल बाद जीवित हो उठा। "हो" दाह–संस्कार के दूसरे दिन एक काँसा का सुराही में गढ़ा (कब्र) खोद कर अस्थि अवशेष को गाड़ देते हैं। सम्पन्न परिवार में काँसा का सुराही और गरीब परिवार में नये घड़े में अस्थि रखकर गाड़ देते हैं।

इसी समारोह को "जंङ तोपा" कहा जाता है। इस अवसर पर उनके नगाड़े से स्वर आता है –"तोपा तोपा – जंङ तोपा" ये बन्दूक की गोली छोड़कर या अन्य रूप से इसकी सूचना प्रसारित कर देते हैं।[31]

## सन्दर्भ ग्रंथ


1. श्री चन्द्र जैन, लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृष्ठ संख्या 130।
2. श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित, संत काव्य में लोक संस्कृति, "समाज" त्रैमासिक, अक्टूबर 1958, पृष्ठ संख्या 450।
3. डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार (प्रस्तावना), पृष्ठ संख्या 4–5।
4. श्री चन्द्र जैन, लोक कला विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृष्ठ संख्या 132।
5. श्री चन्द्र जैन, लोक कला विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृष्ठ संख्या 132।
6. प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी, भारतीय संस्कृति : मेरी दृष्टि में आदिवासी, अंक अक्टूबर 1978, पृष्ठ संख्या 5।
7. श्री टायलर, प्रिमिटिव कल्चर, 1871, पृष्ठ संख्या 1।
8. श्री मैलिनोवास्की, इनसाइक्लोपिडिया ऑफ सोशल सायन्सेज, 1931, पृष्ठ संख्या 621।
9. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 84।
10. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 58–86।
11. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 92।
12. श्री त्रिलोकी नाथ दीक्षित, संत काव्य में लोक संस्कृति "समाज" अक्टूबर 1958, पृष्ठ संख्या 18।
13. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 108।
14. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 107।

15. श्री चन्द्र जैन, लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृष्ठ संख्या 136।
16. डॉ० सम्पूर्णानन्द ''समाज'' पत्रिका, अक्टूबर 1958, पृष्ठ संख्या 421।
17. आदित्य प्रसाद सिन्हा, हो लोक कथा : एक अनुशीलन, मध्यमेश्वर दारानगर वाराणसी, प्रथम संस्करण, 15 अगस्त 1997, प्रकाशक, किशोर विद्या निकेतन, बी० 2/236 ए०, भदैनी, वाराणसी–221001, पृष्ठ संख्या 105।
18. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 107।
19. श्री चन्द्र जैन, लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृष्ठ संख्या 136।
20. श्री जे० डीनी, एस०जे०, हो ग्रामर एण्ड वोकेबुलारी, जेवियर ''हो'' पब्लिकेशन, लुपुंगुट्टू, चाईबासा, सिंहभूम, पृष्ठ संख्या 110–119।
21. श्री जे० डीनी, एस०जे०, हो ग्रामर एण्ड वोकेबुलारी, जेवियर ''हो'' पब्लिकेशन, लुपुंगुट्टू, चाईबासा, सिंहभूम, पृष्ठ संख्या 119।
22. श्री योगेन्द्र मुनि तथा ''हो'' दिशुम ''हो'' होनको, भाग–1, धनुर सिंह पूर्ति, आदिवासी–21 अगस्त 1980, पृष्ठ संख्या 516।
23. श्री नोबेल जोजोवार, बिहार प्रशासनिक सेवा, कथित एवं सम्पुष्ट तथ्यों के आधार पर संकलित।
24. श्री सी०पी० सिंह, द ''हो'' ट्राइब ऑफ सिंहभूम क्लासिकल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1980, पृष्ठ संख्या 16।
25. श्री सुकुमार हलदार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, मार्च 1917, भोल्यूम–3, पार्ट–1, पृष्ठ संख्या 280।
26. श्री सुकुमार हलदार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, मार्च 1977, भोल्यूम–3, पार्ट–1, पृष्ठ संख्या 280।
27. श्री गिरिन्द्र नाथ सरकार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1919, भोल्यूम–2, भाग–1।
28. श्री गिरिन्द्र नाथ सरकार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1919, भोल्यूम–2, भाग–1, पृष्ठ संख्या 135।
29. श्री गिरिन्द्र नाथ सरकार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1919, भोल्यूम–2, भाग–1, पृष्ठ संख्या 136।
30. श्री गिरिन्द्र नाथ सरकार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1919, भोल्यूम–2, भाग–1, पृष्ठ संख्या 139।
31. श्री गिरिन्द्र नाथ सरकार, द जनरल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1919, भोल्यूम–2, भाग–1, पृष्ठ संख्या 141–142।

# चतुर्थ अध्याय
# हो लोक गीत

## (क) वर्गीकरण :

### (1) राग के आधार पर (2) मौसम के आधार पर

गीत की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए महादेवी वर्मा ने लिखा है –"सुख–दुख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रत्येक मानव चाहे वह सभ्य हो अथवा असभ्य, शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, उसमें अपनी अनुभूति को व्यक्त करने की इच्छा और क्षमता निश्चित रूप से होती है। आदिम मानव भी स्वानुभूति से प्रेरित होकर जब उसकी रागात्मक प्रवृत्ति लयबद्ध होकर निकलती है, तभी गीत का रूप धारण कर लेती है। आदि मानव के हृदय से जो भावनाएँ निसृत हुई होगी, वे ही आगे चल कर लोकगीतों के रूप में परिवर्तित हो गयी होगी। यही भाव अभिव्यक्त होकर अंकित हो जाते हैं और वहाँ की मिट्टी बोलने लगती है, खेत और खलियान गुनगुनाने लगते हैं, गलियारे, आँगन और अखरा नाच उठते हैं। "इन गीतों के प्रारम्भ के प्रति एक सम्भावना हमारे पास है, पर उसके अन्त में कोई कल्पना नहीं। यह वह बड़ी धारा है, जिसमें अनेक छोटी–मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गम्भीर बना दिया है। सदियों के घात–प्रतिघात ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने उसमें अपने मन के ताने–बाने बुने हैं। स्त्री–पुरूष ने थक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम–मस्ती आयी है, बूढ़ों ने मन बहलाए हैं। बैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, बिरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की है, किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियों ने चुटकले छोड़े हैं।"[1]

लोकगीत किसी व्यक्ति द्वारा रचित नहीं होते, न ही ये जन–मानस की अज्ञात सृष्टि है। प्रश्न उठता है तब फिर से ये गीत कहाँ से आते हैं ? इस सम्बन्ध में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है – कहाँ से आते हैं इतने गीत ? स्मरण–विस्मरण की आँख–मिचौनी से। कुछ अट्टहास से, कुछ उदास हृदय से। कहाँ से आते हैं इतने गीत ? जीवन के खेत में उगते हैं ये सब गीत। कल्पना

भी अपना काम करती है, रस वृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी, पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख, जीवन के दुःख, ये हैं लोकगीत के बीज।"[2]

लोकगीत लोक–जन द्वारा विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। सामाजिक चेतना के विकास के साथ–साथ लोकगीतों का जन्म हुआ। इसका सम्बन्ध जीवन के साथ है। धीरे–धीरे मानव में ज्ञान का विकास हुआ और उसने लयबद्ध वाणी में अपने सुख–दुःख की कहानी को कहना प्रारम्भ किया। यही कारण है कि आदिकाल के गीतों में मानव की सामूहिक भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं।

लोकगीत किसी एक व्यक्ति द्वारा रचित नहीं होते और न ही सामूहिक रूप से रचे गये होते हैं, बल्कि इसकी रचना स्वतः होती है। लेकिन इस पर विचार करने पर यह स्पष्ट जान पड़ता है कि कभी न कभी, किसी न किसी व्यक्ति के द्वारा गीत की रचना अवश्य की गई होगी, भले ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कंठ से हस्तान्तरित होते–होते परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं। गीतों के क्षेत्र विस्तार के साथ उसके रचयिता का नाम विलीन हो गया है, ऐसा माना जाना स्वाभाविक है। "आदिम मनुष्य–हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करूण की, उसके समस्त सुख–दुःख की कहानी इसमें चित्रित है।"[3] लोकगीतों के द्वारा इसके जन–जीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं। जीवन की प्रत्येक अवस्था से, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लोकगीत समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्ति दिया करते हैं। विभिन्न ऋतुएँ एवं उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत मानव के सामूहिक श्रम, उल्लास तथा संघर्ष की कथाएँ ही हैं। प्रायः विभिन्न ऋतुओं में सामाजिक स्तर–भेद को लोकगीत ही मिटाते हैं।

## लोकगीत की परिभाषा :

लोकगीत के सम्बन्ध में पश्चात्य तथा विवेचनकर्त्ताओं ने विभिन्न प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं। कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं:–

"लोकगीत तो स्वतः जन्मा है।"[4] "आदिमानव के उल्लासमय संगीत को ही लोकगीत कहते हैं।"[5] लोकगीत न तो नया होता है और न पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें भूतकाल की जमीन में गहरी धँसी हुई है, परन्तु जिसमें निरन्तर नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं।"[6]

**भारतीय विद्वानों ने अपनी–अपनी परिभाषाओं में कहा है:–**"लोकगीतों का मूल जातीय संगीत में है।"[7] "लोकगीत उन लोगों के जीवन का स्वेदपूर्ण प्रवाह है, जो आदिम अवस्था में जीवन बिताते हैं।"[8] "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"[9] "ग्रामगीत सम्भवतः वह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म या क्रीड़ा के ताल पर रखा गया है। गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है।"[10] "लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है, जो विश्व मानव को धरती पर प्राप्त हुई है।"[11] "लोकगीतों में संगीत एवं काव्य का सम्मिश्रण होता है।"[12] "लोकगीत हमारे जीवन–विकास का इतिहास है।"[13]

"लोकगीत स्वतः स्फुरण की देन है।"[14] "लोकगीत रस से सने हुए हैं।"[15] "लोकगीत मानव ह्रदय की प्रवृत्त भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर या ताल को प्रधान तान देकर लय या धुन प्रधान होते हैं।"[16]

**डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार**–"ग्रामगीत और लोकगीत भिन्न–भिन्न हैं। उनके अनुसार "बैलेड" लोकगीत हैं और "फोकसाँग" ग्रामगीत। उनका कहना है –"ग्रामगीत से मेरा आशय उन गीतों से है जो गेय है। लोकगीत वे हैं जो प्रबन्धात्मक हैं और इसमें कथा की प्रधानता है।"[17] "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं।" – पं० रामनरेश त्रिपाठी, "ग्रामगीत छोटे होते हैं और रचनाकाल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते हैं।"–कृष्णानन्द गुप्त, "ग्रामगीत छोटा ही नहीं बड़ा भी हो सकता है।"–डॉ० सत्येन्द्र, "ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं।" – पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

ऊपर की परिभाषाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुकरण पर ही अन्य विद्वानों ने भी "ग्रामगीत" शब्द का प्रयोग फोकसाँग (लोकगीत) के पर्याय के रूप में किया है। राजस्थानी लोकगीत में सर्वप्रथम श्री सूर्यकरण पारीक ने ग्रामीण शब्द का विरोध कर "लोकगीत" को उपयुक्त स्वीकार किया। इसके पश्चात पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने "लोक" शब्द की स्थिरता पर प्रकाश डाला। द्विवेदीजी ने लोक संस्कृति, लोककला, लोकसाहित्य आदि शब्दों का प्रयोग कर ग्राम और नगर के भेद को अस्वीकार कर दिया। स्वर्गीय झवेरचन्द्र मेधाणी ने त्रिपाठी जी से पूर्व ही लोकगीत शब्द का प्रयोग गुजराती में किया।[18]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हो लोकगीत के संदर्भ में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला जा सकता है:–

हो लोकगीतों में जीवन की विभिन्न रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के जिस शैली का आश्रय लिया जाता है, वह लयात्मक होती है। "हो" लोकगीत मानव सभ्यता और क्षेत्रीय संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं। वे लोकगीत स्वतः स्फूर्जित रससिक्त उद्‌गार है। लोकगीतों में सामूहिक प्रवृत्ति व्यापक है। चूँकि इन गीतों में व्यक्ति विशेष की रचनाएँ भी सामूहिक भावनाओं में ढल कर सामान्य हो जाती है, फलतः ये लोकगीत मानवीय कर्मों के प्रेरणा स्त्रोत बन जाते हैं।

## लोकगीतों का वर्गीकरण :–

"हो" लोकगीतों में भी विभिन्न बोलियों की तरह विभिन्न विषयों का समावेश होता है। "हो" लोकगीतों में मानवीय भावों, विचारों एवं परिस्थितियों की समानता दिखाई पड़ती है। "हो" भाषी क्षेत्र के लोक साहित्य में ऐसे अनेक संकेत प्राप्त होते हैं, जिनके माध्यम से हम उनका सम्बन्ध पुरानी संस्कृति से जोड़ सकते हैं। लोकगीत धरती के गीत हैं, इसलिए धरती से अलग उनका अस्तित्व नहीं है। "हो" लोकगीतों में जीवन की घटनाओं का समावेश है। मानव जीवन की घटनाओं में

जन्म, विवाह एवं मृत्यु तो प्रमुख हैं ही, साथ ही जीवन के उल्लास के भी कई अंग हैं। अधिकांश हो लोकगीत इन्हीं विषयों से सम्बन्धित हैं।

लोकगीतों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से लोकगीतों का वर्गीकरण किया है, इस संबंध में सत्यव्रत अवस्थी ने लिखा है–" लोक एक अविभाज्य संज्ञा है, अतः यथार्थ अर्थों में लोकगीतों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।"[19] "शुद्ध वर्गीकरण के लिए वस्तुओं को परस्पर सम्बन्धित नहीं होना चाहिए, पर लोकगीतों में हम ऐसा नहीं कर पाते, क्योंकि उनका लोक जीवन के हर पहलू से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है। अतः उनको एक दूसरे से नितान्त अलग रखना सम्भव नहीं।"[20]

रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीतों का वर्गीकरण निम्न श्रेणियों में किया है, जो निम्न प्रकार है[21]:–

1. संस्कार सम्बन्धी गीत,
2. रोपनी के गीत,
3. धर्मगीत–त्योहारों पर गाने वाले गीत,
4. ऋतु सम्बन्धी गीत–हेरो, बताउल के गीत,
5. खेती के गीत,
6. गीत कथा–छोटी–छोटी कहानियाँ जो गा–गाकर कही जाती है।

श्री भालेराव ने लोकगीतों को चार बड़े समूहों में बाँटा है।

**1. संस्कार विषयकः**–1. विवाह गीत, 2. लड़का–लड़की के हल्दी लेपन के गीत, 3. लड़की के रोने के गीत, 4. बारात विदाई के गीत, 5. वधू मूल्य गीत, 6. भरनी या डाक के गीत (साँप काटने पर)।

**2. माहवारी गीतः**–1. मागे पर्व गीत, 2. अनादेर पर्व, 3. हेःए साकाम, 4. ओते ईलि, 5. गौमहरा, 6. गुरीईः पर्व, 7. मरङ मागे पर्व, 8.मागे मरङ जतरा पर्व, 9. हर मागेया पर्व।

**2. बाः गीतः**–1. जादुर, 2. गेना, 3. चांगुड़िया, 4. खेमटा, 5. गड़ुवा।

**3. हेरो पर्वः**–1. बताउली, 4. जोमनामा पर्व।

**3. सामाजिक ऐतिहासिकः**–1. सिंङबोंगा के गीत, 2. पूजा–पाठ के गीत, 3. गोहारि गीत, 4. गणतंत्र दिवस, 5. दिशुम झंडी उदुबे तना, 6. बिरसा मुण्डा के गीत, 7. बापू जी के गीत।

**4. विविधः**–1. खेती की कहावतें, 2. धान रोपनी के गीत, 3. धान काटने के गीत, 4. सिंङबोंगा के गीत।

उपर्युक्त वर्गीकरण काफी विस्तृत है, किन्तु यह वर्गीकरण उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। राजस्थानी लोकगीतों के विद्वान पं० सूर्यकरण पारीक ने राजस्थानी गीतों का क्षेत्र विस्तार बताते हुए उन्हें 29 भागों में इस प्रकार बाँटा हैः–1. देवी–देवताओं और पितरों के गीत, 2. ऋतुओं के गीत, 3. तीर्थों के गीत, 4. व्रत–उपवास और त्योहारों के गीत, 5. संस्कारों के गीत, 6. विवाह के गीत, 7. भाई–बहन के प्रेम गीत,

8. साली–सलिल्यों (सरहज) के गीत, 9. पति–पत्नी के प्रेम गीत, 10. पानिहारियों के गीत, 11. प्रेम के गीत, 12. चक्की पीसते समय के गीत, 13. बालिकाओं के गीत, 14. चरखे के गीत, 15. प्रभाती गीत, 16. हरजस राधाकृष्ण के प्रेम गीत, 17. धमाले – होली के अवसर पर पुरूषों द्वारा गेय गीत, 18. देश–प्रेम के गीत, 19. राजकीय गीत, 20. राजदरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत, 21. जम्मे के गीत–वीरों व सिद्ध पुरूषों के गीत, 22. (क). वीरों के गीत, (ख). ऐतिहासिक गीत, 23. (क). गवालों के गीत, (ख). हास्य रस के गीत, 24. पशु–पक्षी सम्बन्धी गीत, 25. शान्त रस के गीत, 26. गाँवों के गीत (ग्राम गीत), 27. नाट्य गीत, 28. विविध।

पं० पारीक के वर्गीकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें किसी प्रकार का क्रम नहीं है। इस वर्गीकरण में अनावश्यक संख्या बढ़ाई गयी है। कई गीतों को, जैसे – श्रृंगार और वीर रस के गीतों को एक ही श्रेणी में रखा जा सकता है। पति–पत्नी तथा भाई–बहन के प्रेम गीतों को भी ऋतु सम्बन्धी गीतों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

**डॉ० सत्येन्द्र ने कई दृष्टियों से लोकगीतों के प्रकारों पर विचार करते हुए कहा है** –''जीवन के जटिल रूप के अनुरूप जटिल उद्देश्यों की परिपूर्ति के प्रयत्न में लोकगीतों के भी जटिल प्रकार प्रस्तुत हुए। अतः कई दृष्टियों से लोकगीतों के प्रकार को समझना आवश्यक होगा।''[22]

गीतों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर वर्गीकरण किया जाता है। कौन सा गीत किस अवसर पर गाया जाता है, इस आधार पर इनका विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है:–

लोकगीत

आनुष्ठानिक | उद्योग सम्पर्कित | तिथि धारक

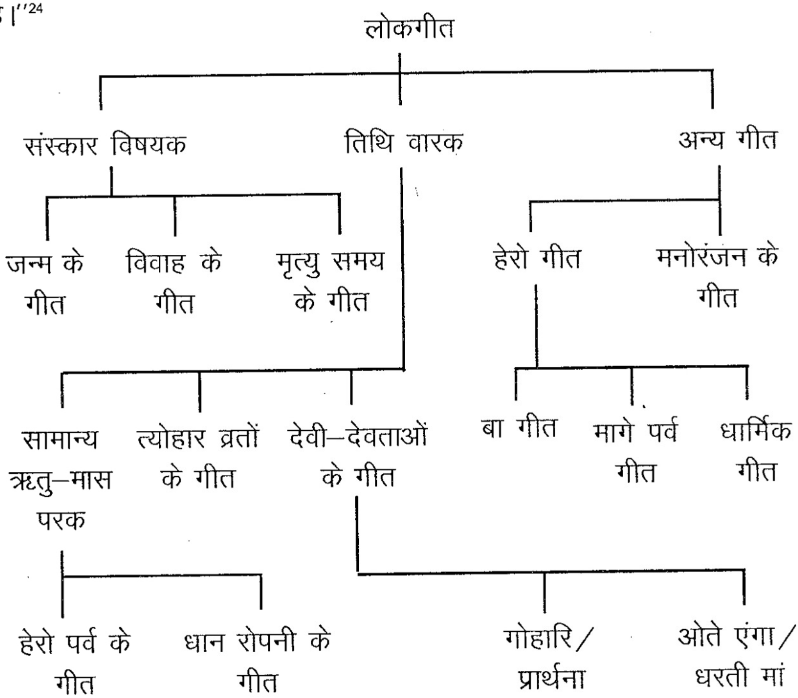
आनुष्ठानिक लोकगीत जन्म, विवाह, मरण तथा अन्य विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाये जाते हैं। इन अवसरों पर विशेष अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता है और इन्हीं अवसरों पर ये लोकगीत गाये जाते हैं। संस्कार और मानवीय कार्य कलाप, विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं और इन्हीं से होकर मनुष्य मात्र की जीवन धारा प्रवाहित होती रहती है। इनका अतिक्रमण नहीं होता, अगर कहीं होता है तो उसको सामाजिक, धार्मिक एवं ऐसी ही किसी क्रांति के नाम से जाना जाता है। वास्तव में संस्कारों के द्वारा ही जीवन में नियमितता तथा व्यवस्था आती है। वास्तव में हमारी संस्कृति का मुख्य ध्येय है मनुष्य के विचारों का परिष्कार करना तथा आदर्श बनाना। इसके लिए हिन्दू धर्म में विशेषतः संस्कारों का समावेश है, जो जीवन के प्रथम चरण से आरम्भ होते हैं और अन्त तक रहते हैं।

''मानव की प्रायः प्रत्येक संस्कृति में व्यक्ति की जीवन–यात्रा की विभिन्न तीन मुख्य स्थितियाँ हैं, जिनके आस–पास मानव समूह विश्वासों, रीति–रिवाजों और

व्यवहारों का एक ऐसा जटिल ताना–बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्रण प्राप्त नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त नामकरण, वयः संधि, राजोदर्शन आदि की स्थितियाँ भी महत्वपूर्ण होती हैं और अनेक संस्कृतियों की समाज व्यवस्था में उन्हें पार करने से व्यक्ति भी सामाजिक स्थिति एवं उसके अधिकारों और कर्त्तव्य से मूलभूत परिवर्तन हो जाते हैं। समाज संगठन का यह पक्ष मानव के उत्तरोतर परिवर्तन होने वाले उत्तरदायित्वों एवं कार्यों की दिशा निश्चित करती हैं।"[23]

संस्कारों के सम्बन्ध में विद्वानों ने बताया है कि प्राचीन काल में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित 16 संस्कारों का विधान था, जो सभी शास्त्रीय थे और जिनका सम्बन्ध जीवन के आरम्भ से अन्त तक के काल से था।

"सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार सोलह हैं, यद्यपि विभिन्न ग्रन्थों में उनकी संख्या भिन्न–भिन्न है। आधुनिकतम पद्धतियों में यह संख्या स्वीकृत कर ली गयी है।"[24]




इसके अतिरिक्त भी डॉ० सत्येन्द्र ने स्त्रियों के प्रत्येक गीत का विस्तार में विभाजन किया है।

**डॉ० श्याम परमार ने लोकगीतों को पाँच भागों में बाँटा है:**–1. जातियों की दृष्टि से, 2. संस्कारों और प्रथाओं की दृष्टि से, 3. धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से, 4. कार्य के सम्बन्ध की दृष्टि से तथा 5. रस–सृष्टि से।[25]

**डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है**—1. संस्कारों की दृष्टि से, 2. रसानुभूति की प्रणाली से, 3. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से, 4. विभिन्न जातियों के प्रकार से, 5. क्रिया—गीत की दृष्टि से।

**श्री श्यामाचरण दुबे ने लोकगीतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है**:—1. सामान्य गीत, 2. नृत्य गीत, 3. गीत—कथा, 4. लोक—गाथा।

उपर्युक्त वर्गीकरण में ''गीत—गाथा'' और ''लोक—गाथा'' दोनों में गीत तत्वों के अतिरिक्त ''कथा'' के तत्व भी रहते हैं। अतः उनकी अपनी एक विशिष्ट कोटि होती है।

**लोकगीतों का वर्गीकरण :**

हो लोकगीतों का वर्गीकरण हम इस प्रकार करते हैं:—

1. **संस्कार सम्बन्धी**—संतान जन्म, विवाह, गवना, लियावन आदि।
2. **ऋतु सम्बन्धी गीत**—बारहमासा, बाः पर्व, हेरो पर्व, मागे पर्व आदि।
3. **व्रत सम्बन्धी गीत**—मागे पर्व, बाः पर्व, हेरो पर्व आदि।
4. **क्रिया सम्बन्धी गीत**—रोपनी, कृषि काटनी तथा अन्य।
5. **विविध गीत**—भजन, सिंगबोंगा के गीत, गोहारी आदि।

हो क्षेत्र में ये समस्त संस्कार तो प्रचलित नहीं फिर भी कुछ किसी न किसी रूप में अवश्य मिलते हैं। अलौकिक संस्कार का सम्बन्ध आनुष्ठानिक गीतों से है और इसके समस्त कार्य स्त्रियाँ लोकगीतों के द्वारा सम्पन्न करती हैं। ये गीत अपना मांगलिक महत्व रखते हैं। हो लोकगीतों में हमें शास्त्रीय संस्कारों का उल्लेख तो नहीं मिलता, किन्तु जन्म और विवाह जैसे संस्कार अवश्य हैं। संस्कारों की दृष्टि से हम हो लोकगीतों को इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं:—

**जन्म संस्कार** :— जन्म संस्कार मानव—जीवन का प्रारम्भिक संस्कार है। पुत्र जन्म या पुत्री जन्म दोनों आनन्द और प्रसन्नता का विषय माना जाता है, इसलिए इस संस्कार पर गीत नहीं गाए जाते हैं। पुत्र या पुत्री जन्म, परिवार तथा पुत्र/पुत्री दोनों के लिए ही एक विशेष—संस्कार होते हैं। अन्य क्षेत्रों में जन्म से पूर्व ही संस्कार प्रारम्भ हो जाते हैं, किन्तु ''हो'' भाषी क्षेत्र में ऐसा प्रचलन नहीं है।

''छठी'' संस्कार के दिन हो भाषी चाँद से दूध—भात के लिए लोरी गीत गाये जाते हैं:—

> चाँदा मामा—चाँदा मामा, दूध—भात लेकर आओ
> चाँदी का प्याला में, मुन्नी/मनु को खिला दीजिए।

इस तरह से हो भाषी लोकगीत गाये जाते हैं।

**विवाह संस्कार** :—विवाह संस्कार जन्म संस्कार के बाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्कार हैं। यह आशा और उल्लास का सुखद अवसर माना जाता है। हो भाषी लोकगीतों में बहुत अधिक गीत इसी संस्कार से सम्बन्धित हैं। विवाह के सभी संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ ही ये गीत गाती हैं।

**डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है**—1. संस्कारों की दृष्टि से, 2. रसानुभूति की प्रणाली से, 3. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से, 4. विभिन्न जातियों के प्रकार से, 5. क्रिया—गीत की दृष्टि से।

**श्री श्यामाचरण दुबे ने लोकगीतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है**:—1. सामान्य गीत, 2. नृत्य गीत, 3. गीत—कथा, 4. लोक—गाथा।

उपर्युक्त वर्गीकरण में ''गीत—गाथा'' और ''लोक—गाथा'' दोनों में गीत तत्वों के अतिरिक्त ''कथा'' के तत्व भी रहते हैं। अतः उनकी अपनी एक विशिष्ट कोटि होती है।

**लोकगीतों का वर्गीकरण :**

हो लोकगीतों का वर्गीकरण हम इस प्रकार करते हैं:—

1. **संस्कार सम्बन्धी**—संतान जन्म, विवाह, गवना, लियावन आदि।
2. **ऋतु सम्बन्धी गीत**—बारहमासा, बाः पर्व, हेरो पर्व, मागे पर्व आदि।
3. **व्रत सम्बन्धी गीत**—मागे पर्व, बाः पर्व, हेरो पर्व आदि।
4. **क्रिया सम्बन्धी गीत**—रोपनी, कृषि काटनी तथा अन्य।
5. **विविध गीत**—भजन, सिंगबोंगा के गीत, गोहारी आदि।

हो क्षेत्र में ये समस्त संस्कार तो प्रचलित नहीं फिर भी कुछ किसी न किसी रूप में अवश्य मिलते हैं। अलौकिक संस्कार का सम्बन्ध आनुष्ठानिक गीतों से है और इसके समस्त कार्य स्त्रियाँ लोकगीतों के द्वारा सम्पन्न करती हैं। ये गीत अपना मांगलिक महत्व रखते हैं। हो लोकगीतों में हमें शास्त्रीय संस्कारों का उल्लेख तो नहीं मिलता, किन्तु जन्म और विवाह जैसे संस्कार अवश्य हैं। संस्कारों की दृष्टि से हम हो लोकगीतों को इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं:—

**जन्म संस्कार** :— जन्म संस्कार मानव—जीवन का प्रारम्भिक संस्कार है। पुत्र जन्म या पुत्री जन्म दोनों आनन्द और प्रसन्नता का विषय माना जाता है, इसलिए इस संस्कार पर गीत नहीं गाए जाते हैं। पुत्र या पुत्री जन्म, परिवार तथा पुत्र/पुत्री दोनों के लिए ही एक विशेष—संस्कार होते हैं। अन्य क्षेत्रों में जन्म से पूर्व ही संस्कार प्रारम्भ हो जाते हैं, किन्तु ''हो'' भाषी क्षेत्र में ऐसा प्रचलन नहीं है।

''छठी'' संस्कार के दिन हो भाषी चाँद से दूध—भात के लिए लोरी गीत गाये जाते हैं:—

चाँदा मामा—चाँदा मामा, दूध—भात लेकर आओ
चाँदी का प्याला में, मुन्नी/मनु को खिला दीजिए।

इस तरह से हो भाषी लोकगीत गाये जाते हैं।

**विवाह संस्कार** :—विवाह संस्कार जन्म संस्कार के बाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्कार हैं। यह आशा और उल्लास का सुखद अवसर माना जाता है। हो भाषी लोकगीतों में बहुत अधिक गीत इसी संस्कार से सम्बन्धित हैं। विवाह के सभी संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ ही ये गीत गाती हैं।

**गोनोङ सिङ (वधु मूल्य)**

1. हिसि बोःञ मेतङ् मेया बाला
दोंसि बोःञ मेतङ् मेया बाला
टुँकि चाउलि डुम्बा जिलु
एना गेदञ असिम तना
एना गेदञ दँडेम तना।।2।।

2. मि सौ मिङ् टका बाला
कम एम केरे गेदा बाला
उरिः कटा, मेरोम कटा
सिम कटाञ दंडे मेया बाला।।

3. होरा–दरा बइयोः तना बाला
दारू–उम्बुल बइयो तना बाला
ओवाः–दुवर मिंडो तना
सबिन मयोम मिडोः तना
बर होमो मिडोः तना।।

**हिन्दी अर्थ :**

1. बीस मुन्डी लेंगे समधी
तीस मुन्डी लेंगे समधी
टोकरी में चावल और दोना में माँस
बस इतना ही माँग रहे हैं
बस इतना ही जुर्माना है।।

2. एक सौ एक रूपया समधी
नहीं दोगे तो तुझे और जुर्माना होगा
बैल और बकरी का पैर
और मुर्गा का जुर्माना देना होगा।।

3. रिश्ता खून का बनने वाला है
वृक्ष की छाया बनने वाली है
दो घर एक हो रहा है,
रिश्ता में बँध रहा है
दो जीवन एक हो रहे हैं।।

हो भाषी क्षेत्र में वधु मूल्य लोकगीत इसी प्रकार से विवाह राग में स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। हर जाति तथा वर्ग में यह प्रथा प्रचलित रही है। यह एक तिलक प्रथा है। यह लड़कियों की मँगनी की प्रथा है।

**आँदि दुरङ (विवाह गीत)** :– जब विवाह के लिए दोनों तरफ से बातचीत चलती है।

**गवना गीत :–**

1. नेहगे लोगोन लियु–लेयोन लेन
दाणा–दणाते दुतम जगर
कजि जगर किञ अदेर लेडा।।
2. अणादि–अपाँदि सिंयु दुतम
सनङ जिबोन साकि सुतम
बाला–बपला किंञ दिलि लेडा।।
3. दोरमो अङ जोड़व लगिड्
अइष–राइष तोपोल लगिड्
ऐरे बोंगा किंञ पुयुर लेडा।।
4. लुकु हड़म–लुकुमि बुड़ि
सिरजोन बिनितिर उपुटुब दिशुम
आँदि–अपांदि ओतोङ याबु।।
5. कुड़ि होन बु चालि रेदो
बाला–साका बितर रेगे
बाला–साका किली रेगे।।
6. किमीन कोबु नाम रेदो
होरा–बाराबु बइ रेदो
हो जाति हुदा रेगे।।

1. यही लगन है
रिश्ता और रास्ता बनाने का
बातचीत का सिलसिला चल रहा है।।
2. शादी–विवाह रिवाज
पसंदीदा जीवन–साथी का धागा
सगाई का दिन तय हुआ।।
3. धर्म का रिश्ता निभाने को
दोनों आत्मा बाँधने को
शुभ–मुहूर्त दिन का इंतजार है।।
4. लुकु हड़ाम–लुकुमि बुड़ि
सृजन करने वाले, जन्म देने वाले
उसी के रास्ते कदम पर चले।।
5. जब भी लड़की को विवाह देंगे
अपने गोत्र के बाहर
इस पवित्र रिश्ता को हमेशा बनाये रखें।।
6. जब भी बहू को खोजें
रिश्ता और घर बनायें
अपनी जात और समाज में ही।।

हो भाषी क्षेत्र में "गवना" (संस्कृत का अपभ्रंश रूप है, इसका अर्थ होता है, गमन अर्थात् जाना) की प्रथा अलग से प्रायः नहीं के बराबर है। गवना का संस्कार प्रायः विवाह के अवसर पर ही हो जाता है। बहुत ही छोटी उम्र में जब विवाह होता था, तब यह प्रथा यहाँ चलती थी। गवना संस्कार के अवसर पर ही सारी विधि विवाह की विधि सी ही होती थी। हो भाषी क्षेत्र के लोग गरीब हैं और ऐसे अवसर पर दुबारा व्यय करने की उनकी क्षमता भी नहीं होती है। गवना के अवसर पर विवाह गीत ही गाये जाते हैं।

**आँदी हन्डोर दुरङ (आँदी राग)** :– विवाह गीत डमकच राग में बेटी विदाई का एक गीत प्रस्तुत हैः–

1. जोनोम ऐंगा किंञ
जोनोम आपू किंञ
सार सिबिल को
बगेया किंञ बेन।।
2. सिदा जुड़िम को
पहिला गतिम को
मेड् दःअः माई रे जोरोअःकोबेन

1. जन्म माँ
जन्म पिताजी
दोनों के लिए पूँजी–पति
छोड़ के जाईएगा।।
2. बचपन की सहेली
पहिले दोस्त को
आँखों के आँसू मईया गिरा दीजिएगा।।

3\. ऐंगा–आपू किंञ
जोनोम बोंगा किंञ
तिसिंञ दोबेन बगेयाकिंञ तान।।

3\. माँ–पिताजी दोनों को
जन्म ईश्वर दोनों को
आज से हमेशा के लिए छोड़ के जा रहे हैं।।

4\. हनार–होंयार किंञ
बोंगा हेरेल किंञ
तिसिंञ दोबेन सेबा सड़ा किंञ।।

4\. सास–ससुर को,
पति देव को
आज से सेवा करेंगे।।

5\. तोवा ताबेन तन
सुड़िता–गोतोम तन
सेबा जोम में
दिमसि पुराये में।।

5\. दूध चूड़ा से
दीया–घी से
सेवा–साड़ा
प्रतिदिन पूरा करें।।

6\. एंगा–आपु किंञ
बारेम बोंगा किंञ
सदाय जिडि रे
हेयातिंञ किंञ बेन।।

6\. माँ–पिताजी दोनों
भैया ईश्वर दोनों
सदा के लिए मन में
याद रखिएगा।।

7\. हातु सेबा किंञ
मरांग बोंगा किंञ
तिसिंञ दोबेन बगेया किंञ तान।।

7\. ग्राम सेवक को
बड़े ईश्वर को
आज से हमेशा के लिए छोड़ के जा रहे हैं।।

8\. गड़ा परोम रे
बुरू परोम रे
बोंगा बुरू किंञ सेबा जोम बेन।।

8\. नदी पार में
जंगल पार में
जंगल के ईश्वर को सेवा कीजिएगा।।

9\. सकि सुतम रे
सागेन पताह रे
तिसिंञ दोबेन तोला तूले।।

9\. प्रेम का धागा
नये पत्ते में
आज हमलोगों को बाँध देंगे।।

10\. बलेः सागेन रे
हेसाः पताह रे
तिसिंग दोबेन सकिया तुलेया।।

10\. नये कोमल पत्ते में
पीपल के पत्ते में
आज से हमलोगों को नाम कर देंगे।।

11\. सीमा परोम रे
डुलगी पताह रे
इचा बाड़ा रासि माई रे बगेया तुबेन।।

11\. सीमा पार में
दोना पत्ते में
आँखों का आँसू मईया गिरा दीजिएगा।।

12\. जुड़ी–गतिम को
एंगा–आपु को
तिसिंञ दोबेन जोहारः तुले।।

12\. दोस्तों–सहेलियों को
माँ–पिताजी को
आज से हमेशा के लिए जोहार/
चरण स्पर्श कर दीजिएगा।।

अन्तिम दो पंक्ति में बेटी को माँ समझाती है कि जब वह घर से रास्ता चले तो अपना माथा झुका कर चले तथा हर स्थिति में अपने माँ–पिताजी की कुल प्रतिष्ठा की रक्षा करे।

मानव जीवन से संबंधित, अन्तिम संस्कार मृत्यु है। इस संस्कार के समय कोई हो भाषी में गीत उपलब्ध नहीं है। क्रन्दन में ही उसका गुण–गान गाते हैं।

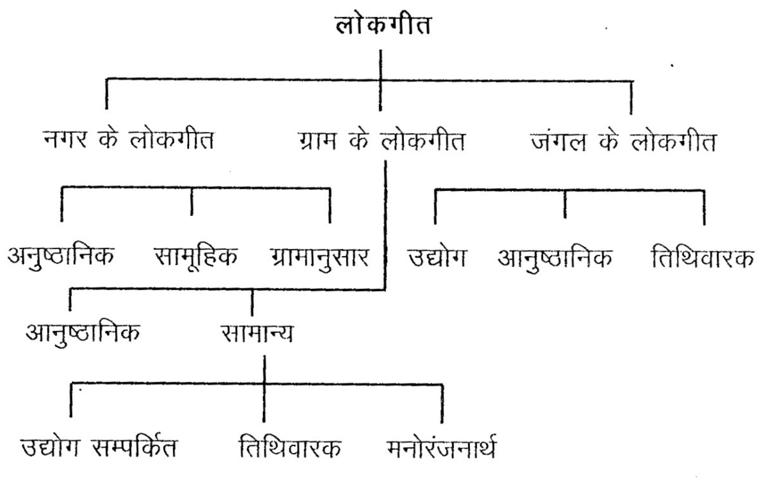
## (ख) क्षेत्रीय लोकगीत :

जार्ज हरजोम के अनुसार "जिस मानव–समूह के गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है, वह मुख्यतः ग्रामीण है।" वास्तव में लोकगीत लोक संस्कृति का ही एक अंश है तथा यह संस्कृति नगर संस्कृति से अलग ग्रामीण संस्कृति है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि विद्वानों ने लोकगीतों को ग्रामीण गीत (ग्रामगीत) कहा है। वास्तविकता यह है कि आदिम युग में, आदिम जातियों में इस तरह का भेद नहीं थे। उनमें नगर और ग्राम में अन्तर नहीं था। इसलिए उनके सम्पूर्ण क्षेत्र में लोकगीत की ही प्रधानता रही होगी। बाद में अध्ययन को वैज्ञानिक आधार मिल जाने के परिणामस्वरूप इन्हें "ग्रामगीत" के आधार पर "लोकगीत" कहा गया, वास्तव में पहले इसे "ग्रामगीत" ही कहा जाता होगा।

"लोकगीत" अथवा लोकवार्ता का क्षेत्र न तो गाँव ही है, न जंगल–पहाड़ ही है, न गँवार, न कोल–किरात ही। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो लोक–मानस सर्वत्र विद्यमान है। अतः लोक भी नगर–ग्राम सीमा का भेद किये बिना सर्वत्र है। अतः लोकगीत भी प्रत्येक क्षेत्र में मिलेंगे। हाँ, वे प्रत्येक क्षेत्र की अपनी सुविधा–आवश्यकता के अनुसार भिन्न रूप के होंगे तथा उसी के अनुरूप प्रभावों से प्रभावित होंगे।[26]

लोक साहित्य नगर में भी मिलेगा और गाँव में भी। इसी आधार पर डॉ० सत्येन्द्र ने लोकगीतों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है:–



हो लोकगीतों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है:–

**हो लोकगीत**

- नगर के लोकगीत
- ग्राम के लोकगीत
  - आनुष्ठानिक
  - सामान्य
    - तिथिवारक
    - मनोरंजनार्थ
  - उद्योग

पश्चिम सिंहभूम सारण्डा जंगल और पहाड़ों के सुरम्य स्थलों पर बसा है। इसलिए गाँव और जंगल एक दूसरे पर निर्भर हैं। जंगल के बीच ही गाँव हैं और गाँव में जंगल हैं। पश्चिम सिंहभूम कोल्हान क्षेत्र में गाँव और जंगल को अलग नहीं माना जा सकता है। यह ठीक है कि विकास के साथ अब जंगल कट रहे हैं तथा गाँव के स्थान पर छोटे–बड़े शहर बसते जा रहे हैं, लेकिन फिर भी हो–भाषी क्षेत्र के लोग अब भी अपनी संस्कृति और परम्परा को कायम रखे हुए हैं।

**जातीय भेद :**

हो क्षेत्र में जातीय भेद भी लोकगीतों में मिलते हैं। इस भेद के परिणामस्वरूप ही लोकगीत भी भिन्न–भिन्न तरह के हो जाते हैं। वर्ण विषयक जातियों में भी कुछ न कुछ पारस्परिक अन्तर मिल जाते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की जातियाँ रहती हैं। अनुसूचित जनजातियों में भी कई उपजातियाँ हैं तथा इनके लोकगीतों के रूप भी भिन्न–भिन्न होते हैं। मुख्य रूप से जो जातियाँ तथा उपजातियाँ इस क्षेत्र में एक साथ रहती हैं और जिनका इस क्षेत्र के बाहर संबंध स्थापित नहीं हो पाया है, उनके लोकगीतों का रूप प्रायः एक सा ही है, लेकिन जिनका पारिवारिक सम्बन्ध रूप इस क्षेत्र के बाहर हो गया है, उनके लोकगीतों में थोड़ा अन्तर हो गया है।

**1). व्रत संबंधी :**

**धरती पूजा** :– हो भाषी क्षेत्र के निवासी भूत–प्रेत पर गहरा विश्वास रखते हैं। धरती अशान्त रहती है, ऐसा उनका विश्वास है। अतः अच्छी फसल के लिए खेती के पूर्व अर्थात् चैत्र–वैशाख के माह में धरती की पूजा की जाती है। इस अवसर का एक भी हो लोकगीत नहीं है। इस पूजा में दो कुँवारी लड़कियों द्वारा पुजारी पहान/देवोयों को नया हाण्डी में पानी भर कर उनके ऊपर डाल कर नहला देती हैं तो निश्चित रूप से पानी गिरता है। इस पूजा में मुर्गी और चेंगनों की बलि दी जाती है। इससे अशान्त धरती को शान्त करने का विश्वास है।

सरना की पूजा भी खेती के पूर्व ही की जाती है। इस पूजा में भी प्रकृति देवी की आराधना की जाती है। इस अवसर पर भी सामूहिक रूप से मुर्गी–चेंगना की बलि दी जाती है तथा पूरे गाँव के लोगों को प्रसाद के रूप में चावल का बना प्रसाद (हंड़िया) वितरण किया जाता है। इस अवसर पर गीत भी प्रकृति से सम्बन्धित होते हैं।

सरहुल पूजा फाल्गुन–चैत में साल वृक्ष, साल फूल की पूजा होती है। इस पूजा में मुर्गी–चेंगना के द्वारा पूजा होती है। इस पूजा में नया–नया फूल, फलों द्वारा पूजा होती है। दूसरा दिन पाहन/पुजारी लोग सभी गाँवों के घर जाकर साल फूल सबके घर में खोंसते हैं। इस पूजा में प्रकृति देवी की आराधना की जाती है। इस अवसर के गीत भी प्रकृति से सम्बन्धित होते हैं।

**''मागे लोकगीत''**

बुरू बितर मागे दो,
पता बितर मागे दो,
चिका तेरे ''दड़ाचूम''
नइयुम मेलेडा ''कों''2
रूतु पिंड़ि–रेयों चिते
चिका तेरे ''दड़ाचूम''
नइयुम मेलेडा ''कों''2
दमा गुडूर चिते
दूमङ–तांग–तूङ चिते
चिकातेरे ''दड़ाचूम''
नइयुम मेलेडा ''कों''2
नेन रेयो मचिला गाँड़ू
तेर रेयो मचिला गाँड़ू
नेरेम दूड़बा चिरे तेरेम दूड़बा ''कों''2
नेन रेयो रंबड़ा उतु,
तेर रेयो रंबड़ा उतु
नेन रेम जोजोमा रेयिम
तेरेम जोजोमा ''कों''2
बुरू बितर मागे दो
पताह बितरे मागे दो
चिका तेरे दड़ाचूम
नइयुम मेलेडा ''कों''2

इस ''प्राचीन मागे'' लोक गीत का हिन्दी भाव (अर्थ) इस प्रकार है:–इस पर्वत प्रदेश का मागे ''पर्व'' घने पत्तों में छिपे ''मागे'' पर्व को हो ''दड़ाचू'' अर्थात् हे ! ''नीलकंठ पक्षी!''। इस ''मागे'' के बारे में कैसे सुना, कैसे जाना, तुम्हें कैसे पता चला?। बाँसुरी की मधुर तान से कि, केंदरी (बनम) की रेंयोश्तान से। हे ! ''नीलकंठ पक्षी!''। इस घनघोर पर्वत में, पत्तों के भीतर छिपे ''मागे'' को, तुमने कैसे सुना, कैसे जाना, तुम्हें कैसे पता चला। नगाड़े की गर्जन आवाज से, या मृदंग स्वरों की तांग तुंग से, हे ! ''नीलकंठ पक्षी!'', तुमने कैसे सुना, कैसे पता चला, आप आइए चारपाई

बैठक में, इस घर में बैठिएगा कि, उस घर में बैठिएगा। इस घर में उड़द दाल पके हैं, इस घर में खाएँगे कि, उस घर में खाएँगे। हे ! प्राकृत "परमात्मा रूपी पक्षी।" यहाँ खाएँगे कि वहाँ खाएँगे। हे ! नीलकंठ महादेव। प्राकृत परमात्मा देशाउलि। इस जंगल प्रदेश के "मागे" में पत्तों से छिपी "मागे" पर्व में शुद्ध उरद एवं अन्य सुखदायक स्तुति भोग अन्न ग्रहण करें और हमें अनुग्रहित करें।

उपर्युक्त "मागे" पर्व में गाये जाने वाले लोक गीतों का सार तत्व अर्थात् आध्यात्मिक गुण अर्थ भी विस्तृत रूप से विश्व व्याप्त है। यह सृष्टि रचना मानव उत्पत्ति की सच्ची ऐतिहासिक, सांस्कृतिक घटनाओं का हमें ज्ञान कराता है।

**बाहः दुराँञ – बाहः गीत / बाहः राग :–**

(गडुवा) होः हड़म होड़ो टइन ओवः रेना गा, करकोम नइल बुगिन टइना ।।
बुढ़ि एरा टइन ओवः रेना गा, जटि जोनोः बुगिन टइना।।
नलोम गोड़िञा बारेञ, नलोम गोड़िञा, हातु जपः रेना बारेञ, नलोम गोड़िञा।।
नलोम चलिञा बारेञ, नलोम चलिञा, हातु जपः रेना बारेञ, अलोम चलिञा।।
दःअ् सा–सा गेया मेतम, दःअ् सा–सा गेया, अरेः चनल दःअ् मेतम, दःअ् सा–सा गेया।।
दःअ् तु–तुकुन गेया मेतम, दःअ तुतुकुन गेया, अरे चनल दःअ मेतम, दःअ् तुतुकुन गेया।।
का बुगिना मेतम, का बुगिन गेया, कुचाहकन विञ होटः, का बुगिन गेया।।
का बुगिन मेतम, का बुगिन गेया, कुचाहकन विञ बिसकल, का बुगिन गेया।।

**हिन्दी अर्थ :–**

बुजुर्ग जिस घर में रहते हैं, कटिया हल ठीक रहता है।
दादी माँ जिस घर में रहती हैं, चटाई झाड़ू ठीक रहता है।।
शादी मत दीजिएगा भैया, शादी मत दीजिएगा,
गाँव के नजदीक में शादी मत दीजिएगा।
मत चलने दीजिएगा भैया, मत चलने दीजिएगा
गाँव के नजदीक में मत चलने दीजिएगा।।
पानी ठंडा ही है, पानी ठंडा ही है, दूसरे का छिंटा हुआ पानी ठंडा ही है।
पानी ठंडा है, पानी ठंडा है, दूसरे का छिंटा हुआ पानी ठंडा है।।
ठीक नहीं है, ठीक नहीं है, सोये हुए साँप को छेड़ना ठीक नहीं है,
ठीक नहीं है, ठीक नहीं है, सोये हुए साँप को उठाना ठीक नहीं है।।

उपर्युक्त "बाहः" पर्व में गाये जाने वाले लोक गीतों का सार तत्व अर्थात् आध्यात्मिक गुण अर्थ भी विस्तृत रूप से बुजुर्गों का विश्वव्यापी है। बाहः हो लोगों का सबसे बड़ा पवित्र पर्व माना जाता है।

**हेरोः पर्व :–** हो भाषी क्षेत्र के निवासी भूत–प्रेत पर गहरा विश्वास रखते हैं। धरती अशांत रहती हैं, ऐसा उनका विश्वास है। अतः अच्छी फसल के लिए खेती के पूर्व अर्थात् वैशाख–ज्येष्ठ के माह में धरती की पूजा की जाती है। इस अवसर पर एक हो लोकगीत द्रष्टव्य हैः–

**हो पारम्परिक लोकगीत**

**धान रोपनी (बाबा रोआ) (हेरोः राग)**

| | |
|---|---|
| 1. हेन्दे बुरू लतर रे,<br>हतनः दरू जपः रे | 1. हेन्दे बुरू के नीचे,<br>अर्जुन वृक्ष के नजदीक |

| | |
|---|---|
| अषाड़ा चण्डु बेटा याना<br>चासो–बासो पइटि लगिड्<br>सबिन को उंगुडाकन–उंगुडाकन।। | जून का महीना आ चुका है<br>चास–बास खेतों में, हरी–भरी खेती<br>सब लोग खेतों में झुके हुए हैं। |
| 2. जिपिर–जिपिर गमा कोरे<br>कितः–कोतोः नोसोड् कोरे<br>हतनः दरू जपः कोरे<br>बबाञ रोआ तन।। | 2. रिमझिम बारिश में<br>खेतों के कीचड़ में<br>अर्जुन वृक्ष के नजदीक<br>धान रोपनी का कार्य चल रहा है। |
| 3. गेन्डा को हलं–हलं जोम<br>उड् को हलं–हलं जोम,<br>नेःए दुर बुरू गेना–गेनाते<br>होयो–गमा उजुः तन।। | 3. घोंघा को चुनते–चुनते<br>मशरूम को चुनते–चुनते<br>देखो–देखो, सफेद–सफेद<br>बिखरा पड़ा है। |
| 4. चुकुउते चुकुउन मे<br>रूङ सकम गलं केते<br>मड् दरू चतोम कोते<br>उम्बुलेन में।। | 4. गुंगू से शरीर को ढक लो<br>गुंगू पत्तों को जोड़कर<br>बाँस का पत्ता से<br>रिमझिम बारिश से बचो।। |
| 5. अतेन चंडुः सेटेर तन रे<br>रोआ पइटि सेसेन तन रे<br>लेंड्ड को, हपड् को जुमङ कम रे<br>अलोम बोरोया।। | 5. आषाढ़ का महीना पहुँच चुका है,<br>रोपनी का कार्य चल रहा है,<br>केंचुआ और जोंक लटक रहे हैं,<br>डरना नहीं, हड्डी नहीं है।। |
| 6. नेःदुःर सिंगि राजा डुबुइ याना<br>बुरू–दरूते ओय को रूआ तना<br>दोलाबु सारि–दोलाबु सारि<br>गड़ा–गुडु, नुगु–नुगु गमा उजुः तन।। | 6. देखो–देखो,सूरज राजा डूबने को है<br>पक्षी अपने घोंसलों की ओर वृक्ष<br>पर लौट रहे हैं,<br>पशु वनों की ओर लौटने को हैं<br>चलो–चलो, साथी हम भी चलें<br>बादल की गरज और<br>काले बादल छाये हैं<br>गाते–गाते अपने घर को चले।। |

उपर्युक्त–" वास्तव में हो क्षेत्र प्रकृति की बेटी है। इस क्षेत्र को देखकर ऐसा लगता है मानो प्रकृति ने स्वयं अपने हाथों से इसे बनाया है, सजाया और सँवारा है। ऊँची–नीची पहाड़ियों, कल–कल करती नदियाँ, फुहारों को बरसाते अति रमणीय जलप्रपात तथा चारों ओर फैले हुए विविध प्रकार के वृक्ष, यही तो इस क्षेत्र के प्राण हैं। इसी रत्नगर्भा भूमि ने प्रकृति गीतों को जन्म दिया है।" इस क्षेत्र के निवासियों की सामान्य आजीविका कृषि पर निर्भर करती है। यहाँ की कृषि वर्षा पर ही निर्भर करती है और यही कारण है कि हो लोक गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन विशेष रूप से मिलता है।[27] जब वर्षा नहीं होती है तो किसान चिंतित हो उठते हैं, चूँकि वर्षा नहीं होने पर उनकी मेहनत से लगायी गयी फसल नष्ट हो जायेगी। उसका अन्न–धन समाप्त हो जायेगा और उसके परिवार के समक्ष गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

**6. विविध लोक गीत** :—मानव जीवन में गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। गीत मानव के स्वाभाविक तथा भावात्मक स्पंदनों से जितने संबद्ध है, उतना वाणी का कोई और रूप नहीं। शरीर का प्रत्येक अवयव ही आवेग से आक्रांत होकर किसी—न—किसी प्रकार की गत्थात्मकता से युक्त हो जाता है। हो में विभिन्न प्रकार के लोकगीत प्राप्य हैं। हो भाषी क्षेत्र में वातावरण तथा समायोजित हो में उपलब्ध है। हो गीतों में डमकच झूमर के अनेकों लोकगीत बिखरे पड़े हैं। ग्रामीण महिलाएँ कहा करती हैं कि स्त्रियों के शरीर की शोभा गहना है। हो भाषी क्षेत्र की महिलाओं द्वारा उपयोग में आने वाले आभूषणों के नाम निम्नलिखित हैं:—

| | आभूषण के नाम | अंग के नाम | द्रव्य के नाम |
|---|---|---|---|
| 1. | माँग—टीका | माँग | सोना, चाँदी |
| 2. | पटवासी | मस्तक पर | सोना, चाँदी |
| 3. | नथिया | नाक | सोना |
| 4. | लोला, बुलाक | नाक | सोना |
| 5. | नाक—बेसइर | नाक | सोना, चाँदी |
| 6. | छुद्दी | नाक | सोना |
| 7. | तरकी | कान | चाँदी |
| 8. | तरका | कान | चाँदी |
| 9. | तरपत | कान | चाँदी, पत्ता |
| 10. | उपरकाना | कान | सोना, चाँदी |
| 11. | कानपासा | कान | सोना, चाँदी |
| 12. | कर्णफूल | कान | सोना, चाँदी |
| 13. | द्वार, सिकरी | गला | सोना, चाँदी |
| 14. | हसली | गला | चाँदी |
| 15. | खंभिया | गला | चाँदी |
| 16. | बंधना, ठोसा | गला | चाँदी |
| 17. | चिकदाना | गला | चाँदी, गिलट |
| 18. | बाजू | बाजू | चाँदी |
| 19. | टाड़ | बाजू | चाँदी |
| 20. | बढ़ेरा | हाथ | चाँद |
| 21. | कंगना | हाथ | सोना, चाँदी |
| 22. | ठेला | हाथ | चाँदी |
| 23. | पहुँची | हाथ | चाँदी |
| 24. | अँगूठी | अँगुली (सभी) | सोना, चाँदी |
| 25. | मठिया | हाथ | चाँदी, गिलट |
| 26. | बँगुरी | हाथ | चाँदी |
| 27. | लहठी | हाथ | लाह |
| 28. | फूल अँगूठी | अँगुली | चाँदी |
| 29. | करधनी | कमर | चाँदी |

| | | |
|---|---|---|
| 30. कड़ा | पैर | चाँदी, गिलट |
| 31. छड़ा | पैर | चाँदी |
| 32. पायल | पैर | चाँदी |
| 33. पैंरी | पैर | गिलट |
| 34. झटिया | पैर की अँगुली | गिलट, चाँदी |
| 35. कतरी | पैर की अँगुली | चाँदी |
| 36. अँगूठा | पैर का अँगूठा | चाँदी |

सोना, चाँदी अथवा गिलट के गहने को पहनने से उसे चोर लूट सकते हैं। मृत्यु हो जाने पर उसके गहने उसके साथ जा नहीं सकते। हो लोगों में गुदवाने का रिवाज परम्परा से नहीं है। हो भाषी में विविध लोकगीत नहीं है।

**छ). हो लोकगीतों की विशेषताएँ :**

डॉ० श्याम परमार की मान्यता है कि लोकगीतों को इनकी नैसर्गिकता के लिए जाना जाता है। "गीतों में विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य और व्यापक भावों का उभार है। भावों की लड़ियाँ लम्बे–लम्बे खेतों सी स्वच्छ, पेड़ों की नंगी डालों सी अनगढ़ और मिट्टी की भाँति सत्य है।"[28]

लोकगीतों को उनमें सहजता, मधुरता, रसयुक्तता आदि गुणों के लिए जाना जाता है। लोकगीतों में कोई साज–सँवार नहीं होता। लोकगीतों में छन्द, अलंकार वक्रोति, चमत्कार आदि स्वभाविक रूप से होता है। सरलता और सहजता इसकी विशेषता है। "नीले आकाश के नीचे प्रकृति के बहुरंगी परिवर्तन, युद्ध और शांतिमय जीवन के चित्र एवं विधाता की स्त्री–संज्ञक रहस्यमयी सृष्टि की मानवीय जीवन पर प्रसाद और विषादमयी छाया – ये इन गीतों के प्रधान विषय हैं, जो शतकोटि कंठों से सहस्त्रों बार गाये जाने पर भी पुराने नहीं पड़ते और जिनकी सतत् किलकारी वायु में भरे हुए चिरंतन स्वर की तरह सर्वत्र सुनायी पड़ती है। गीत मानो कभी न छीजन वाले रस के सोते हैं। वे कंठ से पाने के लिए और हृदय से आनन्द लेने के लिए हैं।"[29] हो लोकगीतों में लोक–संस्कृति का चित्रण भी अवश्यंभावी होता है। लोक संस्कृति की विवृति भी इनकी एक आवश्यक विशेषता होती है।

**लोकगीत और जन–जीवन :**

हो क्षेत्र के लोकगीतों में जन–जीवन मुखरित हुआ है। हो लोकगीतों का जन–जीवन से निकट सम्बन्ध है। हो क्षेत्र के लोकगीतों में जन–जीवन का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। इस क्षेत्र के लोगों के प्रत्येक कार्यकलाप में लोकगीतों का महत्व है। हो लोकगीतों का मुख्य उद्देश्य लोकजीवन में उल्लास के रस को अनुभूत करना रहा है। यह कहा जा सकता है कि हो गीतों के कारण आज भी लौकिक जीवन की परम्पराएँ हो भाषी क्षेत्र में जीवित हैं।

## सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ० श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, दिल्ली 1954, पृष्ठ संख्या 53।
2. डॉ० भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली 110015, प्रथम संस्करण, 1992, पृष्ठ संख्या 10,11।
3. देवेन्द्र सत्यार्थी, धरती गाती है, प्रकाशक, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 171।

4. वासुदेव अग्रवाल, राजस्थानी के लोकगीत, पूर्वार्द्ध, प्रस्तावना, पृष्ठ संख्या 1, 2।
5. राल्फ भी विलयम, इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका ग्रिम, भाग–1, पृष्ठ संख्या 448।
6. भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली 110015, प्रथम संस्करण 1992, पृष्ठ संख्या 112।
7. राल्फ भी विलयम, इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, पृष्ठ संख्या 448।
8. राल्फ भी विलयम, इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, पृष्ठ संख्या 448।
(5 से 7 तक डॉ० कुन्दन लाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, द्वितीय संस्करण 1980, पृष्ठ संख्या 44 से)।
9. देवेन्द्र सत्यार्थी।
10. वासुदेवशरण अग्रवाल, आजकल (नवम्बर 1951)।
11. श्री सुधांशु, जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या 175।
12. डॉ० सत्येन्द्र चन्द्रशेखर भट्ट, हाड़ौती लोकगीत, प्राक्कथन (8 से 12 तक डॉ० कुन्दन लाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, अलीगढ़, द्वितीय संस्कारण 1980।
13. कोमल कोठारी, लोकगीत और संगीत परम्परा, जोधपुर, संवत चैत्र 2019।
14. डॉ० तेजनारायण लाल, मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० 1999, पृष्ठ संख्या 16।
15. बद्री प्रसाद पंचोली, नवभारती (श्री गंगा नगर), वर्ष 6, अंक 1, पृष्ठ संख्या 56।
16. मोहन कृष्ण दर, काश्मीर का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या 47।
17. डॉ० भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली 1992।
18. श्री सूर्यकरण पारीक, राजस्थानी लोकगीत, पृष्ठ संख्या 1 (डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ 1980, पृष्ठ संख्या 51 से)।
19. जनपद (अंक–1), पृष्ठ संख्या 66।
20. स्व० झवेरचन्द मेधाणी, रटियाली रात भवन–1, परिचय, पृष्ठ संख्या 5–6 (20 से 21 तक डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1980, पृष्ठ संख्या 51 से)।
21. भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली 1992।
22. सत्यव्रत अवस्थी, साहित्यकार, सितम्बर 1955।
23. डॉ० सत्यागुप्ता, खड़ी बोली का लोक साहित्य, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1965, पृष्ठ संख्या 30।
24. पं० रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, भाग पाँच, पृष्ठ संख्या 45 (डॉ० कुन्दनलाल उप्रेति, अलीगढ़, भारत प्रकाशन मंदिर, द्वितीय संस्करण 1980)।
25. डॉ० भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली 110015।
26. डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1980, पृष्ठ संख्या 60 से उद्धृत।
27. डॉ० भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली 110015, प्रकाशक झारखण्ड झरोखा, प्रथम संस्करण 1992।
28. डॉ० श्याम परमार, मालवी लोक साहित्य, इलाहाबाद 1969, पृष्ठ संख्या 29।
29. देवेन्द्र सत्यार्थी, धीरे बहो गंगा, भूमिका भाग, पृष्ठ 9 (डॉ० श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, आगरा, द्वितीय संस्करण 1981, पृष्ठ संख्या 52 से)।

# पंचम अध्याय

# हो लोक कथाएँ

आधुनिक साहित्य का उत्स लोक–साहित्य में ही निहित है और लोक साहित्य विविध संस्कृतियों का दर्पण है। भारत की पुण्य भूमि ही लोक–कथा की जन्मस्थली मानी जाती है। लोक–कथाओं की व्यापकता और प्रचुरता अवर्णनीय है। वास्तव में लोक–साहित्य में लोक–कथाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोक–साहित्य में परम्परागत विश्वास, आचार–विचार, प्रथाएँ, जीवन के हर्ष–विषाद, अतीत–वर्तमान, मान्यताएँ आदि सभी कुछ सुरक्षित हैं। वेदों में भी "हो" लोक–कथाओं की चर्चा हुई है।

सायण के अनुसार वेद वह शब्द राशि है जो अभीष्ट प्राप्ति और अनिष्ट को दूर रखने का अलौकिक दिव्य उपाय बताता है। सर्व हितकारी ज्ञान के भंडार को वेद माना जाता है। वेद अनित्य एवं अपौरूषेय है अर्थात् ईश्वर ने ऋषियों को आत्मसात देकर वेदों में सृजन आया। इसमें मानव मात्र का प्राचीनतम चिंतन निहित है। इसमें सर्वप्रथम अद्भुत काव्य और अलंकारों का दर्शन होता है। वास्तव में वेद अप्रत्यक्ष रूप में भारत के सारे साहित्य और परवर्ती चिंतन में भी अंतर्भूत है। ऋग्वेग को प्राचीनतम वेद माना जाता है। ऋक का अर्थ है छन्दोबद्ध रचना या श्लोक। ऋग्वेद में मूल 10 मण्डल है। आर्यों के प्रसार, प्रारंभिक सभ्यता और सामाजिक मान्यताओं के बारे में प्रथम नौ मण्डलों से ही सामग्री प्राप्त होती है। गायत्री मंत्र ऋग्वेद से ही लिया गया है। उसी तरह यजुर्वेद में यज्ञ संबंधी विधि विधानों का वर्णन है। कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं, जिसमें लगभग 2000 ऋचाएँ हैं। यह वेद जीवन की व्यापक गति को निर्दिष्ट करता है। सामवेद गेय संहिता है जिसमें मुख्यतः सूर्य स्तुति के मंत्र हैं। ऋषि सामवेद की ऋचाओं का प्रयोग संगीत के लिए करते थे। इसमें कुल मंत्रों की संख्या 1810 है। साम साधना का विषय है। वैसे ही अथर्ववेद में औषधियाँ, जादू–टोना, टोटका, भूत–झाड़ने के मंत्र, वशीकरण व मारण मंत्र है। अथर्ववेद कुल 20 अध्यायों में विभाजित है। इसमें 731 सूक्त तथा 6000 मंत्र हैं। शौनक और पिप्पलाद नामक इसकी दो शाखाएँ उपलब्ध मानी जाती है। इन वेदों का सामूहिक रूप भी इन लोक कथाओं में मिलता है।

"भारतीय "हो" कथा साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका प्रभाव संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों के साहित्य पर प्रचुर रूपेण पड़ा है। इन कथाओं के यूरोपीय देशों में प्रचार की कहानी बड़ी

लम्बी है। सर्वप्रथम इन कहानियों का अनुवाद अरबी और पहलवी भाषाओं में हुआ और इसके पश्चात यूरोप की विभिन्न भाषाओं में इनके अनुवाद प्रस्तुत किये गये। यूरोप में "इसप्प फेबुल्स" (ईसप की कहानियाँ) में भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।"[1]

लोक–कथाएँ मौखिक रूप से ही प्राप्य है। यही कारण है कि लोक–कथा की यह विशिष्टता रही है कि इसका स्थूल रूप परिवर्तनशील है। कहानी कहने वाला कहानी के तथ्यों के अलावे इसके शाब्दिक तथा भावात्मक रूप को अपने ही तरीके से बदल कर कहता है। कभी–कभी यह भी प्रतिलक्षित होता है कि लोक–कथाओं के तथ्यों में भी वक्ता के द्वारा परिवर्तन कर दिया जाता है।

वास्तव में कथा की ऐसी मौखिक परम्परा जिसमें जनमानस के तत्व विशेष रूप से उपलब्ध हों एवं जिनका उद्देश्य जन–मनोरंजन तथा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ज्ञानवर्द्धन भी हो, वही लोक–कथा मानी जा सकती है। इस संबंध में डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती लोक–कथा की अभिव्यक्ति के दो रूप बताते हैं:–

(1) पौराणिक कथाओं के रूप में, (2) लोक–कथाओं के रूप में।

जो कथावस्तु कलात्मक कथन प्रणाली द्वारा साहित्यिक सौन्दर्य प्राप्त कर लेती है, लोक–कथा कही जाती है। लोक–कथा विश्व व्याप्त है। इसमें लोक–जीवन नाना रूपों में प्रकट होता चला आ रहा है। मानव के दुःख–सुख, रीति–रिवाज, आस्थाएँ एवं विश्वास इन लोक–कथाओं में अभिव्यक्त होते रहते हैं। "हो" लोक–कथा मौखिक रूप में ही प्राप्य है।"[2]

मानव अपनी उत्पत्ति काल को ही लोक–कथाओं की उत्पत्ति काल मानता है–ऐसी मान्यता है। इसी कारण मानवीय कलाओं में कहानी कहने की कला सबसे प्राचीन है। आदि काल से ही मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों को कथा का रूप देना प्रारम्भ किया और वह कथाओं के माध्यम से ही अपने जीवन–दर्शन को अभिव्यक्त करने लगा। वास्तव में मानव की भाषा, उसका साहित्य उसकी भावाभिव्यक्ति ही कथा है।

**परिभाषा :**

डॉ० सत्येन्द्र ने लोक–कथा की परिभाषा देते हुए लिखा है – "हो" लोक में प्रचलित और परम्परा से चली आने वाली मूलतः मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ "हो" लोक कहानियाँ कहलाती हैं।"[3]

"हो" लोक–कथा के स्वरूप पर विचार करते हुए डॉ० सत्या गुप्त ने लिखा है – "हो" लोक कथाओं में लोक–मानस की सब प्रकार की भावनाएँ तथा जीवन–दर्शन समाहित है। भूत जानने की जिज्ञासा, घटनाओं का सूत्र सभी कुछ "हो" लोक–कथा में मिल जाते हैं।"[4]

**(क) मिथ, अवदान, कथाएँ :**

आंग्ल भाषा में "मिथ" को ही "मिथक" या "धर्मगाथा" के अर्थ में लिया गया है। मिथ, जैसा कि इसके नामकरण से ही स्पष्ट है, सत्य नहीं होता। जो कहानी

जीवन को शासित करें, वह मिथ या मिथक है। मिथ या धर्मगाथा की कथा उस हद तक सत्य मानी जाती है, जो किसी युग में घटित होकर किसी समाज, उसके देवी–देवताओं, वीरों, सांस्कृतिक विशेषताओं एवं धार्मिक विश्वासों आदि में अतिप्राकृत विशिष्टताओं को सार्वभौमिक रूप में स्पष्ट करती है। मिथ्य की सत्यता पर प्रकाश डालते हुए "किम्बाल यंग" ने लिखा है कि–"मिथ और आख्यान विश्वास करने वाले व्यक्तियों द्वारा सत्य माने जाते हैं। हम अपने मिथों और आख्यानों को मनोरंजन के लिए गढ़ी गयी विचित्र या विदेशी कथाएँ नहीं, वरन् वास्तविक घटनाओं और अभिप्रायों का विवरण मानते हैं।"

मिथ का प्रयोजन प्राक्सृष्टि और सृष्टि के आदिम युग की उस वास्तविकता की व्याख्या प्रस्तुत करता है जो वर्तमान के संदर्भ में भी अपनी सार्थकता रखती है। वस्तुतः मिथ को मिथ बनाने वाली विशेषता है, इसका काल के दो स्तरों पर संचरण। यह अतीत में घटित होकर भी कालातीत है, यह हर क्षण अनुभूत होने वाला वर्तमान है, जो भविष्य में भी इसी रूप में जीवित रहेगा।[5] मिथ केवल आदिम जातियों में ही नहीं वरन् आदिम स्तर से आगे बढ़ी हुई जातियों में भी प्रचलित है। इसका एक कारण बहुत से मिथों का आदिम स्थिति से परवर्ती स्थितियों में प्रवाहित होना है। आधुनिक मनुष्य क्रमशः बौद्धिक और संशय प्रिय होता गया है। इस धारणा के आधार पर विकासवादी चिन्तकों ने यह अनुमान किया है कि ये मानव संस्कृति की एक विशेष स्थिति की ही रचना हो सकती है। मिथ के उद्भव और विकास के विश्लेषण हेतु फ्रेजर ने मानव संस्कृति मात्र के विकास को तीन युगों में विभाजित किया है:–

(1) जादू का युग, (2) धर्म का युग और (3) विज्ञान का युग।

जादू के युग में मनुष्य प्रकृति की सजीवता में विश्वास करता था और इस विश्वास ने मिथों को जन्म दिया – दिनानुदिन अनुभव के तथ्यों को मिथों में रूपान्तरित करने वाला सर्वप्रथम कारण समस्त प्रकृति की सचेतनता है जिसका सर्वोच्च रूप है "मानवीकरण"।[6] लेबीबूल और दुर्खीम ने आदिम जातियों के विशिष्ट मनोविज्ञान को आदिम मनोवृत्ति की संज्ञा दी है, जो यह कहता है कि यह मनोवृति "प्राक्तार्किक" है। अभिव्यक्ति के धरातल पर यह मनोवृत्ति एक ओर मिथसर्जक कल्पना बन जाती है तो दूसरी ओर जादू–मूलक विधि–विधान।

उनके अनुसार प्राकृतार्किक या प्राक्वैज्ञानिक युग की समाप्ति के साथ मिथसर्जक कल्पना भी समाप्त हो जाती है। जर्मन मनोवैज्ञानिक कुण्ड्ट ने मिथ की उद्भावना के विश्लेषण के लिए मानवजाति के सामाजिक विकास को तीन क्रमिक युगों में विभाजित किया है:–(1). टोटम युग, (2). बीर युग और (3). विज्ञान युग। प्रथम दो युगों का सम्बन्ध उन्होंने मिथसर्जक कल्पना से बताया है।

टोटम युग में (गोत्र प्रतीक युग में) देवी, देवता, दानव और अन्य चमत्कारपूर्ण शक्तियों के मिथ विकसित हुए तथा बीर काल में अधिभौतिक शक्तियों और जादू की सहायता से अदभूत कृत्यों के करने वाले सांस्कृतिक नायकों के मिथों का विकास हुआ। परन्तु "किम्बाल यंग" के अनुसार यह सोचना असंगत है कि मनुष्य

वैज्ञानिक युग में मिथ से मुक्त हो गया। उनके अनुसार मिथ मानव मनोविज्ञान की एक अनिवार्य विशेषता है। मिथ भौतिक और सामाजिक, सांस्कृतिक जगत के साथ सामंजस्य की आवर्तक समस्याओं से उत्पन्न है। वैकालिक विश्वास, आस्था और परम्परा पर आधारित कथाएँ लोक–कथा के अन्तर्गत आती हैं। इससे मानव का पर्याप्त आमोद–प्रमोद होता है और आए दिन की कथाएँ लोक–कथा के अन्तर्गत आती हैं।''[7]

उपर्युक्त परिभाषा के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में लोक–कथा की शास्त्रीय परिभाषा देना अत्यन्त ही कठिन है। ''हो'' लोक–कथा मानव सभ्यता और क्षेत्रीय संस्कृति के विकास पर भी प्रकाश डालते हैं। ये लोक–कथा मानवीय कर्मों के प्रेरणा–स्त्रोत भी बन जाते हैं। ''हो'' भाषा में कहानी कहने की परम्परा अत्यधिक पुरानी है। इन लोक–कथाओं में नीति, उपदेश, आदर्शवादिता आदि देखने को मिलते हैं।

**(क) वर्गीकरण** :–''हो'' लोक–कथाओं का वर्गीकरण विद्वानों ने अपने–अपने तरीके से किया है। डॉ० सत्येन्द्र ने अपने प्रबन्ध में निम्नांकित वर्गीकरण किया है:–(क) मिथ, अवदान, कथाएँ, (ख) पशु–पक्षी संबंधी कथाएँ, (ग) परी कथाएँ, (घ) धूर्त कथाएँ, (ङ) दैत्य या राक्षस कथाएँ, (च) जाति कथा, (छ) विविध कथाएँ, (ज) लोक कथाओं की कथानक रूढ़ियाँ, (झ) लोक कथाओं की विशेषताएँ।

मिथ आख्यान मानव समाज और संस्कृति के लिए उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार अपने उपयोगितावादी लक्ष्यों को और भौतिक विश्व को मोड़ने के लिए यांत्रिक आविष्कार और बौद्धिक साधनों का व्यवहार।[8] रस्किन ने मिथ को एक विशिष्ट अर्थ सम्बद्ध कहानी माना है जो कुछ असाधारण स्थितियों या घटनाओं को साधारण रूप में प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार यह कथा विशेष प्राकृतिक घटनाओं के रूपक पर बनी है। पहले आदिमानव समूह ने प्रकृति के दिव्य व्यापारों को देखा और उन्हें मूर्त्त रूप में शब्द का अर्थ माना। प्राकृतिक सत्ता में सूर्य, आकाश, मेघ, सागर तदुपरान्त उसका या विवरण माना।

यहाँ कुछ प्रसिद्ध ''हो'' मिथों के उदाहरण दिये जा रहे हैं:–

**1. ओते दिशुम बइयनतेयः जगर (धरती बनने की कथा)** : इस मिथ में सृष्टि की उत्पत्ति कथा कही गयी है। इस मिथ के अनुसार ''सिंगबोंगा'' ने जब चारों ओर पानी ही पानी देखा तो उसके मन में यह विचार आया कि इस पानी को हटाकर धरती का निर्माण कैसे किया जाय। अतः ईश्वर ने सर्वप्रथम कछुआ और केंकड़ा का सृजन किया और उन्हें धरती के निर्माण का काम सौंपा। वे जब इस कार्य में असफल रहे तो सिंगबोंगा ने अपनी जाँघ के मैल से दो चेरा (अर्थ वर्म) पैदा किया – एक को स्त्री और दूसरे को पुरूष बनाया। ये चेरा दोनों को पानी के भीतर भेजकर धरती बनाने का कार्य सौंपा। वे पानी के भीतर जाकर नीचे से मिट्टी को ऊपर निकालना शुरू किये और मिट्टी का पहाड़ बना दिया। वही बाद में कड़ी मिट्टी में परिणत होकर ''धरती'' बन गया। जो गड्ढ़े बचे रह गये वे समुद्र हो गये। धरती के निर्माण में चेरों का सहयोग रहा। अतः वे आज भी धरती के भीतर

रहते हैं। कछुवा और केंकड़ा धरती नहीं बना सके, इसलिए वे आज भी पानी में ही रहते हैं।

सुरमि–दुरमि अर्द्ध–मानव प्राणी थे और पूर्ण मानव के सृजन का कार्य "सिंगबोंगा" ने बाद में किया। सुरमि–दुरमि आदिम मानव–जाति के विकास की कड़ी थे। सुरमि–दुरमि द्वारा रचित सुरम्य प्रकृति को देखकर सिंगबोंगा बहुत प्रसन्न हुए और सृष्टि के नवलतम उपहार के रूप में सृजित तरू–वाटिकाओं को देखकर उनकी सुरक्षा, उपयोग एवं विकास की चिन्ता उन्हें हुई। अतः उन्होंने मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसमें प्राण का प्रतिरोपण किया और "लुकुहड़ाम" या "लुकु" नाम से सम्बोधित किया। यह अकेला पुरूष सृजन करने में असमर्थ था। इसलिए सिंगबोंगा ने उसकी बाईं पसली की हड्डी निकालकर (जब वह सोया था) एक स्त्री का निर्माण किया जिसका नाम "लुकुमी" के रूप में विकसित हुआ। इस प्रकार "हो" मिथ में आदि पुरूष "लुकु" और आदि नारी "लुकुमी" हुई, जिनसे मानव जाति का सृजन एवं विकास हुआ।

इस मिथ में आदिम मानव के मनोवैज्ञानिक एवं बौद्धिक विकास की कथा का निरूपण आगे किया गया है। "सिंगबोंगा" ने उन्हें (लुकु एवं लुकुमी) जंगल में पाये जाने वाले "जोजो" (इमली) फल को छोड़कर अन्य फलों को खाने का आदेश दिया था। परन्तु बहुत दिनों तक अपनी उत्सुकता को रोककर रखने के बाद दोनों ने आत्म नियंत्रण खो दिये और "जोजो" फल को खा लिये। उसके खाते ही उनके मन में "लज्जा" के भाव का उदय हुआ, और वे अपने को नंगा महसूस करने लगे। वे पेड़ की पत्तियों से अपनी लज्जा (नंगापन) को ढँकने को आतुर हो गये। उनके "शर्म" को ढँकने का काम परिधान के रूप में "लपटा घास" ने किया और परिधान की आवश्यकता एवं निर्माण का यह प्रथम चरण हुआ।

इस मिथ में एक अन्य उल्लेखनीय तत्व है – नई पीढ़ी के सृजन एवं उनके कल्याण हेतु "बोंगा" की पूजा–अर्चना का।

जब लुकु और लुकुमी साथ रहकर भी संतान पैदा नहीं कर सके तो सिंगबोंगा ने उन्हें सबई घास की रस्सी बनाकर "गंडू" / "चारपायी" (खाट) के निर्माण की प्रेरणा दी और जब वे निकटतम शारीरिक सम्पर्क में आये तो उनमें यौन–सम्बन्धों का विकास हुआ और तदुपरान्त उनके बाल–बच्चे हुए। बच्चों के बढ़ने के बाद वे रोगग्रस्त हो गये। अभी तक उन्हें रोग और रोगमुक्ति के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी। अतः चिन्तित होकर दोनों सिंगबोंगा को खोजने निकल पड़े। सिंगबोंगा उन्हें एक वृद्ध पुरूष के रूप में मिले। सिंगबोंगा ने उन्हें एक "पुंडिसिम" (सफेद मुर्गा) की बलि देने एवं "डियङ" (हड़िया) को समर्पित करने का आदेश दिया। ऐसा करने से उनका बच्चा रोगमुक्त हो गया। इस प्रकार "हो" समाज में मुर्गे की बलि और डियङ बनाकर "बोंगा" को चढ़ाकर पीने की परम्परा शुरू हुई

इस प्रकार इस मिथ में मानव के सृजन, मानव प्रवृत्तियों का जन्म, उसके मानसिक विकास के साथ–साथ यौन–भावना का उदय, परम तत्व (सिंगबोंगा) के प्रति आस्था और विकास, उसे प्रसन्न करने का विधान आदि का समावेश एक साथ

किया गया है। इस मिथ का आनुष्ठानिक महत्व भी यथेष्ठ है। इस मिथ का अवसान होता है – मानव द्वारा परमतत्व (सिंगबोंगा) के साक्षात् दर्शन के अवरोध ा की घटना से। जब लुकु बूढ़ा और लुकुमी बूढ़ी सिंगबोंगा को अपना अंश (बलि का अंश) ग्रहण करते अपनी आँखों से देख लिया तो ईश्वर (सिंगबोंगा) अप्रसन्न हो उठे। उन्होंने "सोसो" (भेलवा फल) का रस उनकी आँखों में डाल दिया और उनकी उज्जवल आँखें काली हो गयीं। इसके बाद वे "सिंगबोंगा" को साक्षात् देखने में असमर्थ हो गये। तब से कोई भी मनुष्य "सिंगबोंगा" को स्थूल रूप में या साक्षात् नहीं देख पाया।

इस मिथ के विवेचन से ईश्वर एवं प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति के नाना रूपों का प्रतीकीकरण, परमतत्व की सर्वव्यापकता, कालक्रमानुसार विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रकृतियों का उद्भव एवं विकास आदि के तत्व प्रमुख रूप से परिलक्षित होते हैं। मानव के सृजन एवं विकास की कथा का एक रूपक इस मिथ में प्रादुर्भूत हुआ है।

**(ख) पशु–पक्षी संबंधी कथाएँ** :–"हो" लोक–कथाएँ नीतिपूर्ण होने के साथ–साथ मनोरंजक भी हैं। इन लोक–कथाओं में पशु–पक्षी मनुष्य के सहयोगी हैं तथा ये मनुष्य की बोली बोलते हैं। मुख्य रूप से तोता, मैना, लोमड़ी, भालू, सियार, बन्दर, बैल, भैंस, कुत्ता आदि पशु–पक्षी से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ मिलती हैं। इन पशु–पक्षियों की चालाकी एवं उनके कारनामों को सुनकर श्रोताओं और खासबर बालकों को काफी प्रसन्नता एवं अचरज भी होता है। कथाओं से मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षा भी मिलती है। इतना ही नहीं इन कथाओं में साहस, सहने की शक्ति, चालाकी, समझदारी तथा नीति परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत कहानी "दो सियार, एक बाघ और एक बन्दर की कथा" पशु लोक में सियार एक चतुर, धूर्त्त एवं आलसी पशु के रूप में माना जाता है।

**दो सियार, एक बाघ और एक बन्दर की कथा**–पशु लोक में सियार एक चतुर, धूर्त्त एवं आलसी पशु के रूप में माना जाता है। बाघ वीरता एवं मोटी बुद्धि का प्रतीक है। बन्दर चालबाज एवं नकलची पशु माना जाता है। प्रस्तुत कहानी में इन पशुओं की चारित्रिक विशेषताएँ उभर कर सामने आयी हैं।

एक वन में एक सियार युगल रहते थे। जब मादा सियार को बच्चा जन्म देने का समय आया तो उसने अपने पति से एक अच्छा एवं बड़ा माँद बनाने का अनुरोध किया। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसने अपनी पत्नी से भरपूर भोजन की माँग की ताकि वह शरीर से मजबूत होकर वह कठिन कार्य सम्पन्न कर सके। वह बेचारी उसे अच्छा–अच्छा भोजन देती रही और वह माँद बनाने का आश्वासन देता रहा। जब समय निकट आ गया तो वह उस माँद में ले चलने को कहने लगी। सियार उसे लेकर एक बहुत बड़े माँद में चला गया जो बाघ का था। परन्तु उसने उसे अपना नव–निर्मित माँद बताया। उसकी पत्नी डर गयी कि कहीं कोई बाघ आकर उन्हें निकाल न दें। परन्तु वह समझा–बुझाकर वहीं रखा। उसके बच्चे हुए। इसी बीच वह बाघ आता दिखाई पड़ा, जिसकी गुफा थी। मादा सियार

ने पति से उसकी रक्षा का उपाय करने को कहा, पर वह असमर्थ रहा। अन्त में उसे एक उपाय सूझ गया। उसने अपने बच्चों को रूलाना शुरू किया। जब बाघ दरवाजा पर आ गया तो मादा सियार ने बच्चों को डाँटकर कहा –"तुम लालची बच्चे, अभी तुमलोगों को सात बाघ का जिगर खिलायी हूँ, फिर भी तुम्हारा पेट नहीं भरा। एक बाघ आया है, जोर से मत चिल्लाओ नहीं तो भाग जायगा।" बाघ यह सुनकर भयभीत हो गया और भाग गया।

बाघ को रास्ते में एक बन्दर मिला, जिसे बाघ ने पूरी घटना सुनाई। बन्दर ने बाघ को अपने साथ गुफा में निर्भय होकर चलने को कहा। उसने अपनी पूँछ बाघ की पूँछ में बाँध दी। जब दोनों उस गुफा के सामने पहुँचे तो मादा सियार ने बन्दर को डाँटते हुए कहा–"तुम काहिल बन्दर। मैंने तुम्हें सात बाघ लाने के लिए कहा था और तुम केवल एक लाये, मैं तुम्हें नौकरी से निकाल दूँगी।" इतना सुनना था कि बन्दर को घसीटता हुआ बाघ भाग चला। कुछ दूर जाने पर खरोंच और चोट लगने के बाद बन्दर की पूँछ मुक्त हो गयी।

जब बन्दर और बाघ दुश्मन हो गये और एक–दूसरे से बदला लेने का अवसर ढूँढने लगे। बन्दर एक बार "सोसो" (भेलवा) का बीज फोड़ते हुए बाघ से मिल गया। बन्दर ने बताया कि वह अपने खरोंच से हुए जख्म की दवा तैयार कर रहा है। बाघ ने भी उस दवा की याचना की। बन्दर ने उसे यथेष्ट मात्रा में दे दिया। जब बाघ उस "सोसो" तेल को जख्म पर रगड़ने लगा तो उसकी जलन से चिंघाड़ उठा। तब तक बन्दर गायब हो चुका था। बाघ को पकड़ कर मारने का अवसर ढूँढने लगा। परन्तु अन्य अवसरों पर भी अपनी मूर्खता एवं बन्दर की चातुरी के कारण वह सफल नहीं हो सका। एक बार मधुमक्खी के छत्ते को "माँदल" समझ कर बजाने पर मधुमक्खी के दंश से उत्पीड़ित हुआ तो एक अन्य अवसर पर उसने बाघ को पेड़ की डाल पर बैठाकर सूखी पत्तियों में आग लगाकर उसे जलाकर मार डाला।"

इस कथा से यह स्पष्ट होता है कि सियार एवं बन्दर बाघ की अपेक्षा अधिक चतुर होते हैं और बाघ शक्तिशाली होकर भी बेवकूफ और अविवेकी होता है। बाघ सामन्तवादी प्रवृत्ति का भी प्रतीक है, जिसमें व्यावहारिक बुद्धि का अभाव रहता है।

**(ग) परी कथाएँ** :–परी कथाएँ कल्पना तत्व पर आधारित होती हैं। परियों से सम्बन्धित कथाओं को ही परी–कथा कहा गया है। पश्चिमी देशों में "फेयरी" (फेयरी शब्द लैटिन के फैटुम शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है – जादू अथवा इन्द्रजाल) की कल्पना अदृश्य, छोटे और बौने के रूप में की जाती है, जिनका आवास पहाड़ अथवा कन्दराओं में होता है। बच्चों को चुराना, बुरे व्यवहार करने वालों के साथ बुरा व्यवहार करना, उनके घर तथा खेतों की फसलों को बर्बाद करना, गरीबों एवं असहाय लोगों की सहायता करना आदि की कथाएँ मिलती हैं।

भारत में "फेयरी" शब्द के लिए परी, अप्सरा अथवा गन्धर्व शब्द का प्रयोग किया जाता है। इनका निवास स्थान परीलोक, अप्सरा लोक अथवा गन्धर्व लोक होता है। परियाँ अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण मानी जाती है तथा अपनी सुन्दरता से ही मनुष्यों को मोहित कर लेती है। ये अलौकिक और मानवीय प्राणी मानी जाती है।

''हो'' लोक कथाओं में परियों से सम्बन्धित अनेक रोचक एवं शिक्षाप्रद कथाएँ पायी जाती है। परियों द्वारा मनुष्यों की हर प्रकार से सहायता की चर्चा मिलती है। ये आर्थिक सहायता के साथ–साथ रोग से मुक्ति तथा भूखों को भोजन भी देती है। परियों से सम्बन्धित लोक–कथाएँ मुख्यतः बच्चों पर आधारित होती है। कहीं–कहीं परियों को प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार इन लोक–कथाओं को छः श्रेणियों में बाँटा गया हैः–
1. परियों द्वारा मनुष्यों की सहायता,
2. परियों द्वारा मनुष्यों को क्षति पहुँचाना,
3. परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण,
4. परियों द्वारा कृत्रिम पुत्र देना,
5. परियों द्वारा मनुष्यों को परीलोक की यात्रा कराना,
6. प्रेमिका अथवा पत्नी के रूप में परी।[9]

इन सभी श्रेणियों की परीकथाएँ ''हो'' भाषा में उपलब्ध है। कहीं अप्सराओं का वर्णन है तो कहीं दिव्य कन्याओं का तो कहीं डायनों का वर्णन परी कथाओं में मिलता है। परी कथाएँ परियों की क्रियाओं एवं स्वभाव की आश्चर्यजनक तथा कौतूहलपूर्ण कथाएँ हैं।

**(घ) धूर्त्त कथाएँ** :–लोक–जीवन में विभिन्न प्रकार के लोग पाये जाते हैं, जो पात्र बनकर लोक कहानियों में वैसे चरित्र को रूपायित करते हैं। धूर्त्त पात्र अपनी चालबाजी या जालसाजी से एक सीधे–साधे अथवा अज्ञान व्यक्ति को ठगता है या धोखा देता है तो वह समय के प्रवाह में स्वयं भी कभी धोखा खाता है तथा अधिक नुकसान उठाता है। धूर्त्त व्यक्ति की धूर्त्तता का रहस्य जब खुल जाता है तो उसका सामाजिक या जातीय बहिष्कार होता है। धूर्त्त की धूर्त्तता अधिक दिन तक नहीं चलती। ''हो'' लोक–कथाओं में धूर्त्त व्यक्ति के चरित्र पर आधारित अनेक लोक–कहानियाँ हैं, जिनमें कुछ लिखित एवं कुछ मौखिक है। धूर्त्त कथा जो इस प्रकार रखे गये हैंः–

**दो भाईयों का साहसिक कार्य**–इस कथा में दो ऐसे भाईयों की धूर्त्तता भरे कारनामों की कहानी कही गयी है, जिनमें एक कुबड़ा है और दूसरा काना है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपंग व्यक्ति अधिक धूर्त्त होता है। इस कथा में धूर्त्तता के साथ–साथ मूर्खता का भी उद्घाटन किया गया है।

इस कहानी के पात्र दो भाई हैं जिनमें एक कुबड़ा और दूसरा काना है। दोनों की माँ काफी वयोवृद्ध थीं। काना ने गर्म पानी की जगह खौलते पानी से अपनी माँ को स्नान करा दिया। जिसके कारण उसकी माँ की मृत्यु हो गयी। मृत्यु का इल्जाम अपने ऊपर न लेकर दूसरे पर डालने के लिए उन दोनों ने मृत माँ को एक बैंगन के खेत में एक टोकरी में रख दिया और उस खेत वाले को ही हत्यारा घोषित कर दिया। अन्ततः उस खेत वाले को ही बुढ़िया की अन्त्येष्टि और श्राद्ध का खर्च वहन करना पड़ा।

एक दूसरे अवसर पर गाँव वालों की बकरियों को इकट्ठा करने के लिए काना को कुबड़ा ने कहा। काना ने सभी बकरियों को मार कर पेड़ के नीचे इकट्ठा कर दिया। यह जानकर कुबड़ा काना को लेकर जंगल में भाग गया। वहाँ एक बाघ मिला जो उन्हें खा जाना चाहता था, परन्तु उन लोगों ने उसे चकमा देकर, जब वह सो रहा था, उसकी पूँछ काट दी। बाद में बाघ से एक सांभर शिकार कराकर दोनों शिकार प्राप्त किये। रात होने के कारण वे अब माँस लेकर पेड़ के ऊपर सो रहे थे तो सांभर की अंतड़ी आदि नीचे सोये एक शिकारी पर गिर पड़ी। वह भाग खड़ा हुआ। दूसरे दिन सुबह उनलोगों ने उस शिकारी का ढोल ले लिया। उस ढोल में छेद कर उन लोगों ने मधुमक्खियों को भर दिया। जब शिकारी उन पर हमला करने आया तो उन लोगों ने ढोल बजाना शुरू किया और ढोल बजने से मधुमक्खियाँ निकल कर शिकारियों को डंक मारने लगी। शिकारी ने डर कर समझौता कर लिया और उन दोनों को लेकर अपने गाँव आया और वहाँ उनकी शादी अपनी पुत्रियों से कर दी।[10] इस प्रकार दोनों धूर्त्त परिस्थितिवश अपनी धूर्तता में सफल हो गये।

**(ङ) दैत्य या राक्षस कथाएँ** :—लोक—कथाओं में दैत्यों की उपस्थिति, उनका भयंकर रूप, उनका जादू भरा कार्य, उनकी क्रूरता आदि की उपस्थिति कथा को रोचक बनाने एवं कथा सूत्र को आगे बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण तत्व है। मानव की आसुरी शक्ति पर विजय की कामना एवं आकांक्षा का उद्भव एवं परिणति इन कथाओं में द्रष्टव्य है। देव—दानव का युद्ध वैदिक काल से विभिन्न लोक—कथाओं के माध्यम से चला आ रहा है। इन कथाओं के पात्र मानव और दैत्य अथवा देव एवं दानव अथवा राक्षस के रूप में प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। काफी शक्तिशाली होने पर भी अन्त में दैत्य अथवा राक्षस की हार होती है और उसका नाश हो जाता है। यह संघर्ष तामसिक एवं सात्विक प्रवृत्तियों के संघर्ष का नाटकीय प्रस्तुतीकरण है, जो ''हो'' लोक—कथाओं में मिलता है। इन कथाओं में एक—न—एक पात्र ''दैत्य'' या ''राक्षस'' होते हैं, जो मनुष्य को खाने के लिये या उसे नुकसान पहुँचाने के लिए उद्धत रहते हैं। परन्तु मनुष्य अपनी चतुराई से छल—बल—कल से उस दैत्य को परास्त कर देता है।

**गरीब लड़के की कथा** :—इस कथा में एक ऐसी राक्षसी है, जो एक गरीब लड़के को धोखा से पकड़ती है और उसे खा जाने का प्रयास करती है। सौभाग्यवश उस लड़के की सुरक्षा अनायास हो जाती है और बदले में उस राक्षसी की लड़की मारी जाती है। राक्षसी को अपने बुरे कर्म का फल स्वयं भोगना पड़ता है। जो दूसरे के लिए गड्ढा खोदता है, वह स्वयं उसमें गिरता है — यह कहावत यहाँ चरितार्थ होती है।

इस कहानी के अनुसार एक गरीब चरवाहा लड़का प्रतिदिन बकरियों को चराने के लिए ले जाता था। वह अपने खाने की रोटी एक पेड़ के खोड़हर में रख दिया करता था। पर जब रोटी खाने का समय आया तो रोटी वहाँ से गायब था। उसके स्थान पर एक रोटियों से भरा पेड़ उग आया था। लड़का खुश होकर रोटियाँ तोड़ने

लगा। उसी समय एक राक्षसी आयी और लड़के से रोटी माँगने लगी। लड़का जैसे ही रोटी देने हेतु राक्षसी के पास आया, वह उसे बोरा में भरकर घर की ओर चली। परन्तु रास्ते में जब वह पानी पीने गयी तो कुछ लोगों ने उसे बोरे से मुक्त कर दिया। परन्तु दूसरे दिन वह लड़के को पकड़ने में फिर सफल हो गयी। परन्तु जब उसकी लड़की उस लड़के को पकाने के लिए कड़ाही में डालने गयी तो लड़के ने तेजी से उस लड़की को ही कड़ाही के खौलते पानी में डाल दिया। इस प्रकार उस राक्षसी की पुत्री का अन्त हो गया और राक्षसी घर आने पर रोने और पश्चाताप करने लगी।[11]

इस कथा में राक्षसी, तामसिक प्रवृत्तियों की प्रतीक है और वह मायावी भी है। ''रोटी'' का गायब होना और उसकी जगह रोटियों का पेड़ उग आना – यह जादुई कार्य उस राक्षसी द्वारा ही किया जाता है। परन्तु उसका कार्य समाज विरोधी एवं तामसिक है, अतः उसे उसकी सजा मिलती है। दूसरे के बच्चे का अहित सोचने पर उसकी अपनी लड़की का ही अहित हो जाता है।

**(च) जाति कथा :**–''हो'' समाज में जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह धारणा है कि ''सिंगबोंगा'' ने स्वयं कर्म के अनुसार जाति का बँटवारा किया। इसके अनुसार ''हो'' को कृषक (खेतिहर) बनाया और ताँती (पान या पिआयं) को वस्त्र बनाने का कार्य सौंपा। ''हो'' जाति के मामले में ताँती अपने को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। ''हो'' का अर्थ होता है ''मनुष्य''। अतः उनके अन्तर्मन में श्रेष्ठ मनुष्य होने की भावना भरी हुई है। अन्य जाति को वे अपने से निम्न श्रेणी का मानते हैं। ''हो' समाज में सबसे निम्न स्थान ''ताँती'' या ''पिआयं'' का है। वैसे ''ताँती'' अपने को अधिक अक्लमन्द समझते हैं। ''हो'' लोगों में ''ताँती'' जाति से सम्बन्धित कई कथाएँ हैं। जिनमें उन्हें बेवकूफ, कायर एवं विपन्न दर्शाया गया है।

**पान और पियाज रोटी :**–एक बार एक पान अपना ससुराल गया। वहाँ उसकी सास ने पियाज–रोटी खाने को दिया। वह उसे इतना अधिक स्वादिष्ट लगा कि उसने उस भोजन का नाम अपनी सास से पूछ लिया। उसने घर पर भी ऐसा ही खाना खाने का निश्चय किया। वह ''पियाज–रोटी'', ''पियाज–रोटी'' रटता हुआ घर की ओर चल दिया। एक स्थान पर एक गड्ढा था, जहाँ आकर वह उसे भूल गया। वह उस गड्ढे में इस शब्द को ढूँढने लगा। एक राहगीर ने समझा कि कोई कीमती चीज खो गयी है। उसने भी उसके साथ ही खोजना शुरू किया। इसी बीच उस पान के मुँह से प्याज की गंध पाकर उसने पूछ दिया–''क्या आज प्याज–रोटी खाये हो''। इतना कहना था कि वह पान बोल उठा–''पियाज रोटी, पियाज–रोटी''। मुझे मिल गया और ऐसा कहता हुआ घर की ओर तेजी से भाग खड़ा हुआ।[12] इस कहानी में पान जाति के लोगों पर गहरा व्यंग्य है। उनकी विपन्नता एवं बेवकूफी को इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है।

जाति कथाओं के साथ–साथ ''हो'' समाज में गोत्र कथाएँ भी प्रचलित है। विभिन्न गोत्रों की उत्पत्ति किसी–न–किसी घटना से जुड़ी हुई है। इन कथाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण ''सामाजिक मिथ'' शीर्षक भाग में प्रस्तुत किया गया है।

गोत्र कथाओं के अनुसार गोत्र प्रतीक कोई प्राकृतिक वस्तु या जीव होता है, जो उस गोत्र के किसी पूर्वज के जीवन या जन्म में सहायक एवं मंगलकारी होता है। गोत्र–प्रतीक की पवित्रता "हो" समाज में सर्वमान्य है। अब नये युग के नवयुवक इसको उतना अधिक महत्व नहीं देते।

विभिन्न कथाओं के अवलोकन से प्रतीत होता है कि आदिकाल अथवा जब "हो" जाति के लोग सिंहभूम (कोल्हान) में प्रविष्ट हुए और वन्य जीवन व्यतीत करने लगे, उसी काल में अधिकांश गोत्रों का नामकरण हुआ। वन में घूमते समय एक लड़का (लुगुन) तसर खोजने में खो गया और तसर पाने के बाद वह अपरिचित लोगों के बीच में चला गया। उसका गोत्र "लुगुन" हो गया।[13]

इसी प्रकार एक माँ जब वन में एक बच्चे को जन्म दे रही थी, तो देवगम पक्षी "हड् देवगम" बोल उठा। उस बच्चे का गोत्र नाम "देवगम" हो गया।

एक "हो" परिवार वन में प्यास से त्रस्त था पर पानी नहीं मिला। उन लोगों ने "जामुन" (कुदादा) का रस पीकर प्राण रक्षा की, अतः उनका गोत्र कुदादा हुआ।

एक स्त्री वन में तीन बच्चों को जन्म दी। प्यास से उसकी हालत खराब थी। अन्त में एक झरना मिला, जिससे उसकी प्यास मिटी। उसने कृतज्ञतावश अपने एक लड़के का गोत्र "जामुदा" रखा जिसका अर्थ झरना होता है।

**(छ) विविध कथाएँ** :–हो भाषी विशाल क्षेत्र में अनेक जातियाँ निवास करती हैं। जाति विशेष की उत्पत्ति तथा उसके विकास के सम्बन्ध में अनेकों कहानियाँ यहाँ की भूमि पर मिलती हैं। यहाँ की लोक–कथाएँ मनुष्य की विभिन्न भावनाओं, सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के अन्य पहलुओं से जुड़ी है। ऐसे उपलब्ध संग्रह का विविध कथाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है।

**दो बहनों की कथा** :–एक "हो" की दो लड़कियाँ थीं। वह उन्हें बहुत प्यार करता था और उन्हें लड़के की तरह पाला–पोसा। लड़कियाँ जब बहुत छोटी थीं उसी समय उसकी माँ मर गयी। पिताजी उन दोनों के लिए माता–पिता दोनों था।

एक दिन जब जंगल में लकड़ी काटने गया तो तिरिल का पका फल खाया। कुछ पके फल उसके केशों में फँस गये। घर लौटने पर उन फलों का पता तब चला जब उसकी लड़कियाँ उसके सिर से जूँ (ढील) निकाल रही थीं। "पिताजी ! यह कौन सा फल है?"–एक लड़की ने पूछा। "यह तिरिल का फल है मेरी बच्ची।" पिता ने कहा। दोनों लड़कियों ने फल को चखा और उन्हें इतना अच्छा लगा कि और फल की माँग करने लगीं। उन दोनों ने पिता के साथ जंगल में जाकर भरपेट उस फल को खाने की इच्छा व्यक्त की।

दूसरे दिन सुबह वह दोनों लड़कियों को जंगल में ले गया और फल भरे तिरिल पेड़ उन्हें दिखा दिया। लड़कियाँ पेड़ से फलों को तोड़कर खाने लगीं और वह लकड़ी काटने लगा। लड़कियाँ एक पेड़ से दूसरे पेड़ के फलों को खाती हुई भटक गई और घने जंगल में चल गयी। उसके पिता ने उन्हें काफी खोजा और जोर–जोर से चिल्ला कर उन्हें पुकारा, पर कोई फायदा नहीं हुआ। उसने पहले सोचा कि

लड़कियाँ जंगल में खो गई है। पर काफी खोजने पर जब नहीं मिलीं तो उसके मन में विचार आया कि शायद वे उसे नहीं पाकर घर चली गयीं। परन्तु घर लौटने पर जब वे नहीं मिली तो वह बहुत दुःखी हुआ।

लड़कियों ने भी अपने पिता को जंगल में बहुत खोजा। परन्तु उनका सब प्रयास व्यर्थ गया। वे घूमते–घूमते थक गयीं और उन्हें जोरों की प्यास मालूम हुई। वे पानी को देखने के लिये एक पेड़ पर चढ़ गयीं ताकि उन्हें पानी का कोई कुण्ड (झरना) दिखलायी पड़े। अन्त में एक दिशा से एक बगुला उड़कर आता हुआ दिखाई पड़ा। बड़ी बहन पेड़ से नीचे उतरी और उस दिशा की ओर चल दी जिधर से बगुला आया था। छोटी बहन पेड़ पर ही रह गयी।

काफी दूर जाने के बाद उसे एक सरोवर मिला जो एक राजा का था। उस समय राजा का पुत्र – राजकुमार उस झील के किनारे टहल रहा था। राजकुमार ने उसे देखा और उसके सौंदर्य पर मोहित हो गया और उसे पत्नी के रूप में प्राप्त करने का निश्चय किया। जैसे ही वह प्यासी लड़की पानी पीने के लिए सरोवर की ओर बढ़ी, राजकुमार ने उसे पानी पीने से मना कर दिया। उसने कहा कि जब तक वह उसकी पत्नी बनने का वादा नहीं करती, तब तक वह उसे पानी पीने नहीं देगा। वह प्यास से मरी जा रही थी। अतः अपनी सहमति देने के अलावा कोई उपाय नहीं था। राजकुमार उसे अपने महल में ले आया और वह उसकी पत्नी बन गयी।

इधर उसकी छोटी बहन उसका इन्तजार पेड़ पर करते–करते थक गयी। उस पेड़ पर बन्दरों के उछल–कूद से भी वह परेशान हो गयी। वह जैसे ही पेड़ के नीचे उतरी, जंगली जानवर उसे मार कर खा गये।

इस दुःखद घटना के कुछ दिनों के बाद एक चरवाहा अपने मवेशियों के साथ वहाँ आया। उसने उस लड़की की हड्डियों को चुनकर उन्हें सारंगी में लगा दिया। सारंगी में हड्डियों के लग जाने के बाद वह इतनी सुरीली हो गई कि जो भी सुनता वह मंत्र–मुग्ध हो जाता। उस चरवाहे ने गाय चराने का काम छोड़ दिया और घूम–घूम कर सारंगी बजाने लगा। उसे सारंगी सुनने वालों से काफी पैसा मिल जाता। एक बार वह घूमते–घूमते गायक के रूप में राजमहल की ओर चला गया। जहाँ बड़ी बहन रानी के रूप में रहती थी। उस सारंगी के संगीत ने राजपरिवार के सभी सदस्यों को तुरन्त मोहित कर लिया। सुनने वालों में बड़ी बहन (रानी) भी थी। इस संगीत का उस पर बड़ा उदासी भरा प्रभाव पड़ा, जब उस विचित्र सारंगी से इस गीत का बोल निकल पड़ा :–

''हमलोगों के प्यारे पिता, देने गये जंगल में, हमलोगों को तिरिल फल।
हाय ! हमलोगों ने खो दिया उन्हें, हमेशा–हमेशा के लिये।
बड़ी बहन गयी पानी लाने, वह कभी नहीं लौटी और, राजकुमारी बन गयी।
अब शेष है मेरी हड्डियाँ, सारंगी में इस अजनबी के।
हमेशा के लिए खो गये, अपने सगे लोगों के लिये, अब रोते रहना शेष है।''

इस संगीत ने राजकुमारी के हृदय को दुःखी कर दिया और वह इस संगीत को और अधिक सुन न सकी। वह राजमहल के एक कमरे में आ गयी और

फूट–फूट कर रोने लगी। राजकुमार ने उसे दुःखी देखकर उसके दुःखी होने का कारण पूछा। उसे आश्चर्य हुआ कि जिस संगीत ने पूरे राजमहल को प्रफुल्लित किया, फिर राजकुमारी ने प्रथमबार अपनी जीवन–कथा सुना दी और उस विचित्र सारंगी को पाने की इच्छा व्यक्त की।

राजकुमार उसे प्रसन्न रखना चाहता था। अतः उसने आदेश दिया कि सारंगी वादक राजमहल में ही मेहमान के रूप में रहेगा। उसे खाने–पीने का सभी सामान दे दिया गया। अपना भोजन तैयार करने के बाद वह नदी में स्नान करने चला गया। जब वह बाहर चला गया, तो राजमहल के नौकरों ने उस सारंगी को छिपा दिया और उसी तरह दिखने वाली दूसरी सारंगी उसके स्थान में रख दी।

सारंगी वादक ने भोजन किया और उसके उत्तम संगीत के लिए उसे यथेष्ठ पुरस्कार दिया गया। जब वह विदा होने लगा तो राजकुमार ने उसे आदेश दिया कि वह सारंगी को अब उस शहर में नहीं बजायेगा। वह सारंगी वादक बहुत प्रसन्न होकर अपने घर लौट आया। परन्तु घर वापस आने पर उसने पाया कि उसकी सारंगी का जादू भरा संगीत अब समाप्त हो गया है। उसने संगीतकार का कार्य छोड़ दिया और अपने पुराने चरवाहे का काम फिर से शुरू कर दिया।

कुछ समय बाद पुराना राजा के मरने के बाद राजकुमारी रानी बन चुकी थी और राजसिंहासन पर आरूढ़ हो चुकी थी। तब तक जंगल में जाकर वह अपनी छोटी बहन की खोपड़ी हड्डियाँ आदि एकत्रित कर ली थी। अस्थि के उन अवशेष को एक नये घड़े में पिसी हुई हल्दी चावल के आटे और सिंदूर से सजाकर एक पूजा–स्थल (जाहेर) में वह कलश रख दी। उसने सिंगबोंगा (परमेश्वर) से बड़ी तन्मयतापूर्वक प्रार्थना की कि उसकी बहन फिर से जीवित हो जाय। सिंगबोंगा ने उसकी प्रार्थना सुन ली। सिंगबोंगा से उसने अमृत का दान प्राप्त किया जिसे उसने कलश पर छिड़क दिया। उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही, जब उसकी बहन पुनर्जीवित हो उठी। इसके बाद दोनों बहनें बहुत दिनों तक सुखपूर्वक एक साथ रहने लगीं।

**(ज) लोक कथाओं की कथानक रूढ़ियाँ** :–लोक कथाओं में अभिप्रायों का विशेष महत्व है। ये ही इनकी रोचकता बढ़ाते हैं, इससे लोक कथाओं में अलौकिकता आती है एवं उनके सौंदर्य की अभिवृद्धि होती है। वस्तुतः लोक कथा का अस्तित्व इन अभिप्रायों से ही सिद्ध होता है। इन अभिप्रायों अथवा कथानक रूढ़ियों का क्षेत्र विस्तृत है। कथा के निर्माण में ये अभिप्राय ही मूल कारण माने गये हैं। कहानी का केन्द्र बिन्दु अभिप्रायों में ही रहता है। अँग्रेजी में अभिप्राय को "मोटिफ" कहते हैं।[14]

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "अभिप्राय कहानियों का अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग है। उनका कथन है कि ईंट–गारे की सहायता से जैसे भवन बनते हैं, वैसे ही भिन्न–भिन्न अभिप्रायों की सहायता से कहानियों का रूप सम्भावित होता है।"[15] अभिप्रायों अथवा कथानक रूढ़ियों की व्यापकता भी सर्वमान्य है। एक ही कथानक रूढ़ि कई जातियों की लोक–कथाओं में समान रूप से मिलती है। इस

सम्बन्ध में आर्चर ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है – "अभिप्रायों के व्यापक प्रसार के कारण शायद ही कोई ऐसी कथा होगी जो किसी एक कबीले की अपनी सम्पत्ति कही जा सके। हो सकता है कि एक संताल कथा का अभिप्राय (मोटिफ) बस्तर की किसी मुखिया कथा में भी दिखाई दे जाय।"[16]

डॉ० श्यामाचरण दूबे का मत है कि अभिप्राय के आधार पर सम्पूर्ण विश्व के लोक–कथा साहित्य का विश्लेषण हमें बतलाता है कि मानव के नये अभिप्राय निर्मित करने की शक्ति आश्चर्यजनक रूप से सीमित है। थोड़े से ही अभिप्राय नए–नए रूपों में हमें मानव जाति की लोक–कथाओं में मिलते हैं।[17] डॉ० सत्येन्द्र के मतानुसार–"कथानक का मूल तत्व अभिप्राय ही है। लोक–कथा का परम्परागत रूप, सांस्कृतिक रूप, मनोविज्ञान रूप, नैतिक रूप और भ्रमणकारी रूप अभिप्राय से ही परिलक्षित होता है। संसार भर की लोक–कथाओं की एकता इसी के द्वारा अभिव्यक्त की गई है।"[18] श्री स्टिस्थ थॉमसन के विचार से "अभिप्राय कथा का लघुतम तत्व है जो परम्परा में स्थिर रूप से रहने की शक्ति रखता है। इस प्रकार की शक्ति रखने के लिए उसमें कुछ असाधारण और अपूर्णता होनी चाहिए। अभिप्राय कथानक के निर्माण तत्व हैं।" उन्होंने अभिप्रायों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है –

**प्रथम**–कर्त्ता कथाओं में देवता, असाधारण पशु, आश्चर्यजनक प्राणी, जैसे – चुड़ैल, राक्षस, अप्सरा और पारम्परिक मानव–चरित्र जैसे – प्रिय सबसे छोटा बच्चा या क्रूर सौतेली माँ।

**द्वितीय**–कुछेक ऐसी वस्तुएँ जो कथा व्यापार में काम आने वाली होती हैं, जादू की वस्तुएँ, असाधारण रिवाज, अनोखे विश्वास।

**तृतीय**–कुछ घटनाएँ जिनमें बहुत से अभिप्राय आ जाते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण से पता चलता है कि अभिप्राय (कथानक रूढ़ियाँ) कथानक के सभी अंगों को अपने में समेटे हुए है, क्योंकि कथानक घटना, चरित्र और कार्य के मेल से बनाता है। अभिप्राय कथानक का लोक कथात्मक रूप है। श्री चन्द्र जैन के विचार से इन अभिप्रायों (कथानक रूढ़ियों) के निर्माण में कथक्कड़ों एवं लोक कथाकारों की कुशलता प्रशंसनीय है। ये कभी–कभी कथाओं में विलक्षण पात्रों को लाकर श्रोताओं की जिज्ञासा को पूर्ण करते हैं एवं उनके मानसिक धरातल को ही परिलक्षित कर देते हैं।[19]

**ब्लूमफील्ड के अनुसार**–"सर्वत्र प्रत्येक कथक्कड़ और संग्रहकर्त्ता मानो ऐसा लगता है कि इन अभिप्रायों की समूची माला को उठाता है जिसकी तुलना हम मन की माला से कर सकते हैं, उसे वह छिन्न–भिन्न कर देता है, जिससे मनके चतुर्दिक बिखर जाते हैं और फिर प्रारम्भ से वह इन मनकों को पिरोता है।"[20]

भारतीय साहित्य में परकाया प्रवेश, लिंग परिवर्तन, पशु–पक्षियों की बातचीत, किसी बाह्य वस्तु में प्राणों का वसना आदि कितने ही अभिप्राय हैं। ये सभी कथानक रूढ़ियाँ प्रधानतः दो प्रकार की हैं–एक लोक–विश्वास पर आधारित और दूसरी कवि कल्पित।[21]

**श्री जगदीश त्रिगुणायत के विचार से**–"कथाओं में जब एक ही तत्व के सरल आकर्षण के कारण उसका बार–बार प्रयोग होता है और जब ऐसे प्रयोग की परम्परा बन जाती है तब उसे "कथानक–रूढ़ि" या "अभिप्राय" (मोटिफ) कहते हैं। ऐसी रूढ़ियाँ बने बनाये हुए पूल के समान होती हैं, जब कहानीकार के सामने कोई आ जाता है तब पूल तुरन्त बिछा दिया जाता है। ये रूढ़ियाँ खूब प्रचलित और लोकप्रिय होती है। बिना इस लोकप्रियता के गुण के कोई बात रूढ़ि नहीं बन सकती।"[22]

श्री चन्द्र जैन ने आदिवासियों की लोक कथाओं में पाए जाने वाले कथानक रूढ़ियों का संग्रह किया है। उनके अनुसार निम्नांकित कथानक रूढ़ियाँ प्रायः किसी–न–किसी रूप में सभी आदिवासी लोक कथाओं में मिलती हैः–

1. आपत्ति काल में कुल देवता द्वारा सहायता, 2. स्वप्नों के माध्यम से भविष्य का संकेत, 3. नाग का रस्सी बन जाना, 4. जादू की लकड़ी, 5. जादू की डोरी, 6. साधु का साथ एवं आशीर्वाद, 7. सोने की अँगूठी का खो जाना, 8. सोते हुए हँसना और रोना, 9. साँप द्वारा छिपे हुए धन का संकेत, 10. सिंह का आदमी के साथ भोजन करना, 11. खरगोश का नाचते हुए लड़की बन जाना, 12. धरती का हिलना, 13. आकाश से आग बरसना, 14. गगन से धन की वर्षा, 15. इन्द्रलोक से गजराज का धरती पर आना, 16. सियार की भविष्यवाणी, 17. सियार द्वारा निर्णय देना, 18. शेर का रात में बदला लेना, 19. शेर का घर के पीछे खड़ा होकर मनुष्यों की बातें सुनना, 20. शर्त्तों की पूर्ति के पश्चात् युवक का विवाह होना, 21. मुर्गे के कानों में हजारों मन अनाज का रखा जाना, 22. परियों का वरदान, 23. हाथी द्वारा राजा का चुनाव, 24. मंत्रित जल के छिड़काव से मरे हुए आदमी का जीवित होना 25. तोता के शरीर में प्राण का निवास, 26. राक्षस की पुत्री द्वारा प्रेमी को मक्खी बनाना, 27. मानव को पक्षियों द्वारा उद्‌बोधन, 28. सुनहरे बालों की परियों की पहचान, 29. जादू–टोना का पेड़, 30. पशु–पक्षियों का मानव बोली में बदलना, 31. रूप परिवर्तन एवं लिंग परिवर्तन, 32. होड़ अथवा स्पर्धा, 33. चूहे का राजकुमारी से विवाह करना, 34. चूहों द्वारा लोहे का भक्षण, 35. चील द्वारा हाथी का भक्षण, 36. बिल्ली द्वारा हाथी को आकाश में उड़ा ले जाना, 37. लाल कपड़े का चमत्कार, 38. किसी शर्त्त के तोड़े जाने पर परी का अदृश्य हो जाना, 39. सत्य की विजय, 40. अपराधी को जलते हुए अंगारे पर चलने के लिए बाध्य करना, 41. बुद्धि परीक्षा, 42. पहेलियों को बुझाना, 43. स्त्री हठ, 44. शाप के द्वारा हरे वृक्ष को धरती पर गिराना, 45. मंत्रों द्वारा सिंह के मुँह को बन्द करना, 46. मानव द्वारा पशु–पक्षियों की बोली समझना, 47. भाग्य लेख, 48. भौजाई की फटकार, 49. अद्‌भुत न्याय, 50. मौन–भंग, 51. करामाती अंजन, 52. अँगूठी के माध्यम से प्रेम की पहचान, 53. मंत्र बल से जल भरे तालाब का सूख जाना, 54. प्रसन्न होकर साँप द्वारा हीरे की अँगूठी देना इसके अतिरिक्त श्रीचन्द्र जैन ने बुन्देली, बघेलखण्डी और ब्रजलोक कथाओं से भी कुछ कथानक रूढ़ियों का संग्रह किया है, जो आदिवासी लोक–कथाओं में भी पाई जाती है। यथा –1. आम खाने पर गर्भ रह जाना, 2. देवी–देवताओं का

मानव–रूप धारण करना, 3. प्राण प्रवेश, 4. पशु–पक्षियों की अभिभावकता, 5. भाइयों का विश्वासघात, श्री जगदीश त्रिगुणायत ने "मुण्डा" लोक–कथाओं में पाई जाने वाली कतिपय कथानक रूढ़ियों का संग्रह किया है, जो निम्नांकित हैं:–

1. राजा के सात बेटे, सात बेटियाँ।
2. नगाड़े में मधुमक्खियों को बन्द कर ले जाना और शत्रु पर छोड़ देना।
3. राजकुमारी की परीक्षा में घोड़ा, पोड़ा, चारपाई, भैंस और बकरे का माँस।
4. शिकार में तम्बाकू पीने की इच्छा से आग के लिए कहीं आदमी भेजना और किसी अन्य सुन्दरी से भेंट।
5. सींग से अभीष्ट फल की प्राप्ति।
6. क्रूर और भयानक राक्षसों द्वारा बहुत सी लड़कियों का पालन और कोमल व्यवहार।
7. नया कुआँ खोदकर चुमावन के नाम पर छली औरतों को ढकेल कर मार डालना।
8. राजकुमारों का व्यापार के लिए निकलना, रूपैये का दुरूपयोग और पुनः चमत्कार।
9. सहायता के लिए विवाह का आश्वासन।
10. कटे हुए नाक–कान द्वारा असली शिकारी की पहचान।
11. हाथी द्वारा उपयुक्त वर के गले में माला डालना।
12. राक्षस का भैंस बनकर बाजार के रास्ते में लेटना और पुनः राक्षस बनकर पालतू बच्चों के लिए खिलौना प्राप्त करना।
13. लड़कियों का भाई या पति की चिता में कूदकर आत्म बलिदान।
14. द्वार पर आज्ञा लिखकर नालायक बेटे को घर से निकालना।
15. किसी बाघ–भालू के द्वार पर पहरेदार शिकारी का सो जाना और ढाल तलवार का पहरा देना। कथानक रूढ़ियों के विषय में विद्वानों से, जिनमें मुख्य स्टिथ टॉमसन है, ने यह विचार व्यक्त किया है कि कथानक रूढ़ियाँ या "मोटिफ" का क्षेत्र बड़ा व्यापक हे। यह अन्तर्राष्ट्रीय है। अनेक देशों की लोक–कथाओं में एक ही प्रकार के "मोटिफ" मिल सकते हैं। इसका विस्तृत उदाहरण उन्होंने अपने विशालकाय ग्रन्थ "मोटिफ इन्डेक्स ऑफ फॉक लिटरेचर" में प्रस्तुत किया है।

**2. "हो" कथानक रूढ़ियों के भेद एवं प्रमुख "हो" कथानक रूढ़ियाँ :**

अन्य आदिवासी लोक कथाओं की तरह "हो" लोक–कथाओं में भी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग काफी संख्या में हुआ है। ये कथानक रूढ़ियाँ देवी–देवता सम्बन्धी, मानव–व्यापार (आचरण आदि पर आधारित), मानव–व्यवहार या सम्बन्ध/सम्बन्धी, पशु–पक्षी सम्बन्धी, अतिप्राकृतिक शक्तियों सम्बन्धी, संख्या सम्बन्धी, प्रलय सम्बन्धी, पुनर्जीवन संबंधी, परकाया प्रवेश संबंधी, वृक्ष–पुष्प संबंधी, राक्षस संबंधी आदि विषयों पर आधारित हैं। "हो" लोक–जीवन सघन वन प्रान्तरों में ही पल्लवित–पुष्पित हुआ है। अतः इनकी लोक कथाओं में पशुओं एवं

अन्य वन्य जीवन से संबंधित वस्तुओं का कथानक रूढ़ियों के रूप में अतिशय प्रयोग हुआ है। राजा, राजकुमार या अन्य सामन्तवादी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग सामन्तवादी प्रभाव का प्रतिफल है। "हो" जादू–टोना, भूत–प्रेत आदि के प्रभाव से प्रभावित रहे हैं।

उन्होंने अपने समाज को सबसे ऊँचा माना है। अतः उनकी कथानक रूढ़ियों में साधारण चरवाहा या नौकर भी आश्चर्यजनक शौय–वीर्य का प्रदर्शन कर अभीष्ट एवं असम्भव कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ होता है। "सिंगबोंगा" या अन्य बोंगा का मानव रूप, विशेषकर वृद्ध पुरूष के रूप में प्रकट होना, "हो" लोक–कथाओं में कथानक रूढ़ियों के रूप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। "हो" लोक–कथाओं में निम्नांकित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है:–

1. सिंगबोंगा का मानव (नौकर) के रूप में आना (सेंगेल गमा)।
2. सिंगबोंगा का दया करने हेतु बूढ़ा–बूढ़ी या ब्राह्मण के रूप में प्रकट होकर वरदान देना (राजा की लड़की एवं मंत्री के लड़के की कथा)।
3. सिंगबोंगा द्वारा आकाश से आग की वर्षा (सेंगेल गमा)।
4. सिंगबोंगा द्वारा मूर्ति को युवती बना देना (हेरोः पर्व की कथा)।
5. परी का फूल में वास एवं मानव रूप में रूपान्तरण (फूल परी)।
6. परी का रहस्य खुलने पर गायब हो जाना (फूल परी)।
7. राक्षस का मिलना और मनुष्य को खाने के लिए ले जाना (गरीब लड़के की कथा)।
8. राक्षसों द्वारा राजकुमारी से विवाह करने एवं हरण करने का षड़यंत्र (राजकुमारी और मंत्री पुत्र की कथा)।
9. राक्षस द्वारा चमत्कार रोटी का वृक्ष (गरीब लड़के की कथा)।
10. राक्षस के नाक–कान काटकर पहचान प्रस्तुत कर पुरस्कार पाना (मसूर दाल की कथा)।
11. गरीब लड़की को जंगल में राजकुमार का मिलना और विवाह (दो बहनों की कथा)।
12. शर्त्त पूरा करने पर गरीब लड़के को राजकुमारी से शादी (दहेज की उत्पत्ति, कुम्हार के लड़के की कथा, बीर चेड़ेया, दो पंडुक की कथा)।
13. परकाया प्रवेश या रूपान्तर (डोंढ़ साँप की कथा, सबई घास की उत्पत्ति, कुम्हार के लड़के की कथा, गले में चिन्ह वाली पंडुकी)।
14. पुनर्जन्म या पुनर्जीवित होना (कुम्हार के लड़के की कथा, मनुष्य भक्षी की कथा)।
15. सन्देशवाहक पक्षी (आग की वर्षा, जंगली भैंसों का पालतू होना)।
16. पशु धातृ या अभिभावक – पोषक (कुम्हार के लड़के की कथा, सांभर धातृ)।
17. बाघ का मानवता पूर्ण व्यवहार (नवयुवती की कथा, दुष्ट भाभी का अन्त)।
18. सियार या लोमड़ी द्वारा न्याय (एक डाकुआ की कथा, एक लोमड़ी का कलापूर्ण छल, एक सियार की धूर्त्तता)।

19. सात समुद्र पार जाना (बीर चेड़ेया)।
20. हाथी को सात समुद्र पार फेंकना (बीर चेड़ेया)।
21. हड्डी के अवशेष से पुनर्जन्म (मनुष्य भक्षी की कथा, सबई घास की कथा, नवयुवती की कथा, गले में चिन्ह वाली पंडुकी, दो बहनों की कथा।
22. दुष्ट भाभियाँ एवं उनका अन्त (दुष्ट भाभी की कथा, सबई घास की कथा, नवयुवती की कथा, गले में चिन्ह वाली पंडुकी)।
23. साँप तथा शेरनी द्वारा दूध देना (छोटी बहन की कथा)।
24. चूहे का मनुष्यवत व्यवहार एवं गुप्त सूचना देना (बुईदू बुढ़ा एवं चूहे की कथा)।
25. सात भाई एवं एक बहन (छोटी बहन एवं सांभर धातृ)।
26. दुष्ट स्त्री को कुएँ में डालकर मार देना (छोटी बहन की कथा)।
27. सात की संख्या (रितुई गोंडाई की कथा, एक भाई का प्रतिशोध, दुष्ट भाभी का अंत, एक सांभर धातृ, लुगुन गोत्र की कथा, पूर्ति गोत्र की कथा, राजकुमारी और मंत्री पुत्र की कथा)।
28. मार्ग में राजकुमारी का मिलना और शादी देना (मसूर दाल की कथा)।
29. बाघ का मानव शिशु के लिए खेल की सामग्रियाँ प्राप्त करना (कुम्हार के लड़के की कथा)।
30. सर्प का अण्डा खाने से सर्प बन जाना (डोंढ़ साँप की कथा)।
31. पशु–अंग (सींग आदि) से विभिन्न जीवों का जन्म (दो पंडुक बच्चों की कथा)।
32. आम खाने से गर्भ धारण (दुष्ट रानी की कथा)।
33. उपदेश या वरदान से कार्य सिद्ध होना (दुष्ट रानी की कथा)।
34. सुन्दर केश से मोहित होकर राजकुमारी से शादी करना (जंगली भैंसों का पालतू होना)।
35. पशु द्वारा मानव की तरह प्रतिशोध लेना (एक लोमड़ी और भालू, दो सियार, एक बाघ और एक बन्दर की कथा)।
36. साँप का रस्सी बन जाना (गले में चिन्ह वाली पंडुकी का जन्म)।
37. गीत गाने से तालाब में पानी भर जाना (वृक्ष एवं सबई घास का जन्म)।
38. एक राजा की सात रानियाँ (दुष्ट रानी की कथा)।
39. छोटी रानी का दुष्ट होना (दुष्ट रानी की कथा, राजा और पोंचइति)।
40. पुत्र प्राप्ति के लिए तपस्या करना (दुष्ट रानी की कथा)।
41. पशु द्वारा मानवतावश प्रतिशोध लेना (एक लोमड़ी और एक भालू, दो सियार, एक बाघ और एक बन्दर की कथा)।
42. अपने रक्षक को मारने के लिए तैयार होना (सियार की चालाकी, एक लोमड़ी का कलापूर्ण छल)।
43. बाघ का मनुष्य के साथ भोजन करना (एक नवयुवती की कथा)।
44. मछली के पेट से मानव का जन्म (कुम्हार के लड़के की कथा)।

45. मनुष्य के हड्डी–माँस से फलदार वृक्ष का जन्म (मनुष्य भक्षी की कथा)।
46. वृक्ष का मानव की तरह बोलना (मनुष्य भक्षी की कथा)।
47. वन में या मार्ग में अनायास धन की प्राप्ति (एक भाई का प्रतिशोध)।
48. ढोल में मधुमक्खियों को भरना और उनसे दुश्मन पर हमला करवाना (दो भाईयों का साहसिक कार्य)।
49. मानव हड्डी का वाद्य यंत्र में प्रयोग से मानव स्वर निकलना (दो बहनों की कथा)।
50. अमृत या अभिमंत्रित जल से पुनःजीवित हो जाना (दो बहनों की कथा)।
51. जाइयेना का पता लगाने के लिए सरसों के बीज का प्रयोग (राजकुमारी एवं मंत्री पुत्र की कथा)।
52. सूप का कान तथा कुदाल का दाँत के रूप में प्रयोग करना (मसूर दाल की कहानी)।
53. राजकुमारी को भगा ले जाना (राजकुमारी और मंत्री पुत्र की कथा)।
54. जादुई तलवार (राजकुमारी और मंत्री पुत्र की कथा)।

उपर्युक्त कथानक रूढ़ियों से स्पष्ट होता है कि ''हो'' लोक–कथाओं में भी कथानक रूढ़ियाँ काफी संख्या में प्रयुक्त हुई है, जो लोक–कथा को पूरा करने एवं मनोरंजक बनाने का प्रसाधन है।

**(झ) 1. हो लोक कथाओं की विशेषताएँ** :–''हो'' लोक कथाओं की भाषा ''हो'' भाषा है, जो ''मुण्डारी'' भाषा का ही एक रूप है। यह योगात्मक परिवार की भाषा है। ''हो'' भाषा के स्वरूप पर पूर्व में ही विचार जा चुका है। ''हो'' लोक कथाएँ अन्य लोक कथाओं की तरह सरल एवं आकर्षक शैली में अभिव्यक्ति की गई है। ''हो'' लोक जीवन में व्यवहृत या चालू शब्दों, उक्तियों, गीतों आदि का प्रयोग ''हो'' लोक कथाओं में किया गया है। ''हो'' भाषा की लोक कथाएँ एक परिनिष्ठित हो भाषा से अलग हैं। ''हो'' लोक–कथाएँ अधिकांशतः कथक्कड़ों से संग्रहीत हैं, अतः इनमें लोक प्रचलित शब्द स्वयं सघन वन –प्रान्तरों में प्रचलित शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। पूर्ववर्तीय कथाओं में ''हो'' भाषा का मौलिक रूप उभरता है तो परवर्ती लोक कथाओं में कुछ हिन्दी या अन्य भाषाओं (बंगला या उड़िया) के शब्द भी आ गये हैं। ''ताँती'' शब्द का पर्याय उड़िया में ''पान'' (पाण) से ''हो'' में ''पियायं'' (महली / पियाज) हो गया है। ''पान और पियाज रोटी'' कथा में इसी ''पियाज'' का प्रयोग किया गया है।

हिन्दी का ठीक, सुख, प्रधान शब्द ''हो'' लोक कथाओं में टिकि, सुकू, एवम् परदान बनकर व्यवहारित किये गये हैं।

इन कथाओं में वर्ग भेद से भाषा का भेद नहीं उभरता है। राजा भी एक साधारण ''हो'' की तरह ही ''हो'' भाषा बोलता है। अघोष ध्वनि प्रधान होने के कारण ''हो'' लोक कथाओं में गुस्सा होने का बिगड़कर बोलने पर भी भाषाओं में कोई विकार या विद्रूपता नहीं आती।

''हो'' लोक कथाओं में पात्र निर्जीव एवं सजीव दोनों ही है। अतः क्रिया के साथ एक विशेष सूचक चिन्ह लगाकर दोनों का अर्थ ध्वनित किया जाता है। इसी प्रकार क्रिया एवं पुरूष के विभिन्न रूपों में भिन्न–भिन्न सूचक चिन्हों को लगाकर अर्थ परिवर्तन किया जाता है, जो ''हो'' भाषा की विशेषता है और लोक कहानियों की भाषा में भी इसी का प्रयोग होता है।

''हो'' लोक कथाओं में लिंग भेद दर्शाने के लिए भी अलग–अलग शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो ''हो'' भाषा में प्रचलित है। जहाँ आदमी के बच्चे–बच्ची का विवरण आता है, वहाँ कोवा या कुई (कोवा होन या कुई होन) तथा पशु–पक्षी का विवरण आता है, वहाँ सान्डी सिम तथा एंगा सिम (मुर्गा–मुर्गी) का प्रयोग किया गया है।

''हो'' लोक कथाओं में भी आदर सूचक एवं अनादर सूचक शब्द का प्रयोग किया गया है। जब किसी को आदर पूर्वक बैठने को कहा गया है तो ''दुबबेन'' का प्रयोग किया गया है और अनादर सूचक के रूप में ''दुब में'' का प्रयोग हुआ है। ''बेन'' आदर सूचक एवं ''में'' अनादर सूचक चिन्ह बन गये हैं।

अतिशय दर्शाने के लिए भी ''हो'' भाषा में ''एसु'' शब्द का प्रयोग होता है। ''हो'' लोक कथाओं में भी इसका प्रयोग हुआ है। ''गरीब लड़के की कथा'' में या ''अग्नि की वर्षा'' में इसका प्रयोग किया गया है। ''एसुरेंगेतना'' (बहुत गरीब) एवं ''एसु कुर्कुर लेना'' (बहुत गुस्सा) शब्दों का प्रयोग इन कथाओं में किया गया है। जहाँ कहीं प्राचीन काल (काफी पहले) का प्रयोग होता है, ''हो'' लोक कथाओं में ''एसु सिरमा रेया'' (बहुत वर्ष) शब्द का व्यवहार किया गया है।

''हो'' लोक कथाओं में भी छोटे–छोटे वाक्य कथोपकथन के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। ''छोटी बहन'' शीर्षक कहानी में भाभियाँ ननद से कहती हैं–अमसेन में, ना–आः बिंङ तोवा आगुई में'' (तुम जाकर साँप का दूध ले आओ)। यह आदर्शात्मक वाक्य बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जब छोटी बहन को सर्प का दूध नहीं मिलता है तो वह रोने लगती है। इस पर सर्पिनी आकर उसे दूध देती है और सांत्वना देकर विदा करती है–''हुन माई, आलमराःयाः, आलम दुकुवाः आंजा तोवा अन अमाः हिलिमतेको समाकोम।'' (ऐ लड़की, तुम दुःखी होकर रोओ मत, मेरा दूध ले जाकर अपनी भाभियों को दे दो)। इस प्रकार सरल ढंग से तथ्यों को ''हो'' लोक कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। भाव की प्रगल्भता एवं करूण का सचित्र वर्णन भी ''हो'' भाषा द्वारा कई कहानियों में अभिव्यक्त किये गये हैं। ''छोटी बहन'' में छोटी बहन को जब भाभियाँ सेमल के पेड़ पर चढ़ाकर सीढ़ी हटा लेती हैं, तो वह पेड़ पर ही रोती–कलपती अपने भाइयों को पुकारती है। रोते–रोते उसके अश्रुपूरित नेत्र सूख जाते हैं – ''राःआः राःआः से मेड़् दाः जाकेन रोयाना।'' इस छोटे से वाक्य में भाषा की प्रगल्भता अवलोकनीय है, जो ''हो'' भाषा की विशेषता है।

''हो'' लोक कथाओं में बहुत से ऐसे शब्द आये हैं, जो हिन्दी भाषा से लिये गये हैं। ''गदराया'' हिन्दी लोक भाषा शब्द है, जिसका अर्थ होता है ''पुष्ट'' या पूरा

तैयार हुआ। ''बुइदू बुढ़ा और चूहे'' की कथा में इसका प्रयोग ''गोदरा–गोदरा'' भिण्डी (पुष्ट पेड़) के रूप में किया गया है। इसी प्रकार ''बेपार'' (व्यापार), दुकु (दुख), ब्लू (भालू), साबिन (सब), सीढ़ी (सीडी), हाती (हाथी), सिपाई (सिपाही), डिकी (ढेंकी), बान्दा (बाँध या तालाब), बुड़ा (बूढ़ा), दिन दोबा (धोबी), पोरजा (प्रजा), सुकुरी (सुअर), राक्षस, बोस्ता (बस्ता या बोरा), मुचि (मोची), प्रीतियान (प्रीति या प्यार करना), राजा, मंत्री आदि अनेक शब्द हिन्दी से ''हो'' भाषा में आये हैं, जिनका प्रयोग भावाभिव्यक्ति के लिए किया गया है।

''हो'' लोक कथाओं में जहाँ किसी विषय या बात पर अधिक जोर देना होता है, वहाँ एक ही शब्द को दो बार प्रयुक्त कर निहित भावार्थ को अभिव्यक्त किया गया है। जैसे – ''हजार–हजार बचर'' (हजारों वर्ष), कुसुड–कुसुड (सुबक–सुबक कर), जोम–जोम ते (खा–खाकर) आदि शब्दों का प्रयोग अनेक कथाओं में मिलता है। संक्षिप्त एवं संश्लिष्ट शब्दों का प्रयोग ''हो'' लोक कथाओं में पाये जाते हैं, जो कथक्कड़ को भावाभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त होते हैं।

**2. ''हो'' लोक कथाओं की संरचनात्मक विशेषताएँ** :–अन्य लोक कथाओं की तरह ''हो'' लोक कथाओं में भी प्रेम का अभिन्न पुट, अश्लीलता का अभाव, मानव की मूल प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति, समृद्धि और मंगल कामना की भावना, अन्त संयोग से, रहस्य, रोमांच और अलौकिकता की प्रधानता, उत्सुकता की प्रबल भावना और वर्णन में स्वाभाविकता एवं सहजता का बोध का अवलोकन करते हैं। ''भाई–बहन'' का प्रेम इतना गहरा और सात्विक है कि बहन को कष्ट देने वाली पत्नियों की हत्या भाई कर देते हैं।

''दुष्ट भाभी'' का अन्त, छोटी बहन आदि कहानियाँ उस तथ्य को उजागर करती है। सभी कहानियों का अन्त संयोग से ही होता है। कहीं–कहीं वियोग का भी पुट मिलता है, जो कहानी को सार्थक बनाने के लिए प्रयुक्त होता है। ''सबई घास की कथा'', ''गले में चिन्ह वाली पंडुकी'' आदि कथाओं का अन्त वियोग से होता है। ''मंत्री पुत्र एवं राजकुमारी की कथा'', ''छोटी बहन'' आदि का अन्त संयोग से ही होता है। रहस्य, रोमांच एवं आलौकिकता आदिम जीवन का अभिन्न अंग है। ''हो'' लोक कथाओं में भी इनका बाहुल्य है। ''मसुर दाल की कथा'', ''कुम्हार के लड़के की कथा'', ''दो बहनें'', ''आग की वर्षा'' आदि कहानियों में रहस्य, रोमांच एवं पारलौकिक शक्तियों का प्रदुर्भाव हमें देखने को मिलता है।

सभी कथाओं में उत्सुकता बनी रहती है कि आगे क्या हुआ या होगा ? वर्णन सहज, सरल एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है। कहीं–कहीं कल्पना की उड़ान है तो कहीं–कहीं जीवन की कठोर यथार्थता सामने आ जाती है। ''फूल परी'' में केवल कल्पना है, तो ''एक भाई का प्रतिशोध'' में जीवन की यथार्थता, पारिवारिक कलह एवं उसका दुःखद अन्त दर्शाया गया है, जो हमारे समाज में निरन्तर चलता रहता है। इन लोक कथाओं में भी यथार्थवाद की अपेक्षा आदर्शवाद को ही अधिक अपनाया गया है।

''हो'' समाज का भावुक लोकमान्य इन कथाओं में उभर कर आया है जो दुःख को सुख में, विपत्ति को सम्पत्ति में, दरिद्रता को समृद्धि में बदल देने में विश्वास करता है। उसका हर कार्य ''सिंगबोंगा'' पूरा कर देते हैं। अलौकिक सिंगबोंगा लौकिक जीवन में ''बूढ़ा'', ''बूढ़ी'', ''ब्राह्मण'' या ''खुजली वाला नौकर'' के रूप में अवतरित होकर अपने भक्तों का कल्याण करते हैं। ''हो'' लोक कथाओं में यह पारलौकिक तत्व अत्यन्त मुखर होकर सामने आता है।

''सिंगबोंगा'' जहाँ ''चेरा'' का सृजन कर पृथ्वी का निर्माण करते हैं, वहीं पाप की अधिकता होने पर ''अग्नि प्रलय'' का आह्वान कर पाप को नष्ट कर देते हैं। यह ''हो'' लोक कहानियों के लोक–मानस की, लोक विश्वास की उपज है जो युगों से ''हो'' लोक कथाओं में कथक्कड़ों के माध्यम से चली आ रही है।

''हो'' लोक कथाओं में अन्य लोक कथाओं की तरह आशावादी दृष्टिकोण, भाग्यवाद एवं कर्मवाद का समन्वय, प्रकृति चित्रण की बहुलता एवं समानता की व्यापकता देखने को मिलती है।

''हो'' लोक कथाओं में एक बहन अपने भाइयों से मिलकर भाभियों के उत्पीड़न से मुक्त होने के लिए कई असंभव कार्य कर देती है। सर्प एवं शेरनी अपना दूध देती है (छोटी बहन) और सर्प उसकी लकड़ियों को बाँधकर घर तक पहुँचाता है ''गले में चिन्हों वाली पंडुकी''। इनके पात्र इतने साहसी हैं कि एक चरवाहा राजा के हाथी से लड़ता है और उसे उठाकर सात समुद्र पार फेंक देता है (वीर चेंडेया)।

एक साधारण चरवाहा राजकुमारी को प्राप्त कर लेता है। भाग्य और कर्म का सामंजस्य ''हो'' लोक कथाओं का मूल है। एक गरीब व्यक्ति अपने कर्म से बड़ा बन जाता है (मंत्री पुत्र और राजकुमारी की कथा एवं भैंसों का पालतू होना)। ''हो'' लोक कथाओं का जन्म ही प्रकृति की गोद में सुरम्य वनाच्छादित घाटियों में हुआ है। अतः प्रायः सभी कथाओं में प्रकृति चित्रण मिलते हैं। प्रकृति के पेड़–पौधे, पशु–पक्षी सभी मानववत् जीवन्तता के साथ इन लोक कथाओं में सहभागी बनते हैं। समानता या साम्यवादी दृष्टिकोण इन कथाओं में इतना अधिक है कि एक साधारण चरवाहा राजा की लड़की से अपने पौरूष के बल पर शादी कर लेता है।

लोक कथाओं की संरचना में कथानक, पात्र, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, देश–काल, भाषा शैली तथा उद्धेश्य विधायक तत्व होते हैं। इन्हीं तत्वों से कथा की रचना होती है।

''हो'' लोक कथाओं में सभी प्रकार के कथानकों को आधार मानकर कहानियाँ कही गयी हैं एवं उनका संकलन हुआ है। पौराणिक कथा (मिथ) के रूप में ''असुर कथा'', ''अग्नि की वर्षा'' आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक आख्यान के रूप में ''रितुई गोंडाई की कथा'', ''पशु कथा'', ''परी कथा'' आदि विभिन्न विषयों पर आधारित लोक कथायें ''हो'' लोक कथा साहित्य में वर्तमान हैं। ये सभी कथाएँ लोक जीवन पर आधारित हैं और इनमें लोक का राग–विराग, उदारता, संतोष, आत्म–निर्भरता, चतुराई, श्रद्धा, दया आदि का अवलोकन हम सब करते हैं।

इन कथाओं के पात्र "सिंगबोंगा" (परमेश्वर) से लेकर पशु–पक्षी, पेड़–पौधे तक हैं, जो कहानियों में समान रूप से भाग लेते हैं और कथा को आगे बढ़ाते हैं। बाघ भी मानववत् आचरण करता है और प्रसन्न होकर युवती को आभूषण आदि से अलंकृत कर विदा करता है (नवयुवती की कथा)। सियार या लोमड़ी न्याय करने में सहायक होते हैं और नीर–क्षीर न्याय मिलना उनके माध्यम से संभव हो पाता है (एक राजकुमारी का साहसिक कार्य)।

इन कथाओं में मनुष्य के अतिरिक्त देवी–देवत, राक्षस, पशु–पक्षी, परी, कुल्हारी, पेड़, नदियाँ आदि भी जीवन्त पात्र के रूप में आये हैं, जिनमें किसी–न–किसी रूप में मानवीय भावनाएँ विद्यमान हैं। "असुर कथा" एवं "आग की वर्षा" में "सिंगबोंगा" स्वयं पृथ्वी पर अवतरित होकर आसुरी प्रवृत्ति का नाश करते हैं। बुइदू बुढ़ा और चूहा, लोमड़ी और बूढ़ी, राजकुमारी और मंत्री का लड़का, दो पंडुक शाबक, एक लोमड़ी और भालू, एक लोमड़ी की धूर्त्तता आदि कहानियों में पात्रों की विविधता अवलोकनीय है।

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से भी "हो" लोक कथाएँ महत्वूपर्ण हैं। "हो" लोक जीवन में जो जिस प्रवृत्ति एवं स्वभाव का होता है, उसे लोक कथाओं में उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। बाघ को दम्भी, सियार एवं लोमड़ी को धूर्त्त, बन्दर को धोखेबाज (चालाक), भालू को बेवकूफ, तेली, नाई को चालबाज एवं धोखेबाज आदि के रूप में चित्रित किया गया है। चरित्र–चित्रण में व्यक्तिगत चरित्र से अधिक वर्गगत, जातिगत एवं समाजगत चरित्र का चित्रण किया गया है। अधिकांश पात्र प्रतीक के रूप में आये हैं जो एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

"हो" लोक कथाओं में भाभी को ननद के प्रति दुष्टता का प्रतीक माना गया है और भाई–बहन का स्नेह सम्बन्ध गहनता एवं पवित्रता की पराकाष्ठा पर रखा गया है। परन्तु एक भाई दूसरे भाई को फलते–फूलते देख नहीं सकता (एक भाई का प्रतिशोध)। छोटे भाई का चरित्र अधिक आदर्श रूप में दर्शाया गया है (मनुष्य भक्षी की कथा)। "हो" लोक कथाओं में चरित्र–चित्रण में मनोवैज्ञानिक प्रणाली को अपनाया गया है। जाति कथाओं में कुछ जाति को मूर्ख एवं कायर के रूप में चिन्हित किया गया है, जो "हो" समाज की मान्यता है (पान और गिरिगिट, पान द्वारा मच्छरों का शिकार)।

कथोपकथन की दृष्टि से "हो" लोक कथाओं में पात्रानुकूल भाषा एवं शैली को अपनाया गया है। सियार या लोमड़ी राज दरबार में जाकर भी अपनी धूर्त्तता के अनुसार ही बातें करते हैं (एक राजकुमार का साहसिक कार्य)। छोटे–छोटे सरल वाक्यों में ही विभिन्न पात्रों का कथोपकथन होता है। "हो" लोक कथाओं में कई स्थानों पर "स्वगत" कथानक भी प्रस्तुत किया गया है जो अवसरानुकूल है। "दो सियार", "एक बाघ और बन्दर की कथा" में सियारिन को जब मालूम होता है कि वह जिस खोह में है, वह बाघ का है और जब बाघ अपनी खोह के दरवाजे पर आता है तो वह बच्चों को पीटना शुरू कर देती है। बच्चे जब रोते हैं तो वह कहती है –"तुम लालची बच्चे, अभी तुम लोगों को सात बाघों का जिगर (कलेजी)

खिलायी हूँ। फिर भी तुम लोगों की भूख शान्त नहीं हुई, धैर्य रखो, एक दूसरा बाघ आ रहा है। .......... इतना जोर से मत चिल्लाओ कि वह शोरगुल सुनकर भाग जाय।'' और सियारिन के इस कथोपकथन के फलस्वरूप वह बाघ भाग जाता है।

इस प्रकार ''हो'' लोक कथाओं में अनेक प्रभावशाली और अर्थपूर्ण परन्तु सरल कथोपकथन की शैली अपनाई गई है जो कथा को रोचक और गतिशील बनाती है। मूर्खों के कथोपकथन में मूर्खता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। ''पान द्वारा मच्छरों का शिकार'' कथा में सबसे बुद्धिमान (बेवकूफ) पान मच्छरों को मारने का यह प्रस्ताव करता है – ''क्यों न हमलोग मच्छरों को तीर–धनुष से मार दें।''

देश–काल की दृष्टि से भी ''हो'' लोक कथायें कालक्रमानुसार विभिन्न सामाजिक स्थितियों को दर्शाती हैं। ''रितुई–गोन्डाई की कथा'' में राजतंत्र के युग में व्याप्त अत्याचार एवं दमन की कथा उजागर होती है। ''तुङ राजा और पंचायत'' की कथा में राज घरानों में व्याप्त कदाचार एवं राज घरानों की समकालीन स्थिति को दर्शाता है। गोत्र कथाएँ इस तथ्य को उजागर करती हैं कि बहुत पूर्व आदि काल में ''हो'' जाति में गोत्र–प्रथा नहीं थी, वह परवर्ती काल में, आखेट युग में प्रारम्भ हुई और वनों में भटकते ''हो'' समाज के विभिन्न वर्ग अपने कल्याणकारी फलों, झरनों, वृक्षों, पक्षियों आदि को अपना गोत्र–प्रतीक बनाया (कुदादा गोत्र, जामुदा गोत्र, मेलगान्डी गोत्र, देवगम गोत्र कथा)। वे कथाएँ अधिकांशतः उस काल को याद दिलाती हैं जब सामाजिक संगठन आदर्श था और पशु भी न्यायार्थ राज दरबार में जा सकता था। उस काल में देवी–देवता (सिंगबोंगा, नयेरा आदि) भी वरदान और अभिशाप देते थे। प्राकृतिक शक्तियों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की भावना अधिक थी और उनके प्रति देवत्व का भाव रखा जाता था। अन्यायी और दुष्टता की सजा सर्वत्र दी गई है। (एक भाई का प्रतिशोध, एक लोमड़ी का कलापूर्ण छल, दुष्ट भाभी का अन्त, छोटी बहन आदि)।

उद्देश्य की दृष्टि से ''हो'' लोक कथाएँ मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धन का साधन रही हैं। कुछ कथाएँ ऐसी हैं जो धार्मिक अनुष्ठानों के समय कही जाती है। ''असुर कथा'' इसी प्रकार की एक कथा है। इन कथाओं के माध्यम से शिक्षा, राजनीति के सिद्धान्तों की सुलभ जानकारी, कूटनीतिक, धार्मिक तत्वों एवं अनुष्ठानों का स्पष्टीकरण पर्वों की उत्पत्ति, जाति एवं गोत्र की उत्पत्ति की जानकारी देना एवं विभिन्न चरित्रों से समाज को अवगत करा देना इन कथाओं का उद्देश्य रहा है। पहले ''हो'' क्षेत्र में जवान लड़के एवं लड़कियों के लिए अलग–अलग रात्रि आवासगृह रहते थे, जहाँ बूढ़े एवं बूढ़ी स्त्रियाँ लोक कथाओं के माध्यम से लड़के–लड़कियों का मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन किया करती थीं। वह परम्परा किसी–न–किसी रूप में अभी भी ''हो'' समाज में विद्यमान हैं। ''हो'' लोक कथाएँ भी अधिकांशतः मौखिक ही रही हैं और विभिन्न कथक्कड़ इनको सुनाकर इनका प्रचार–प्रसार करते रहे हैं। ''हो'' समाज का गौरवशाली इतिहास, उनका शौर्य, आजाद एवं उन्मुक्त रहने की उनकी जिजीविषा इन कथाओं के माध्यम से जाग्रत रही हैं।

उपदेशात्मक ''हो'' लोक कथाएँ ''हो'' जाति को पापों की विभीषिका से बचाती हैं। ''अग्नि वर्षा'' और ''असुर कथा'' सुनकर कोई भी ''हो'' प्रकृति के विरूद्ध एवं ''सिंगबोंगा'' को अप्रसन्न करने का दुःसाहस नहीं कर सकता है। ''सिंगबोंगा'' की सर्वशक्तिमता एवं सर्वव्यापकता का परिचय उन्हें इन्हीं लोक कथाओं से मिलता है। इन्हीं कथाओं के माध्यम से वे पुनर्जन्म या पुनर्जीवन की कल्पना कर पाते हैं और इसके प्रति आस्थावान रहकर आत्मा को अमर मानते हैं (दो बहनों की कथा, राजकुमारी एवं मंत्री पुत्र की कथा, मनुष्य भक्षी की कथा आदि)।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से ''हो'' लोक कथाएँ अत्यन्त सरल, आकर्षक एवं प्रभावशाली प्रतीत होती है। सभी ''हो'' लोक कथाएँ ''हो'' भाषा में ही कही गयी हैं और उसमें ''हो'' भाषा के अतिरिक्त हिन्दी–बंगला आदि के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। व्यंग्य–विनोद, कटाक्ष, अवसरानुकूल शब्द आदि का प्रयोग ''हो'' लोक कथाओं में किया गया है। ''एक राजकुमार के साहसिक कार्य'' शीर्षक कथा में सियार जब न्यायाधीश के समक्ष गवाही देता है, तो कुटिल व्यंग्य प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर देता है कि ''कोल्हू का निर्जीव लट्ठा किसी जीवित घोड़ा को जन्म नहीं दे सकता।'' कथा का प्रारम्भ ''बहुत दिनों की बात है'', ''बहुत वर्ष हुए'', ''आदिकाल में'' आदि शब्दों से होता है, जो कथा की प्राचीनता सिद्ध करते हैं। कथा के द्वितीय चरण में उसके पात्र एवं घटनाएँ निरूपित होती हैं और इसी के साथ कथा का विकास होता है।

शैली की दृष्टि से ''हो'' लोक कथाएँ गद्यात्मक, पद्यात्मक एवं गद्य–पद्य मिश्रित (चम्पू) शैली में प्रस्तुत की गयी है। अधिकांशतः ''हो'' लोक कथाएँ गद्य में ही उपलब्ध हैं। परन्तु कुछ कथाओं में यथा–छोटी बहन, एक नवयुवती की कथा, मनुष्य भक्षी की कथा, फूल परी, वृक्ष एवं सबई घास का जन्म, दो बहनों की कथा आदि में गद्य के मध्य पद्य या गीत का प्रयोग भावाभिव्यक्ति को अधिक करूण, भाव प्रवण एवं प्रभावशाली बनाने के लिए किया गया है। ज्ञातव्य हैं कि श्रोताओं पर स्थायी प्रभाव डालने के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाता है, जो ''हो'' लोक कथाओं में भी द्रष्टव्य है। ''गले में चिन्ह वाली पंडुकी'' शीर्षक कथा में जब एक ननद को उसकी भाभियाँ उसे सेमल वृक्ष पर चढ़ा कर छोड़ दिया तो वह यह करूण गीत गाकर अपने भाइयों को बुलाती है :– ''रङ रङ के दामार कोम, कती दूरे रे दादा बरदा बेपारी'' और उसकी करूण आवाज को उसके भाई सुन लेते हैं और उसके पास आ जाते हैं।

''दो बहनों की कथा'' में भी छोटी बहन की हड्डी जब एक सारंगी में प्रयुक्त होती हैं तो उससे एक दर्द भरा गीत उभरता है –

''हमलोगों के प्यारे पिता, जंगल में हमलोगों को तिरिल फल देने गये थे, हाय, हम उन्हें हमेशा के लिए खो दिये। बड़ी बहन पीने का पानी लाने गई, वह कभी नहीं लौटी, और, राजकुमारी बन गई। अब मेरी हड्डियाँ ही, इस अजनबी की सारंगी में शेष है, हमेशा के लिए खो गये, अपने सगे लोगों के लिए, अब रोते रहना शेष है।'' इस गीत को सुनकर ही राजकुमारी अपनी छोटी बहन को पाने के लिए

विचलित हो उठती है और ''सिंगबोंगा'' की कृपा से उसे पा लेती है। इस प्रकार ये पद्य कथा के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है और इनसे कथायें अधिक रोचक और मार्मिक बन जाती है। लोक कथाओं के इस विशिष्ट शैली का प्रयोग ''हो'' लोक कथाओं में भी खूब हुआ है।

## सन्दर्भ ग्रंथ


1. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, इलाहाबाद, 1970, पृष्ठ संख्या 124।
2. डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ संख्या 116।
3. दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1973, पृष्ठ संख्या 2।
4. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक साहित्य, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1965, पृष्ठ संख्या 147।
5. डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ संख्या 02।
6. डॉ० सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक साहित्य, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1965, पृष्ठ संख्या 147।
7. डॉ० विद्या चौहान, लोक गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या 51।
8. फ्रेजर प्रिमिटिव कल्चर, प्रथम भाग, पृष्ठ संख्या 285।
9. श्री बी० सुकुमार हलदार, जनरल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भोल्यूम–1, भाग–2, 1915।
10. श्री बी० सुकुमार हलदार, जनरल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भोल्यूम–1, भाग–2, 1915।
11. श्री धीरेन्द्र नाथ मजूमदार, द अफेयर्स ऑफ ए ट्राइब, पृष्ठ संख्या 333–335।
12. श्री एस०सी०राय, मैन इन इंडिया (पत्रिका), भोल्यूम–01, संख्या–02, जून 1921, पृष्ठ संख्या 50–52।
13. श्री बी०एन० मजूमदार, ए ट्राइब इन ट्रांजिशन, पृष्ठ संख्या 205।
14. श्री चन्द्र जैन, लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर 1977, पृष्ठ संख्या 136।
15. डॉ० बासुदेव शरण अग्रवाल, लोक कथा, अंक ''आजकल'', मई 1954, पृष्ठ संख्या 23।
16. डॉ० बासुदेव शरण अग्रवाल, लोक कथा, अंक ''आजकल'', मई 1954, पृष्ठ संख्या 23।
17. डॉ० श्यामचरण दुबे, मानव और संस्कृति, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1940, पृष्ठ संख्या 182।
18. डॉ० सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० (प्रा०) लि०, दिल्ली–आगरा–जयपुर, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ संख्या 273।
19. श्री चन्द्र जैन, लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर 1977, पृष्ठ संख्या 67।
20. डॉ० सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० (प्रा०) लि०, दिल्ली–आगरा–जयपुर, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ संख्या 275।
21. श्री चन्द्र जैन, लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर 1977, पृष्ठ संख्या 65।
22. श्री जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पृष्ठ संख्या 83।

# षष्ठ अध्याय

# हो कहावतें

हो लोक कथाओं और लोक–गीतों की भाँति ही कहावतें (लोकोक्ति) मौलिक साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वास्तव में कहावत लोक व्यवहार का एक सशक्त साधन है। गीत और कहानियों का तो विशेष समय या अवसर पर उपयोग होता है, जबकि कहावतों का तो जीवन में स्थायी स्थान रहता है। ये दैनिक जीवन में बहुत अधिक प्रचलित हैं और स्वतः ही सहज रूप में प्रकट हो जाती हैं। ये मानव स्वभाव तथा उसकी व्यवहार कुशलता की ऐसी सम्पत्ति है, जो मानव को उत्तराधिकार के रूप में मिलती है। अतः यह कहा जा सकता है कि कहावतें मानव के वैयक्तिक, सामाजिक, आन्तरिक तथा बाह्य चिन्तन की अभिव्यक्ति होती है।

लोकोक्ति जीवन के मूल्यवान अनुभवों पर आधारित होती है। इसकी परम्परा प्राचीन साहित्य में भी मिलती है। वेद, उपनिषदों में अनेक कहावतें पायी जाती हैं। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में कहावतों का प्रयोग कर उन्हें रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाया है। प्राकृत एवं पालि में भी बहुत प्रभावपूर्ण और आकर्षक कहावतें हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक युग में कहावतों से समाज का पथ–प्रदर्शन होता रहा है। कहावत मानव–ज्ञान का भण्डार है। इसका प्रयोग सभी अपनी–अपनी भाषाओं में करते हैं। कहावत के माध्यम से किसी देश के निवासियों की विचारधारा, ज्ञान और उसकी संस्कृति की पहचान बड़ी सुगमता से की जा सकती है। विभिन्न देशों एवं विभिन्न भाषाओं में कहावत के लिए अलग–अलग शब्द प्रचलित हैं।

**भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में कहावत के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द निम्नबत् हैंः**–संस्कृत में–लोकोक्ति, प्रवाद, आभाषक, प्रायोवाद, लोक प्रवाद, लौकिकी आदि।

| | |
|---|---|
| उर्दू में–जर्बुलीमस्ल। | राजस्थानी में–ओरवाणी। |
| गुजराती में–कहेवत। | बंगला में–प्रवाद, प्रवचन। |
| मराठी में–आणा। | तेलुगु में–समीटा। |
| गढ़वाली में–परवाणा। | नागपुरी में–कहाउत। |
| हो में–कहावत/काजि जुड़ी काजि को। | पंचपरगनिया में–सलूक, कहावत। |
| लैटिन में–'PRAVERBIO' | ग्रीक में – 'PAROEMA' |
| स्पेनिश में – 'REFRAN' | तुर्की में – 'ATALOR SOZU' |
| रूसी में – 'POZBITSA' | अरबी में – 'MALTAL' |
| फारसी में – 'AMSAL' | अंग्रेजी में – 'PROVERB' |

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ ''लोक की उक्ति'' है। वर्तमान में ''लोकोक्ति'' की जगह ''कहावत'' शब्द का प्रचलन हो गया है। साहित्य के विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से इसे परिभाषित किया है। ''लोकोक्ति'' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोल–चाल की भाषा में बनती है, रूढ़ होती है, फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण लोक एवं साहित्य की भाषा में अपना आसन जमा लेती है, किन्तु साहित्य में आते–आते लोकोक्ति को बहुत समय लग जाता है।''[1]

''लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र है। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य रश्मि नाना प्रकार के रत्न–उपरत्नों का निर्माण करती है, जिसका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति के फ्रुल्लिंग (रेडियोएक्टिंग) तत्वों की भाँति अपनी प्रखर किरणों को चारों ओर फैलाती रहती है। उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्कबुद्धि शताब्दियों से संचित ज्ञान से आश्वस्त सी बन जाती है और उसे अँधेरे में भी उजाला दिखायी देने लगता है, वह अपना कर्तव्य निश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाता है।''[2]

''लोकोक्तियाँ जन–समूह के बिखरे हुए रत्न हैं। किसने ये रत्न बिखेरे इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु बहुत सम्भव है कि कहावतों का प्रथम उत्स मनुष्य के मन में तभी उत्साहित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरल वेग के साथ सहज भाषा में निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठकर कहावतों का निर्माण नहीं किया गया, किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने कहावतों को जन्म दिया है। किताबों की आँखों से देखने वाले निरे बुद्धि–विलासी व्यक्ति कहावतों के निर्माता नहीं थे, कहावतों के रचयिता जीवन के दृष्टा थे।''[3]

**वर्गीकरण** :—लोकोक्तियों का वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। डॉ० सत्येन्द्र ने लोकोक्तियों को तीन प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया है[4]—

1. गम्भीर कथन से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य कहावतें।
2. गम्भीर कथन विषयक स्थान अथवा लोक विशिष्ट कहावतें।
3. शैली वक्र लोकोक्तियाँ।

श्याम परमार ने मोटे रूप में कहावतों को चार वर्गों में विभक्त किया है[5]— 1. विषयानुसार, 2. स्थानानुसार, 3. भाषानुसार, 4. जातीयानुसार।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकोक्तियों को पाँच वर्गों में बाँटा है—1. स्थान संबंधी लोकोक्तियाँ, 2. जाति संबंधी लोकोक्तियाँ, 3. प्रकृति तथा कृषि संबंधी लोकोक्तियाँ, 4. पशु–पक्षी संबंधी लोकोक्तियाँ, 5. प्रकीर्ण।

डॉ० सत्यागुप्त ने लोकोक्तियों को आठ वर्गों में विभाजित किया है।

1. **सामाजिक कहावतें**—(क) जाति संबंधी, (ख) नारी संबंधी, (ग) ऐतिहासिक, (घ) सामाजिक व्यवहार संबंधी।
2. भाग्य संबंधी कहावत,
3. खान–पान तथा स्वास्थ्य संबंधी,

4. लोक विश्वास, 5. मनोवैज्ञानिक,
6. कथा संबंधी, 7. कथा संबंधी,
8. भाषा, विज्ञान संबंधी, 9. प्रकीर्ण।

डॉ० कन्हैया लाल सहल ने रूप और वर्ण्य–विषय को स्थान में रखकर लोकोक्तियों का वर्गीकरण निम्नलिखित तरीके से किया है–

1. ऐतिहासिक कहावतें, 2. स्थान संबंधी कहावतें,
3. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र
   (क) जाति संबंधी कहावतें, (ख) नारी संबंधी कहावतें
4. शिक्षा, ज्ञान और साहित्य –
   (क) शिक्षा संबंधी कहावतें। (ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें।
   (ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें।
5. धर्म और जीवन दर्शन –
   (क) धर्म और ईश्वर विषयक कहावतें। (ख) शकुन संबंधी कहावतें।
   (ग). लोक–विश्वास सम्बन्धी कहावतें। (घ) जीवन–दर्शन सम्बन्धी कहावतें।
6. कृषि सम्बन्धी कहावतें।
7. वर्षा सम्बन्धी कहावतें।
8. प्रकीर्ण।

"बिहार प्रोभर्व" के सम्पादक जॉन क्रिश्चियन ने कहावतों को छः भागों में विभक्त किया है:–1. मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों से सम्बद्ध।
2. सांसारिक ज्ञान–विषयक।
3. सामाजिक ज्ञान–विषयक।
4. जातियों की विशेषताओं से सम्बद्ध।
5. कृषि और ऋतु सम्बन्धी।
6. पशु और सामान्य जीव–जन्तुओं से सम्बन्धित।

"मराठी प्रोभर्व्स" के लेखक मैनवारिंग ने कहावतों को इस प्रकार वर्गीकृत किया है:–

1. कृषि सम्बन्धी। 2. जीव–जन्तु सम्धन्धी।
3. अंग और प्रत्यंग सम्बन्धी। 4. भोजन सम्बन्धी।
5. भोजन सम्बन्धी। 6. स्वास्थ्य और रूग्णता सम्बन्धी।
7. गृह सम्बन्धी। 8. धन सम्बन्धी।
9. नाम सम्बन्धी। 10. प्रकृति सम्बन्धी।
11. धर्म सम्बन्धी। 12. व्यापार और व्यवसाय सम्बन्धी
13. प्रकीर्ण

अन्य लोक–भाषाओं की भाँति "हो" में भी प्रचुर मात्रा में लोकोक्तियाँ पायी जाती है। भाषा में भिन्नता होते हुए भी अर्थ प्रायः एक समान ही हैं। इसका एकमात्र कारण है, स्थानीय विशेषताएँ। हो भाषा की लोकोक्तियों का संकलन पूर्णतः अभी तक नहीं किया जा सका है। संग्रह के क्रम में यह स्पष्ट हुआ कि इस भाषा की लोकोक्तियों का प्रयोग स्त्री और पुरूष दोनों की वर्ग के लोग अवसर और घटना विशेष को देखकर

करते हैं। कहावतों का क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है। हो में हर क्षेत्र की कहावतों का समावेश मिलता है। लोकोक्तियों के विषय बहुपक्षीय होने के कारण वर्गीकरण कठिन हैं। हो भाषा में मानव जाति की शिक्षा, नीति, भाषा, इतिहास, भोजन, स्वास्थ्य, धर्म आदि से सम्बन्धित कहावतें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

**हो कहावतों का वर्गीकरण** :–उपलब्ध संग्रह के आधार पर हमने लोकोक्तियों का वर्गीकरण निम्नवत् किया है:–

1. जाति सम्बन्धी।
2. नारी सम्बन्धी।
3. गृह सम्बन्धी।
4. धन सम्बन्धी।
5. नाम सम्बन्धी।
6. शिक्ष एवं नीति सम्बन्धी।
7. भोजन सम्बन्धी।
8. भाषा सम्बन्धी।
9. इतिहास सम्बन्धी।
10. जीव–जन्तु सम्बन्धी।
11. स्वास्थ्य सम्बन्धी।
12. प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी।
13. धर्म सम्बन्धी।
14. व्यापार सम्बन्धी।
15. प्रकीर्ण।

**1. जाति सम्बन्धी**:–समाज की विभिन्न जातियों का अपना एक विशेष जातिगत गुण होता है। कहावतों में इस गुण की चर्चा देखने को मिलती है।

**उदाहरण स्वरूप**–

(क) **हो**–गेलबरिया राजपूत गेलअपिया चूल्हा
**हिन्दी**–बारह राजपूत तेरह चूल्हा।

(ख) **हो**–हो में बाराण्डी वे:ए रेदो का:अ:
**हिन्दी**–नर में नाई, पक्षी में कौआ।

(ग) **हो**–सोनार:अ: सौ ताम कमर:अ: मियाड ताम
**हिन्दी**–सोनार का सौ चोट, लोहार का एक चोट।

(घ) **हो**–का:अ: ओल उतुउवा ओण्डो: का:अ: मूर्ख सोमजावोंअ:
**हिन्दी**–न ओल पकता है और न मूर्ख समझता है।

**2. नारी सम्बन्धी**:– हो कहावतों में यह स्पष्ट होता है कि यहाँ नारियों का स्थान पुरूषों के समान ही है। पर नजदीक से देखने पर पता चलता है कि वास्तविकता यह नहीं है। समाज में नारियों की स्थिति परिवर्तनशील रही है। नारी को एक ओर महान माना जाता है तो दूसरी ओर उसकी उपेक्षा भी की जाती है। समाज में नारी को कोमलता एवं ममता का प्रतीक माना गया है। नारी का पुत्रवती होना सबसे बड़ा सौभाग्य या उसके जीवन की सार्थकता इसी में है। केवल इतना ही नहीं इन सबके साथ–साथ गृहकार्य को सम्पन्न करना भी उसका कर्त्तव्य माना गया है, तभी तो कहावत के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि –

(क) **हो**–जा चिमिन पढ़ावाकन रेयोओ चूल्हा दोम ओडे गेया।
**हिन्दी**–कितना भी पढ़ले चूल्हा फूँकना ही पड़ेगा।

(ख) **हो**–आबेन जान दु:ख–तकलीफ काबेन नामया।
**हिन्दी**–आपको कोई दु:ख–तकलीफ न हो।

(ग) **हो**–तोवा ते ओड़ाकन में जोःओः बहो में।
**हिन्दी**–दूधो नहाव पूतो फलो।

(घ) **हो**–माँ अः दिल/जीवोन गुण्डी उरिः लेकाःअः।
**हिन्दी**–माँ का हृदय गाय की तरह।

**3. गृह सम्बन्धी** :–सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव समाज गृह निर्माण कर उसे मन की निश्चिन्तता का सर्वोत्तम स्थान मानता है। शायद इसलिए कहा गया है, दूसरा स्वर्ग अपना घर है। यदि घर में निश्चिन्तता न हो तो मानव मन को कहीं भी खुशी नहीं मिल सकती और न ही वह सुख का अनुभव कर सकता है। ये बातें यहाँ की कहावतों से स्पष्ट हैः–

(क) **हो**–ओवा रपुड़ो रेदो हातु रेनको रेएः मेवा।
**हिन्दी**–घर फूटे तो गँवार लूटे।

(ख) **हो**–ओवा रेन सिम डाली बराबरी।
**हिन्दी**–घर की मुर्गी दाल बराबर।

(ग) **हो**–ओवा ओण्डोः बुरू आतारोःओ रे दिशुम रे लोलो होयो नितिरोवः।
**हिन्दी**–घर और जंगल में आग लगने पर दुनिया में गर्म हवा फैल जाता है।

(घ) **हो**–ओवा रचा लोसोडा कना।
**हिन्दी**–घर अँगना कादो करना।

**4. धन सम्बन्धी**:–आज से नहीं पौराणिक काल से ही मानव जीवन में धन की अहम् भूमिका रही है। इसकी चर्चा ग्रन्थों में भी मिलती है। धन के महत्व के साथ–साथ धन के सदुपयोग एवं दुरूपयोग के सम्बन्ध में भी अनेक कहावतें प्रचलित हैं। "अर्थ हो तो जीवन समर्थ है अन्यथा व्यर्थ है" कहते सुना जाता हैः–

(क) **हो**–एटा होः हाः धन सम्पत्ति ते नाईकिन तेया।
**हिन्दी**–अने–धने भरपूर।

(ख) **हो**–रेंगेः हो सम्पत्ति/बाबा–चाउली नेल केते तिकिन सोमंय इपिल कोय नेलाम कोवा।
**हिन्दी**–निर्धनिया धन देखे दिन में देखे तारा।

(ग) **हो**–गोयकान हाथी सवा लाख।
**हिन्दी**–मरा हाथी सवा लाख।

(घ) **हो**–लाख एड़ा केते कोयला रे छापा
**हिन्दी**–लाख उड़ाकर कोयला पर छाप।

**5. नाम सम्बन्धी**:–हो भाषा में नाम से सम्बन्धित कहावतों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। नाम में विश्वास के साथ–साथ नाम को उजागर एवं मिट्टी पलीद करने के सम्बन्ध में कई कहावतें प्रचलित हैं। इन कहावतों में नाम का अर्थ मात्र संख्या न होकर व्यापक है। इसमें व्यक्ति के भावों का तथा समाज में उसके स्थान का पता चलता है –

(क) **हो**–फोकट लाल गिरधारी, मुताव बानोः थालीव बानोः।
**हिन्दी**–फोकट लाल गिरधारी, लोटा ना थाली।

(ख) **हो**–अःअः / मोचा रे राम, बगल रे चाकू।
**हिन्दी**–मुँह मं राम–राम, बगल में छूरी।

(ग) **हो**–राम धनीर चिकान कमी।
**हिन्दी**–राम धनी है तो किसकी कमी।

(घ) **हो**–रिका कान राम गोय कीईते, गोयकान राम रिका कानी।
**हिन्दी**–राखे राम तो मारे के, मारे राम तो राखे के।

**6. शिक्षा एवं नीति सम्बन्धीः**–मानवीय आचार–विचार की कहावतें शिक्षा एवं नीति से जुड़ी हुई हैं। वास्तव में हो भाषी क्षेत्र के निवासियों के विचार–विश्वास, रीति–रिवाज आदि कहावतों में अधिक अभिव्यक्त होते हैं। हो में नैतिकता को अत्यधिक महत्व दिया जाता है।

(क) **हो**–कमी बिगड़ाव रे गुन बिगड़ावः।
**हिन्दी**–अभाव बिगाड़े स्वभाव।

(ख) **हो**–मियाड् तीते ताली काः बजाओ।
**हिन्दी**–एक हाथ से ताली नहीं बजती है।

(ग) **हो**–मिड् अगहन / सर्दी रे राबांङ काःअः चाबाओ।
**हिन्दी**–एक अगहन में जाड़ा नहीं जाता है।

(घ) **हो**–पाईटीई तेगे किस्मत चोमकाओअः।
**हिन्दी**–करम गुण से भाग्य बनता है।

**7. भोजन सम्बन्धीः**–भोजन का सीधा सम्बन्ध सजीव प्राणियों से है। मानव सजीवों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भोजन सम्बन्धी गुण–अवगुण आदि की कहावतें भी हो में उपलब्ध हैं –

(क) **हो**–लायी रे चुन्टीला उजेनताना।
**हिन्दी**–पेट में चूहा कूदना।

(ख) **हो**–लेटो रेया उपुनिया जुड़ी को–दही, पापड़, चटनी, अचार।
**हिन्दी**–खिचड़ी के चार यार–दही, पापड़, चटनी, अचार।

(ग) **हो**–माण्डी / मानडी हेर–नितिर रे काअः कोरेया रिंगा बनोअः।
**हिन्दी**–भात छिंटने से कौआ का अकाल नहीं।

(घ) **हो**–लायी पेरेयान चनब / बीयान चनाब लन्डीयान तेया।
**हिन्दी**–पेट भरने के बाद आलसी हो जाना।

**8. भाषा सम्बन्धी** :–भाषा व्यक्तिगत, सामाजिक तथा सर्वव्यापक होती है। यह मानवीय अनुभवों के सम्प्रेषण का मौखिक साधन है, जो समाज से अर्जित होती है। इस भाषा मे कहावतें सरल एवं सुगम हैं –

(क) **हो**–आपे कोस रे दाअः रेया स्वाद / नोगोड बोदोलोवः ओण्डोः आईया कोस रे भाषा / काजी बोदोलोवः।
**हिन्दी**–तीन कोस में पानी का स्वाद बदलता है और सात कोस पर भाषा बदल जाती है।

(ख) **हो**–कबीर दास तिकिञा उल्टी काजी, गमा दाअः ते कम्बल लुमोअः।
**हिन्दी**–कबीर दास की उल्टी बानी, बरसे कम्बल भींगे पानी।

(ग) **हो**–मूर्ख/अँगुली छाप केड़ा बराबरी।
**हिन्दी**–काला अक्षर भैंस बराबर।

**9. इतिहास सम्बन्धी** :–ऐतिहासिक कहावतें मुख्य रूप से राजा–महाराजाओं से जुड़ी हुई है। हो में इस प्रकार की कहावतें तो हैं, परन्तु इनकी संख्या कम है –

(क) **हो**–एटा हो हाः सम्पत्ति रे विकरम राजा/एटा हो हाः सम्पत्ति ते मरंग हो बाईन तेया।
**हिन्दी**–परेक धन में विक्रम राजा।

(ख) **हो**–हेन्दे नगरी बरबाद राज, टाका सेर अःअः टाका सेर खाजा।
**हिन्दी**–अँधेर नगरी चौपट राजा, टाका सेर भाजी, टाका सेर खाजा।

(ग) **हो**–ओपा राजा भोज, ओपा गंगु तेली।
**हिन्दी**–कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगु तेली।

(घ) **हो**–ओवा रेया काजि अटकरे नीः ओवाः रपुडेया/बरबादेया।
**हिन्दी**–घर का भेदी लंका ढाहे।

**10. जीव–जन्तु सम्बन्धीः**–हो में जीव–जन्तुओं से सम्बन्धित लोकोक्तियाँ बड़ी संख्या में हैं। इन कहावतों में उनके आचरण एवं व्यवहार को दर्शाया गया है –

(क) **हो**–काटो दोया रापाःयी रे काटोगे चिरगलेया।
**हिन्दी**–केंकड़ा के पीठ जलने से केंकड़ा ही जानेगा।

(ख) **हो**–चुन्दी बोःओ रे चमेली सुनुम।
**हिन्दी**–छुछुन्दर के सिर पर चमेली का तेल।

(ग) **हो**–गयी चेनाए अदाना आदि रेया नोगोड़्।
**हिन्दी**–बंदर क्या जाने अदरख का स्वाद।

(घ) **हो**–हाकु माँ होनको रेया राँसा।
**हिन्दी**–मछली को बच्चे का शौक।

**11. स्वास्थ्य सम्बन्धीः**–प्राचीन काल में ज्ञान–विज्ञान के अभाव में कहावतों के माध्यम से स्वास्थ्य विज्ञान में निर्देश मिल जाते हैं। मानव समाज इससे लाभान्वित हुआ है –

(क) **हो**–चैत नीम, वैशाख बेल, जेठ चाण्डु रेया दाअः अन्जागे अंचेडोवा।
**हिन्दी**–चैत नीम, वैशाख बेल, जेठ मास में पानी आता है, सूख जाता है।

(ख) **हो**–हुड़ीञ ज्ञान/बुद्धिते यान नीः रेड़्–रानु तेया ते जीवोन जाकेड सेनोवा।
**हिन्दी**–नीम हकीम खतरे जान।

(ग) **हो**–सावन करैला, भादो दही, मृत्यु नहीं तो जहर बन जाता है।
**हिन्दी**–सावन करैला, भादो दही, मृत्यु नहीं तो जहर बन जाता है।

**12. प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धीः**–प्रकृति जैव तथा अजैव कारकों का मिश्रण है। सभी एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसमें वर्षा, ताप, आर्द्रता, मौसम

आदि उँव कारक को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। कृषि इसी पर निर्भर रहता है। हो में प्रकृति तथा कृषि पर अनेक कहावतें हैं –

(क) **हो**–सर्दी चाण्डु रेया राबांङ कुला बराबरीया।
**हिन्दी**–माघ का जाड़ा बाघ बराबर।

(ख) **हो**–भादो चाण्डु रे रचा लोसोडोवा।
**हिन्दी**–भादो में अँगना कादो।

(ग) **हो**–पापारी मड़् का:अ जुकुनेना।
**हिन्दी**–बूढ़ा बाँस नहीं झुकता है।

(घ) **हो**–लतर फरका–फरका चेतान दो जोटो इनी:गे नाईकी हो दो।
**हिन्दी**–नीचे फाँक–फाँक ऊपर जटा, उसको किसान का बेटा कहलाता।

**13. धर्म सम्बन्धी** :–मानव धर्मभीरू होता है। मानव में आस्तिकता की भावना अधिक होती है। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण उनमें धर्म–ग्रन्थों (गीता, महाभारत, रामायण आदि) की कथा के प्रति गहरी अभिरूचि होती है। धर्म से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों का भी समावेश हो में है –

(क) **हो**–अञ कञ अदाना, अदानाञ जिवाहन बाबा।
**हिन्दी**–मैं नहीं जानता, जाने जितवाहन बाबा।

(ख) **हो**–मानातिञ रेदो बोंगा बनरेदो दिरी।
**हिन्दी**–मानो तो देव नहीं तो पत्थर।

(ग) **हो**–चिलिकान देश एनकान भेस/भूषा।
**हिन्दी**–जैसा देश वैसा वेश।

(घ) **हो**–ओकोय पापोया इनी: आईया दुवार रे होनारा।
**हिन्दी**–जो पाप करता है वह सात द्वार में घूमता है।

(ङ) **हो**–ओकोय भलाई पाईटी पाईटीया इनीया ओवा खालीवो:अ।
**हिन्दी**–जो पुण्य करता है उसका घर शून्य हो जाता है।

**14. व्यापार और व्यवसाय सम्बन्धी** :–मानवीय समाज में व्यापार और व्यवसाय का प्रचलन युगों से चला आ रहा है। इसके अच्छे–बुरे परिणामों के फल–प्रतिफल को कहावतों में दर्शाया गया है, जो हमारा मार्ग प्रशस्त करती है –

(क) **हो**–पइसा न कउड़ी, ताला बाजार/हाटो रेम निरबाया।
**हिन्दी**–पैसा न कौड़ी, बीच बाजार में दौड़ा–दौड़ी।

(ख) **हो**–अरे हो को सोमजाओ यान रेदो तुरूइया हो काको सोमजाओवा।
**हिन्दी**–नौ समझ गए तो छः नहीं समझेंगे।

(ग) **हो**–आम कुला रेदो अञ सवा/मारांग कुला।
**हिन्दी**–तुम शेर हो तो हम सवा शेर हैं।

(घ) **हो**–नाअ: बनिया रेदो गपा सेठ ए बाईओअ:।
**हिन्दी**–आज बनिया है, कल सेठ बन जाएगा।

**15. प्रकीर्ण** :–लोकोक्तियों को देखते हुए नि:सन्देह यह कहा जा सकता है कि इसके रचयिता जीवन के अनुभवों से परिचित थे। साथ ही साथ उन्होंने जिन्दगी

के प्रत्येक पहलू को बहुत बारीकी से देखते हुए निजी अनुभवों में कहावतें प्रस्तुत करती हैं –

(क) **हो**–कांणा दो चिलिका दिन एनका निदा।
**हिन्दी**–अंधा का जैसा दिन वैसी रात।

(ख) **हो**–ओकोया लायी बाईना ओण्डो ओकोया अःअः।
**हिन्दी**–किसी का पेट बना और किसी का मुँह।

(ग) **हो**–काअः हर एड़ाकेते ओण्डो तासी बाबा रो ओः।
**हिन्दी**–कौआ टरटराते धान सुखाना।

(घ) **हो**–हातु सेनो ओण्डोः दारू राकाब।
**हिन्दी**–गाँव जाना और पेड़ चढ़ना।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकोक्तियाँ हमारा मार्गदर्शन करती है। इनका अस्तित्व सार्वभौम है।

**विशेषताएँ** :– हो कहावतों का लोक साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। लोक व्यवहार कहावतों में एक सशक्त साधन है। गीत और कहानियों की तरह यह दैनिक जीवन में अधिक प्रचलित है। कहावतें मानव जीवन के वैयक्तिक, सामाजिक, आंतरिक तथा बाह्य चिंतन की अभिव्यक्ति होती है।

लोकोक्ति जीवन के मूल्यवान अनुभवों पर आधारित होती है। वेदों, उपनिषदों में, कवियों ने कहावतों का प्रयोग कर उन्हें रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाया है, प्रत्येक युग में कहावतों से समाज का पथ प्रदर्शन होता रहा है।

## सन्दर्भ ग्रंथ

1. कन्हैया लाल सहल, राजस्थानी कहावतें–एक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 48। डॉ० सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक–साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1965, पृष्ठ संख्या 254–255।
2. डॉ० भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक साहित्य, 28 शॉपिंग सेन्टर, कर्मपुरा, न्यू दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1992, पृष्ठ संख्या 158–159।
3. कन्हैया लाल सहल, राजस्थानी कहावत एक कहावत, पृष्ठ संख्या 38।
4. डॉ० सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० (प्रा०) लि०, दिल्ली–आगरा–जयपुर, प्रथम संस्करण–1962, पृष्ठ संख्या 457।
5. सुनिता कुमारी गुप्ता, पंचपरगनिया लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या 170।

# सप्तम अध्याय

# हो मुहावरे

"मुहावरा" शब्द अरबी के "मुहाविर" शब्द से बना है। उर्दू भाषा में "मुहाविरा" शब्द प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है–"अभ्यास"। इसके लिए पर्याय में रोजमर्रा, वाग्धारा, बाग्रीति आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है। गुजराती भाषा में मुहावरे के लिए "रूढ़िप्रयोग" शब्द प्रचलित है। विद्वानों ने हिन्दी में मुहावरें के लिए पर्यायवाची शब्द ढूँढने का अथक प्रयत्न किया है, परन्तु अभी तक हिन्दी में कोई भी शब्द मुहावरें जितना प्रचलित या व्यवहृत नहीं हो पाया है। हो भाषा में भी "मुहावरा" शब्द ही प्रयुक्त होता है।

मुहावरें भाषा के प्राण माने गये हैं। ये भाषा को प्रभावशाली बनाने तथा संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के अपूर्व साधन हैं। भावों की अभिव्यंजन शक्ति का संवर्द्धन मुहावरों से ही होता है। मुहावरे भाषा को सम्पन्न तथा अर्थपूर्ण बनाते हैं। मुहावरों से भाषा और साहित्य में ओज एवं सौन्दर्य की प्राप्ति होती है। वे जीवन के प्रतिक्षण और प्रतिदिन के सहयात्री हैं। प्रकृति के सम्पूर्ण तत्व पवन, गगन, दिवस, रात्रि, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु से सम्बद्ध सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन, मानव के कार्य–कलाप, उनके अनुभव, अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ तथा मान्यताएँ एवं परम्पराएँ सभी से मुहावरों का अविभाज्य सम्बन्ध है। मुहावरों की कई विशेषताएँ हैं, जिनमें प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है :–

**(क)** मुहावरें किसी वाक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं। मुहावरों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है। वे वाक्य के साथ ही प्रयुक्त होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मुहावरें वाक्य में अंगीभूत होकर रहते हैं। किसी वाक्य के साथ मुहावरों का जब तक प्रयोग नहीं किया जाता तब तक उनमें सार्थकता नहीं आती है।

**(ख)** मुहावरों की विशेषता उनकी अभिव्यंजना शक्ति में निहित है।

**(ग)** मुहावरों की तीसरी विशेषता है–उनकी "लाक्षणिकता" अर्थात् वे शब्दार्थ के नहीं अपितु लक्ष्यार्थ के अवबोधक होते हैं।

**(घ)** इनकी चौथी विशेषता है–उनके अर्थ की प्रसंग–सापेक्षता अर्थात् मुहावरों का अर्थ, प्रसंग–सापेक्ष होता है।

**(ङ)** पाँचवीं विशेषता यह है कि उनके शब्द नपे–तुले होते हैं, उनमें परिवर्तन का कोई अवकाश नहीं होता अर्थात् वे अपरिवर्त्य होते हैं। समानार्थक या पर्यायवाची शब्दों के विन्यास से मुहावरों का रूप विकृत हो जाता है, और वे अपनी अर्थवत्ता खो बैठते हैं।

मुहावरों के प्रयोग से भाषा में चमत्कार उत्पन्न होता है और भाषा सजीव, प्राणवन्त तथा प्रभावपूर्ण हो जाती है। ये भाषा की समृद्धि और सभ्यता के बहुआयामी विकास के द्योतक हैं। इसकी अधिकंता तथा न्यूनता से भाषा के प्रयोक्ता की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा औद्योगिक विकास तथा उसकी समृद्धि का पता चलता है। जिस समाज में मुहावरों का प्रचुर प्रयोग होता है, वह उतना ही अधिक विकसित और समृद्ध माना जाता है। समाज और देश के विकास के साथ मुहावरें भी विकसित होते हैं। मुहावरें समाज और देश के विकास के प्रतीक और प्रतिमान होते हैं। मुहावरों के विकास और ह्रास का पता चलता है।

मुहावरों का सम्बन्ध शरीर के विभिन्न अवयवों से है। इनके अतिरिक्त भावना, संवेदना, परिस्थिति, अंधविश्वास, धर्म, इतिहास आदि से भी इनका सम्बन्ध है। जीवन का कोई भी पक्ष इनसे अछूता नहीं है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक सभी तथ्यों का उद्घाटन एवं प्रकटीकरण इन मुहावरों के द्वारा हुआ है। इनमें संक्षिप्तता, गोपनीयता, लाक्षणिकता, जीवन की व्यापकता तथा बुद्धि–वैभव की विलक्षणता का भाव भरा रहता है।

डॉ० कन्हैया लाल सहल ने मुहावरा को "किसी भाषा की वैयक्तिक चाल–ढाल कहा है।"[1] डॉ० कृष्ण लाल हंस कहते हैं–"मुहावरें वास्तव में वाक्य खण्ड हैं, जब इनका प्रयोग वाक्य में किया जाता है तब उस वाक्य की शक्ति और प्रभाव पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ जाते हैं।"[2] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है–"मुहाविरा किसी भाषा अथवा बोली से प्रयुक्त होने वाला वह वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सहज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक–व्यवहार में जिन–जिन वस्तुओं और विचारों का बड़े कौतूहल से देखा, समझा है और बार–बार उनका अनुभव किया है, उसको उसने शब्दों में बाँध दिया है, उसको मुहाविरा कहते हैं।"[3] लाला भगवानदीन का मुहावरा के सम्बन्ध में कहना है–"लक्षण या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही भाषा में प्रचलित हो और उसका अर्थ प्रत्यक्ष अर्थ से विलक्षण हो।"[4]

डॉ० सत्यागुप्त के शब्दों में–"मुहावरें सदैव गद्यात्मक होते हैं तथा बहुत लघु होते हैं।"[5]

**मुहावरें और कहावत (लोकोक्ति) में अन्तर** :–प्रायः लोग मुहावरें और लोकोक्तियों को एक समझते हैं, किन्तु इन दोनों में अन्तर है। मुहावरा वाक्य में बिलकुल मिल जाता है, किन्तु लोकोक्तियों की अलग सत्ता रहती है। इसका कारण यह है कि अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति अपने आप में सूत्र रूप में ही सही पूर्ण होती है, किन्तु मुहावरें में यह बात नहीं होती। उसे अन्य शब्दों की आवश्यकता होती है। मुहावरा हमारी अभिव्यक्ति का अंग होता है, किन्तु लोकोक्ति उस अर्थ में अंग नहीं होती। उससे प्रायः किसी बात का समर्थन या खण्डन ही किया जाता है। अँग्रेजी और हिन्दी में प्रायः सर्वत्र लोकोक्ति को वाक्य और मुहावरे को खण्ड–वाक्य अथवा पद माना गया है। लोकोक्ति और मुहावरें में मौलिक भेद वही है जो एक वाक्य और खण्ड–वाक्य में होता है।

लोकोक्तियों में उद्देश्य और विधेय का पूर्ण विधान रहता है, उनका अर्थ समझने के लिए अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती। इनके प्रतिकूल मुहावरों में चूँकि उद्देश्य और विधेय का कोई विधान नहीं होता, इसलिए जब तक किसी वाक्य में उनका प्रयोग न किया जाय, उनका अर्थ ठीक से समझ में नहीं आ सकता। अर्थ की दृष्टि से लोकोक्तियाँ अपने में पूर्ण होती है, किन्तु मुहावरें नहीं।

"मुहावरें किसी वाक्य के वे सूक्ष्म शरीर हैं, स्थूल शरीर के बिना जिनकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, लोकोक्ति वाक्य भाषा रूपी समाज के वे प्रामाणिक तत्व हैं, वे ही उनकी प्रमाणिकता के प्रमाण हो जाते हैं। जहाँ कहीं और जिस किसी के पास वे जा बैठें, उनकी तूती बोलने लगे।"[6]

**डॉ० कन्हैया लाल सहल के अनुसार**–"मुहावरें वस्तुतः किसी भाषा की व्यैक्तिक चाल–ढाल है। जैसे मनुष्यों की आकृतियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं, वैसे ही भाषा विशेष के मुहावरें भी भिन्न–भिन्न होते हैं, उनके अपने–अपने चित्र–विचित्र प्रयोग होते हैं। किन्तु देश–विदेश की लोकोक्तियों में मुहावरों की सी भिन्नता नहीं मिलती।' एक ही माता–पिता की जैसे अनेक पुत्रियाँ होती हैं, प्रायः वैसे ही अनुभव रूपी माता–पिता की दुहिताएँ ये लोकोक्तियाँ हैं, इसलिए विभिन्न देशों की लोकोक्तियों में मानव–जाति की सामान्य सम्पत्ति बनने की क्षमता पायी जाती है।"[7] "कहावत तो मानव जाति के सामान्य अनुभवों का अक्षरदेह है, जबकि मुहावरा भिन्न–भिन्न देश, जाति अथवा समाज के भिन्न–भिन्न वर्गों के सूचक संज्ञा है।"[8]

**मुहावरों का वर्गीकरण** :–हो भाषा में मुहावरें महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रतिदिन लोग अपनी बोल–चाल में मुहावरें का प्रयोग अपनी भाषा को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए करते हैं। इसके प्रयोग से हो भाषा में लाक्षणिकता बनी रहती है। उपलब्ध हो मुहावरों को निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. शरीर सम्बन्धी,
2. भावना एवं संवेदना सम्बन्धी,
3. इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले,
4. धार्मिक,
5. आर्थिक,
6. नैतिक,
7. राजनीतिक,
8. संस्कार सम्बन्धी।

**1. शरीर सम्बन्धी** :–मानव शरीर के अंग–प्रत्यंग अपने एक अलग ही भाव प्रकट करते हैं। इसका प्रयोग मुहावरों में एक विशेष अर्थ उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। हो में शरीर सम्बन्धी मुहावरें अनेक हैं–

(क) **हो**–पाइटी तेयः मन का लगावः
**हिन्दी**–अंग नहीं लगना।

(ख) **हो**–काँड़ी बईनीः
**हिन्दी**–अँधा बनना।

(ग) **हो**–तीः रामा रे लेखा
**हिन्दी**–अँगुली में गिनना।

(घ) **हो**–मेड़् रे जोबरा हेर
**हिन्दी**–आँखों में धूल झोंकना।

(ङ) **हो**–लुतुर रे सुनुम दुलेना
**हिन्दी**–कान में तेल डालना।

**2. भावना एवं संवेदना सम्बन्धी** :–हो क्षेत्र के जन समुदाय में ऐसे काफी मुहावरें हैं, जो मानव की भावना एवं संवेदना को प्रदर्शित करते हैं–

(क) **हो**–चेनाः सनाँञीया एनागे पाइटीया।
**हिन्दी–जो चाहे** वही करे।

(ख) **हो–समाँञ रपुड**
**हिन्दी–कपाल** फटना।

(ग) **हो**– **मेड़ेते** मेड़् **दा**अः जोरो
**हिन्दी**–आँखों से पानी गिरना।

(घ) **हो**–**इज्जत इयून्**
**हिन्दी**–इज्जत में बट्टा लगना।

**3. धार्मिक** :–हमारा राष्ट्र अनेकता में एकता का प्रतीक है। यहाँ धर्म एवं उनके मानने वालों की कमी नहीं है। यहाँ के समाज में पाप–पुण्य, मोक्ष, स्वर्ग–नरक आदि की जड़ें काफी गहराई तक जमी हुई है। धर्म से जुड़े हुए मुहावरें बड़ी संख्या में हैं–

(क) **हो**–गंगा गाड़ा रे ओड़ान।
**हिन्दी**–गंगा नहाना।

(ख) **हो**–धर्म एःते यमराज ओए बोरोया।
**हिन्दी**–धर्म से यमराज भी डरता है।

(ग) **हो**–आपुआ धर्म एते बेटा माराँगवोःअः।
**हिन्दी**–पिता के धर्म से बेटा का बढ़ना।

(घ) **हो**–पाप आबुञ ऐड़ा।
**हिन्दी**–पाप धोना।

**4. आर्थिक** :–मानव जीवन में अर्थ की अपनी अहम् भूमिका होती है। हो भाषा–भाषी की आर्थिक स्थिति का चित्रण यहाँ के मुहावरों में मिलता है।

(क) **हो**–घी रेया बत्ती जूल।
**हिन्दी**–घी का दीया जलाना।

(ख) **हो**–ओकोया ओवा इनिईगे बाहर।
**हिन्दी**–जिसका घर वही बाहर।

(ग) **हो**–आता आताए तेया।
**हिन्दी**–भूँजा फूटना।

(घ) **हो**–सोना साबे रे हासाव सोना बइवोअः।
**हिन्दी**–सोना छूने से मिट्टी भी सोना बनना।

(ङ) **हो**–मियाड़् एते हिसि मियाड़् बाईन।
**हिन्दी**–एक से इक्कीस होना।

**5. नैतिक** :—नीति ही किसी समाज की संस्कृति का मापदण्ड मानी जाती है। नैतिकता ही मानव के चरित्र का निर्माण करती है। नैतिकता के आधार पर हो में मुहावरों की संख्या काफी है।

(क) **हो**—आँचल आतांङ।
**हिन्दी**—आँचल फैलाना।

(ख) **हो**—चेतान जगह एमाईयी।
**हिन्दी**—ऊँचा स्थान देना।

(ग) **हो**—तोवा दो तोवा दःअः दो दःअः।
**हिन्दी**—दूध का दूध, पानी का पानी।

(घ) **हो**—आतार घाव रे बुलुँङ हेर।
**हिन्दी**—जले में नमक छिड़कना।

(ङ) **हो**—जाति डुबावोयन चनाब बुद्धि उजुआः।
**हिन्दी**—जाति जाने के बाद बुद्धि निकलता है।

**6. राजनीतिक** :—छल—प्रपंच, झूठ—सच, न्याय—अन्याय सभी समाज में व्याप्त हैं। इनसे सम्बन्धित मुहावरों की संख्या प्रचुर मात्रा में पायी जाती है।

(क) **हो**—रोंग बोदोल।
**हिन्दी**—रंग बदलना।

(ख) **हो**—दोया रे रूउ कीते मोचा रे चेरेबी।
**हिन्दी**—पीठ में मारकर होंठ में चूमना।

(ग) **हो**—अपनाःअः उल्लू सीधाइयी तेया।
**हिन्दी**—अपना उल्लू सीधा करना।

(घ) **हो**—दाल उतु उतुयी तेया।
**हिन्दी**—दाल गलना।

(ङ) **हो**—दही रे जोरान एमे तेया।
**हिन्दी**—दही में जोरन होना।

**7. संस्कार सम्बन्धी** :—हो भाषा के मुहावरों में संस्कार से सम्बन्धित अनेक उल्लेख मिलते हैं। जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कार यहाँ के मुहावरों में मिलते हैं —

(क) **हो**—बुँलूङ जोम।
**हिन्दी**—नमक खाना।

(ख) **हो**—गंगा लाभोए तेया।
**हिन्दी**—गंगा लाभ होना।

(ग) **हो**—मेड़ रिपीड़—रिपीड़ो तेया।
**हिन्दी**—आँख फड़कना।

(घ) **हो**—हाः चू तेया।
**हिन्दी**—छींक आना।

(ङ) **हो**—बोःओः बियुरो तेया।
**हिन्दी**—सिर घुमना।

## संदर्भ ग्रंथ


1. डॉ० रहमतउल्लाह, लोक साहित्य में आमोद–प्रमोद, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1984, राजस्थानी, पृष्ठ संख्या 89, पृष्ठ संख्या 22।
2. डॉ० कृष्ण लाल हंस, निमाड़ी और उसका साहित्य, पृष्ठ संख्या 382।
   डॉ० श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग, 19811, पृष्ठ संख्या 176।
3. डॉ० रहमतउल्लाह, लोक साहित्य में आमोद–प्रमोद, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1984, राजस्थानी कहावतें, पृष्ठ संख्या 22।
4. लाला भगवानदीन, व्यंग्यार्थ मंजूषा।
5. डॉ० सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1965, पृष्ठ संख्या 276।
6. डॉ० ओमप्रकाश, हिन्दी मुहावरे।
   डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1980, पृष्ठ संख्या 189।
7. डॉ० कन्हैया लाल, राजस्थानी कहावतें – एक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 27–28।
8. फिरोजशाह रूस्तजी मेहता, चबरा किंयानुं तत्वदर्शन, पृष्ठ संख्या 135–136।

# अष्तम अध्याय

# पहेलियाँ

हमारे जीवन में पहेलियों का महत्व बहुत अधिक है। ऐसा अनुभव है कि पहेलियों का प्रयोग निश्चित ही कहावतों से पहले लोक कथाओं एवं लोकगीतों की ही भाँति हुआ होगा। समय के साथ पहेली का विकास होता चला गया और आगे चलकर हमारे दैनिक जीवन में इसका प्रयोग होने लग गया। वह एक लौकिक परम्परा बन गयी। इसके प्रमाण भी पौराणिक ग्रंथों में मिलते हैं।

महाभारत में भी पहेलियाँ बुझाने के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत में अज्ञातवास के दौरान यक्ष ने पाण्डवों के सामने पहेलियाँ रखी थीं। भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव द्वारा पहेलियों का उत्तर नहीं दे पाने के कारण न तो वे जलाशय से पानी ले सके और न ही लौट सके। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं वहाँ गये और उन्होंने यक्ष की सभी पहेलियों का सही–सही उत्तर दिया। इससे प्रसन्न होकर यक्ष ने चारों मृत भाईयों को जीवित कर दिया।

**पहेलियों के संबंध में जे०जी० फ्रेजर महोदय ने कहा है–**"पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती है।"[1]

**डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार–**"भारतीय दृष्टि से देखें तो वेदों में हमें ये पहेलियाँ ब्रह्मोदय के नाम से विद्यमान हैं। उनमें भी इसका उपयोग अनुष्ठान के एक अंग के रूप में हुआ है। अश्वमेघ यज्ञ के अश्व का बलिदान करने के पूर्व होतृ और ब्राह्मण में पहेली–बुझौवल होती थी और यह अनिवार्य थी। इसमें केवल होतृ और ब्राह्मण ही भाग ले सकते थे।"[2] "भारत के मूल निवासियों में गौड़ और प्रधान तथा हो जातियों के विवाह के अनुष्ठानों में पहेली बुझाना भी एक आवश्यक बात मानी जाती थी।"[3]

डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक "लोक–साहित्य विज्ञान" में पहेलियों पर विशेष प्रकाश डालते हुए लिखा है–"पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन है। यह ऐसा वर्णन है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण जगत से ही लिए गए हैं।"

डॉ० सत्येन्द्र ने यह भी लिखा है कि–"पहेलियाँ एक प्रकार से वस्तु को सुलझाने वाली उपमानों से निर्मित शब्द–चित्रावली है, जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उपमानों के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित है वह अस्पष्ट होता है, उससे अभिप्रेत वस्तु का बहुत अधूरा संकेत मिलता है, पर वह

संकेत इतना निश्चित होता है कि यथासम्भव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता।"[4]

अर्थ–साहित्य के कुछ विद्वानों द्वारा पहेली को अलंकार माना गया है। संस्कृत और हिन्दी के प्राचीन विद्वानों ने ऐसा नहीं माना है किन्तु उत्तरकालीन कुछ आचार्यों ने इसे अलंकार माना है। सही माने में पहेलियाँ बुद्धि–परीक्षा के साथ–साथ बुद्धि–विलास की भी सामग्री है। इसका अर्थ जानने हेतु बुद्धि–बल का प्रयोग करना पड़ता है।

**(क) वर्गीकरण** :–डॉ० सत्येन्द्र ने ब्रज में प्राप्त पहेलियों के आधार पर पहेलियों को सात भागों में विभक्त किया है[5]:–

1. खेती संबंधी। 2. भोजन संबंधी। 3. घरेलू वस्तु संबंधी।
4. प्राणी संबंधी। 5. प्रकृति संबंधी। 6. शरीर संबंधी।
7. अन्य

डॉ० सत्यागुप्त ने पहेलियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है[6] :–

1. शरीर संबंधी। 2. जीव संबंधी। 3. प्रकृति संबंधी।
4. खान–पान संबंधी। 5. प्रकीर्ण।

हो भाषा में उपलब्ध पहेलियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:–

1. खेती संबंधी। 2. भोजन संबंधी। 3. घरेलू संबंधी।
4. शरीर संबंधी। 5. प्रकृति संबंधी। 6. प्राणी संबंधी।
7. अन्य संबंधी।

**(ख) 'हो' पहेलियों का वैशिष्ट्य**

**1. खेती संबंधी** :–हो भाषा पहेलियों में खेती संबंधी पहेलियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती है। विशेषकर खेती में उपयोग होने वाले उपकरण (औजार) का वर्णन मिलता है। परम्परागत उपकरण :–हल, फाल, कुदाल, कड़ी, हँसुआ, ढेंकी, चक्की आदि का चित्र मिलता है।

(क) **हो**–सेतःअरे दःअरे बोलोवा, तिकिन इनंआः ओण्डोञा–नइल।
**हिन्दी**–सुबह से पानी में घुसता है, दिन में निकलता है–हल।

(ख) **हो**– दारू चेतन वरन, दारू चेतन मेड,
मेड् लतर दिरि, चुबुर–चुबुरे सुसुनए–ढेंकी।
**हिन्दी**–लकड़ी के ऊपर वरन, लकड़ी के ऊपर लोहा
लोहा के नीचे पत्थर, चुबुर–चुबुर नाचती है–ढेंकी।

(ग) **हो**–मियड् हो लःइःरे दटा कनाए–दातोरोम।
**हिन्दी**–एक आदमी के पेट में दाँत हैं–हँसुआ।

**(2) भोजन संबंधीः**–यह तो कहने की आवश्यकता है कि भोजन केवल मानव समुदाय के लिए ही नहीं पूरे प्राणी–जगत् के लिए अनिवार्य आवश्यकता के अन्तर्गत आता है। हो में लगभग सभी प्रकार की भोज्य सामग्रियों से संबंधित पहेलियाँ उपलब्ध हैं –

(क) **हो**—पगा दो अतिङ तना उरिः दो तोला कना—ककरू।
**हिन्दी**—लत्तर चर रहा है, गाय बाँधी हुई है—कोंहड़ा।

(ख) **हो**—रपुड़—रपुड़ ओवः रे कोहः को सुसुन तना—गंगई अतः।
**हिन्दी**—टूटा—फूटा घर में बगुला नाच रहा है—मकई भूँजा / लावा (पोपकॉर्न)।

(ग) **हो**—मिन्डो हो मोड़ेया—तुरूइया लिजः ते तोलेना—टिपुई गंगाई।
**हिन्दी**—एक और पाँच—छः कपड़ों से बाँधती है—मकई।

**(3) घरेलू वस्तु संबंधी** :—घरेलू वस्तुओं से संबंधित अनेक पहेलियाँ हो भाषा में उपलब्ध हैं जो खासकर दैनिक जीवन के उपयोग में आती है।

(क) **हो**—सेतःअ तोरसा सेयोर—सेयोर—जोनोःओ।
**हिन्दी**—सुबह होते ही सेयोर—सेयोर—झाड़ू।

(ख) **हो**—सेतःअ तोरसा मियाड़ पुण्डी हो बकाई उःय पारोमेया—तोरोय।
**हिन्दी**—सुबह होते ही एक आदमी बाउण्डरी को छलांग मार के पार करता है—राख।

**(4) शरीर संबंधी** :—हो में शरीर से संबंधित (अंग—प्रत्यंग, इन्द्रियों तथा शारीरिक क्रियाओं से संबंध रखने वाली) पहेलियाँ काफी संख्या में मिलती हैं।

(क) **हो**—मियाड़ होन मुटा रेगे तोड़ेया—गासिःइ।
**हिन्दी**—एक बच्चा नाक में ही तीर मारता है—पदु।

(ख) **हो**—मियड़ होन लेःए रेगे चापड़ाअः—मरची।
**हिन्दी**—एक बच्चा जीभ में मारता है—मिर्चा।

**(5) प्रकृति संबंधी** :—पूरा सिंहभूम प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है। प्रकृति ने इस क्षेत्र को भरपूर मात्रा में उपयोगी (पादप हो अथवा खनिज) वस्तुएँ प्रदान की है। स्वाभाविक है कि यहाँ से संबंधित पहेलियों की प्रचुरता होगी और है भी—

(क) **हो**—मियाड़ वेःए दःरू रे तुकाया ओते रे जारोमेया—मड़कम।
**हिन्दी**—एक चिड़ियाँ पेड़ में घोंसला बनाती है, जमीन में अण्डा देती है—महुआ।

(ख) **हो**—मियड़ दारू मिड़ सिरमा रे मिसागे जोवा ओण्डो गोजेनाः – कदल।
**हिन्दी**—एक पेड़ एक ही साल फल देता है और मर जाता है – केला।

**(6) प्राणी संबंधी**—प्राणियों में पशु—पक्षी, जीव—जन्तु सभी आ जाते हैं। यहाँ जंगली पशु—पक्षियों से लेकर पालतू पशु—पक्षियों की भी कमी नहीं है। प्राकृतिक वातावरण ही ऐसा है कि यहाँ इनकी प्रचुरता है। अतः हो भाषा में प्राणी संबंधी पहेलियों की भी कमी नहीं है।

(क) **हो**—दःअरे ताइना डिपा ओण्डोङ रेदोःए गोजोःवा—हाकु।
**हिन्दी**—पानी में रहता है, बाहर निकालने से मर जाता है—मछली।

(ख) **हो**—मिड़ सिरमा रेन रेड़का बोदा मिड़ कांडा गे जिलुइया—गेंडा।
**हिन्दी**—एक साल का नाटा बकरा एक टुकड़ा ही माँस देता है—घोंघा।

**(7) अन्य**–ऐसी अनेक पहेलियाँ भी हो भाषा में मिलती हैं जिन्हें वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। सुविधा के लिए ऐसी पहेलियों को अन्य वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

(क) **हो**–मियाड़् दारू रे आपे सो आपे हिसि मोड़ेया बा: लेना गेलबरिया रे जोह जना, मेन्दो मियाड़् गे मता जना–दिलांङ, चान्डुउ, सिरमा (वोरोसो)।
**हिन्दी**–एक पेड़ में तीन सौ पैंसठ फूल खिले हैं, बारह में फला, मगर एक ही फल पका–दिन, महीना, वर्ष।

## संदर्भ ग्रंथ


1. जे०जी० फ्रेजर, दी गोल्डन बाउ, नवाँ भाग, पृष्ठ संख्या 121, डॉ० भुवनेश्वर "अनुज", नागपुरी लोक–साहित्य, 1992, पृष्ठ 172।
2. डॉ० सत्येन्द्र, लोक–साहित्य विज्ञान, 1962, पृष्ठ संख्या 462।
3. डॉ० सत्येन्द्र, लोक–साहित्य विज्ञान, 1962, पृष्ठ संख्या 463।
4. डॉ० सत्येन्द्र, लोक–साहित्य विज्ञान, 1962, पृष्ठ संख्या 463–464।
5. डॉ० कुन्दन लाल उप्रेती, लोक–साहित्य के प्रतिमान, 1980, पृष्ठ संख्या 190।
6. डॉ० सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक–साहित्य, 1965, पृष्ठ संख्या 280।

# संदर्भ सूची


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अरीपराम्पिल, मैथ्यू (अनु० होरो वा० का एवं शास्त्री सीताराम | स्वराज के लिए झारखण्डियों का संघर्ष : एक संक्षिप्त | 2000, | ट्राइबल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग सेंटर, चाईबासा |
| 2 | अरीपराम्पिल, मैथ्यू (अनु० तोपनो गादेरतुस) | जंगल और आदिवासी के भीतर एक ऐतिहासिक विश्लेषण | 2000 | तदैव |
| 3. | आर्चर, डब्ल्यू०जी० | हो दुरंग | 1940–41 | गवर्नमेंट प्रेस, बिहार |
| 4. | कंडुलना, जोसेफ | छोटानागपुर के आदिवासी | 1994 | छोटानागपुर मुंडा संसकिर संगोम समइति, लचड़ागढ़; गुमला |
| 5. | कुमार, डॉ० सुरेश | शैली विज्ञान | 1977 | वाणी प्रकाशन नई दिल्ली |
| 6. | कोड़ा, कमल लोचन | जोहार | 1990 | मनोज प्रकाशन, राँची |
| | | इटा बटा नला बसा | 1990 | तदैव |
| | | जिबोन बाड़ा | 1991 | तदैव |
| | | बीर बुरू बोंगा बुरू | 1991 | तदैव |
| 7. | कोड़ा, सतीश कुमार | सतीसयाः संहिता | | नन्दी प्रिंटिंग वर्क्स, चाईबासा |
| 8. | केरकेट्टा, निकोदिन | बई अडाकिर होड़ो जगर गुडि | 1981 | बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना |
| 9. | गागराई, घनश्याम | गुरू लाको बोदरा | प्रथम सं० | चाईबासा |
| | | परिचय : आदिवासी हो समाज | 1993 | चाईबासा |
| 10. | गार्डन, डी०एच० | भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि | 1992 | हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली |
| 11. | चाटुर्ज्या, सुनिति कुमार | भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी | 1954 | राजकमल प्रकाशन, न्यू बिल्डिंग, अमीनाबाद, लखनऊ |
| 12 | जायसवाल, तिलारा कुंवर सिंह | सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानवशास्त्र | 1972 | |
| 13. | जैन, श्री चन्द्र | लोक कथा विज्ञान | 1977 | मंगल प्रकाशन, गोविन्द राजियों का रास्ता, जयपुर–1 |
| 14. | झा, एस०सी० | कोल इंसरेक्शन ऑफ छोटानागपुर | 1969 | ठाकुर स्पिंक एण्ड कंपनी कलकत्ता–01 |
| 15. | टिकेल, कर्नल एस०आर० | ग्रामेटिकल कंस्ट्रक्शन ऑफ द हो लैंग्वेज | 1866 | जर्नल ऑफ एशियाटिक ऑफ बंगाल, कलकत्ता |
| 16. | डेनी, जॉन | हो ग्रामर एण्ड वोकेबुलरी | 1976 | जेवियर हो पब्लिकेशन चाईबासा |
| | | हो इंगलिश डिक्शनरी | 1978 | तदैव |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 17. तियु, डॉ० सोनेया कुमार | रेद रनु | 1976 | चाईबासा |
| | तुरतुङ | 1978 | चाईबासा |
| | रूमुल | ........ | चाईबासा |
| 18. तिवारी, डॉ० कपिल (संपादक) | चौमासा | 2003 | आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल |
| 19. तिवारी, भोलानाथ | भाषा विज्ञान | 2007 | किताब महल, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद |
| 20. तुबिद, सामुचरण | हो को ओण्डोः नोकोवअः दिसुम | 1998 | जनजातीय भाषा अकादमी बिहार |
| 21. तोपनो, पौलुस | छोटानागपुर के आदिवासी | | |
| 22. देवगम, कान्हूराम | हो दुरंग पोथी | ....... | कृष्णा प्रिटिंग वर्क्स, चाईबासा |
| 23. देवगम, गोसाई | मागे पोरोब | 1979 | बैदू देवगम, डोंकासाई (प० सिंहभूम) |
| 24. दास, जयदेव "अभिनव" | सरजोम बा डुम्बा | 1958 | योगमाया प्रकाशन |
| 25. पिंगुवा, डॉ० जानुम सिंह | कोल्हान की "हो" जाति के पर्व त्योहार एवं कृषि कार्य | | |
| 26. पुरती, धनुर सिंह | हो दिसुम हो होनको | 1978 | जेवियर हो पब्लिकेशन संत जेवियर्स हाई स्कूल, चाईबासा, प० सिंहभूम |
| 27. पुरती, डॉ० दुर्गा | आदिवासी, सिबिल दुरंग | 1986 | |
| 28. प्रसाद, डॉ० दिनेश्वर | मुण्डारी शब्दावली अखिल भारतीय संदर्भ | 1999 | किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी |
| | लोक साहित्य एवं संस्कृति | 1973 | लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद – 1 |
| 29. प्रसाद, स्वर्णलता | खड़िया वार्तालाप निर्देशिका | ......... | बिहार जनजातीय कल्याण शोध संस्थान, राँची |
| 30. बिहारी, प्रो० ब्रज कुमार | हिन्दी हो कोश | 1982 | नागालैण्ड भाषा परिषद कोहिमा |
| 31. प्रसाद, डॉ० रामचन्द्र | शैली | 1973 | बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी |
| 32. बरोज, लियोनेल | हो ग्रामर | 1915 | कलकत्ता |
| 33. बसु, विमान | ए स्टोरी ऑफ मैन | 1997 | नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली |
| 34. बिरूआ, मोतीलाल | हो भाषा कैसे सीखें | 1969 | अंकुर पाल–नागेश्वर पाल, चाईबासा |
| 35. बिरूआ, डुबालिया | वारङ क्षिति लिपि का परिचय | 1996 | चाईबासा |
| 36. बोदरा, लाखो | हो हयम पहम पुति | 1984 | एटेः तुरतुङ अखड़ा, झींकपानी (प० सिंहभूम) |
| | बहा बुरू बोंगा | 1984 | तदैव |
| | सार होरा | 1984 | तदैव |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 37. | बोम्पास, सी० एच० | फोकलोर ऑफ कोल्हान | ........ | अजय बुक सर्विस, दिल्ली |
| 38. | मजुमदार, डी० एन० | रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ छोटानागपुर | ....... | एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली |
| | | हो'ज ऑफ कोल्हान | 183–50 | यूनिवर्सल पब्लिशर, लखनऊ |
| 39. | मिश्रा, के० के० | सोशल स्ट्रक्चर एमांग द हो ऑफ उड़िसा | 1987 | ज्ञान पब्लि० हाउस, दिल्ली |
| 40. | मुंडा, डॉ० रामदयाल | आदि धर्म (भारतीय आदिवासियों की धार्मिक आस्थाएँ) एक प्रारंभिक रूपरेखा | जून 2000 प्रथम सं० | झारखण्ड प्रकाशन |
| 41. | रिजले, एच० एच० | द कास्ट एण्ड ट्राइब ऑफ बंगाल | ...... | बंगाल सेक्रेटरि प्रेस, कलकत्ता |
| 42. | शर्मा, राम विलास | कोलभाषा परिवार और हिन्दी प्रदेश | ....... | भारतीय हिन्दी परिषद |
| 43. | शर्मा, डॉ० राम नारायण | भारत में आर्यों का आगमन | ........ | इलाहाबाद प्रकाशन, दिल्ली |
| 44. | सिन्हा, डॉ० आदित्य प्रसाद | हो लोक कथा : एक अनुशीलन | 1997 | किशोर विद्या निकेतन, भैदनी, वाराणसी |
| | | हो भाषा और साहित्य का इतिहास | ........ | तदैव |
| | | हो कोअः कजिजुड़ि कजि को कितब | ........ | मे० हिन्दुस्तान प्रिन्ट, लालपुर चौक, राँची |
| 45. | सिंकू, बीरसिंह | झारखण्ड में आदिवासियों की पारम्परिक स्वशासन व्यवस्था | 1998 | बिरसा, चाईबासा |
| 46. | सोरेन, भोगला | झारखण्डी पहचान एवं भाषाएँ | 2004 | सोबोरनाखा पब्लिकेशन कमिटि |
| 47. | सिंह, डॉ० नागेश्वर | जनजातीय भाषाएँ और ईसाई मिशनरी | 2002 | क्लासिक पब्लिशिंग कंपनी दिल्ली |
| 48. | सावैया, के० के० | कोल्हान लैंड ऑफ हो | ........ | एकता प्रकाशन, गुटूसाई, चाईबासा |
| 49. | सिंकू, दमयन्ती | हो हिन्दी शब्दकोश | ........ | हो भाषा साहित्य विकास मंच, राँची (झारखण्ड) |
| 50. | हुसैन, आगा हैदर | अक्षरों की कहानी | 1991 | ज्ञान–विज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली |
| 51. | त्रिगुणायत, श्री जगदीश | मुंडा लोक कथाएँ | 1968 | अधीक्षक, सचिवालय शाखा पटना |



## लेखक परिचय

**डॉ0 लक्ष्मी पिंगुवा** का जन्म 21 अगस्त, 1977 को देवघर, ग्राम-धोबाधोबिन, पश्चिम सिंहभूम, झारखण्ड के एक साधारण परिवार में हुआ। आपने 2005 में **'इतिहास'** तदुपरांत 2008 में **'हो' भाषा** से स्नातकोत्तर एवं पी.एच.-डी की उपाधि भी राँची विश्वविद्यालय राँची से 2016 में प्राप्त किया। आपने विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित सेमीनार में भी भाग लिया है। आपके विभिन्न लेख का प्रकाशन शोध-पत्रिकाओं एवं अन्य पत्रिकाओं में होता रहा है। सम्प्रति सहायक प्रोफेसर, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची वूमेन्स कॉलेज, राँची (झारखण्ड) में अध्यापनरत।

## पुस्तक परिचय

प्रस्तुत पुस्तक में 'हो' जनजाति का परिचय, लोक साहित्य के विविध रूप, 'हो' संस्कृति और लोक मानस, लोक गीत, लोक कथायें, 'हो' मुहावरें, 'हो' पहेलियाँ, 'हो' मंत्र आदि का उद्भव और विकास कैसे हुआ की सम्पूर्ण जानकारी देने का प्रयास किया गया है साथ ही 'हो' लोक साहित्य प्रेमियों को एक समय में एक स्थान पर पर्याप्त लोक गीत, लोक कथा, कहावतें और मुहावरें तथा मंत्र के वैशिष्ट्य का परिचय इससे प्राप्त हो सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'हो' भाषा के छात्रों, प्रेमियों एवं भविष्य के शोधार्थियों के लिए ज्यादा लाभप्रद है।

***Published by :***

**K.K. Publications**
(Publishers of Indian Thinkers)
618, Katra, Allahabad-211 002 (U.P.) INDIA
Mobile : 9389485578
E-mail : kkpublicationssen@gmail.com

ISBN No. 978-81-87568-85-8
978-81-87568-85-8